जनपद-जालौन की गणेश प्रतिमाओं के विशेष सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड की मूर्तिकला में गजानन गणेश

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी
के अन्तर्गत

इतिहास विषय में
पी–एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबंध
2008

शोध निर्देशक –
डॉ. राम सजीवन शुक्ल
एम.ए., पी–एच.डी., एल.टी. साहित्य रत्न
रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व
मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच, जालौन
(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

शोधार्थी
गीताञ्जलि अग्रवाल
एम०ए० (इतिहास)

मराठाकालीन अष्टभुजी नृत्य गणेश प्रतिमा
कोंच, 'जालौन' (17 वीं शताब्दी)

घोषणा-पत्र

मैं यह घोषणा करती हूँ कि मैंने अपना शोध–प्रबन्ध **"जनपद जालौन की गणेश प्रतिमाओं के विशेष सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड की मूर्तिकला में गजानन गणेश"** डॉ0 रामसजीवन शुक्ल रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृत एवं पुरातत्व मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच जालौन के निर्देशन में किया है। यह मेरी मौलिक कृति है। यह बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत इतिहास विषय में पी–एच.डी. की उपाधि हेतु 200 दिनों में पूर्ण किया गया है।

Geetanjali Agrawal

शोध छात्रा

गीतान्जलि अग्रवाल

Dr. Ram Sajiwan Shukla
M.A., Ph.D., L.T. Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

Brajeshwari Colony
Konch, Jalaun
Ph.: 05165-244549
538K/922 II Ektapuram
Triveni Nagar, Lucknow
Ph. : 0522-2757259

Certificate

This is to certify that the Research work embodied in the thesis submitted for the degree of " Doctor of philosophy" (Ph.D) in History entitled" Gajanan Ganesh in the sculptue of Bundelkhand with special reference to the Ganesha Icons of district Jalaun is the original research work done by Geetanjali Agrawal.

She has worked under my guidance and supervision for the required period of 200 days.

Dr. Ram Sajiwan Shukla
M.A., Ph.D., L.T. Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

आत्म-निवेदन

हमारे देश में मन्दिरों का शिल्पकला सौन्दर्य जितना विख्यात है उतना ही मूर्तियों में भी वैविध्य और अनोखा वन है। यहाँ के शिल्पियों ने जिन प्रतिमाओं को तरासकर मन्दिरों में स्थापित किया था उनमें अधिकतर हिन्दु देवी–देवताओं की धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थीं।

जनपद जालौन क्षेत्र में भी ऐसी ही ऐतिहासिक व धार्मिक मन्दिरों, समृद्ध एवं मनोज मूर्तियाद्द, म्यूरल पेटिंग्स (भित्ति चित्रावली) पुराने तैल चित्र एवं काँच पर उत्कीर्ण पौराणिक चित्रकला एवं अन्य दुर्लभ सांस्कृतिक कलाकृतियों का अपार भण्डार है जो कि उचित संरक्षण के अभाव में तिरोहित हो रहा है।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखकर जब मैंने 'जनपद–जालौन की गणेश प्रतिमाओं के विशेष सन्दर्भ में बुन्देलखण्ड की मूर्तिकला में गजानन गणेश' को अपने शोध का विषय बनाया तो उसमें मेरा मुख्य उद्देश्य यही है कि मैं जिस क्षेत्र में जन्मी हूँ और जिस क्षेत्र में प्रारम्भ से लेकर अपनी सम्पूर्ण शिक्षा भी ली है उसी सांस्कृतिक धरोहर के प्रति कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकूँ। इसी निमित्त एवं उत्सुकता के वशीभूत यह भी अनुभव हुआ कि यहाँ के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पक्ष की अनेक बातें जो अभी तक प्रकाश में नहीं आई हैं, उनके प्रति लोगों को जागरूक कर आगे आने वाले शोधार्थियों के लिये बेहतर सोच प्रदान कर सकूँ।

प्रस्तुत शोध जो विध्नहर्ता, बुद्धि प्रदाता व सुख समृद्धि दाता प्रथम पूज्य श्री गणेश देव को ध्यान में रखकर किया गया है, उसमें मेरा प्रमुख उद्देश्य श्रीगणेश तत्व के आविर्भाव से लेकर उनका पौराणिक धार्मिक और सामाजिक विवरण प्रस्तुत करना और जनपद जालौन में प्राप्त समस्त गजानन गणेश की प्रतिमाओं का सम्यक् अध्ययन, मनन और अनुशीलन करने के पश्चात् मूर्तिकला की दृष्टि से उनका प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन कर समूचे बुन्देलखण्ड में प्राप्त गजानन गणेश की प्रतिमाओं से तुलनात्मक अध्ययन करना है।

जब मैंने इस क्षेत्र में अपने शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने के उद्देश्य से गणेश प्रतिमाओं के अध्ययन हेतु भ्रमण कार्य जारी किया तो मुझे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। अनेक बार मन्दिरों के द्वार बन्द मिले व अधिकांश मन्दिरों के पुजारियों ने श्रीगणेश चित्र खींचने से इंकार किया। परन्तु मेरे बार–बार अनुनय–विनय के परिणामस्वरूप उन्होंने मुझे चित्र खींचने की भी अनुमति प्रदान की और साथ ही महत्वपूर्ण जानकारियाँ देकर अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इस प्रकार अनेक कठिनाइयों के बावजूद में जितना भी इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिये घूम फिर

सकी, उससे मुझे यह ज्ञात हुआ कि इस जनपद जालौन में गणेश प्रतिमाओं के विविध स्वरूप यहाँ के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व को दर्शाते हैं।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है – प्रथम अध्याय जो प्रस्तावना के रूप में प्रस्तुत किया गया है, उसमें बुन्देलखण्ड की स्थिति, सीमा एवं नामकरण के औचित्य पर विचार, बुन्देलखण्ड की स्थिति, सीमा एवं नामकरण के औचित्य पर विचार, बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक महत्व एवं जनपद–जालौन का ऐतिह्य और सांस्कृतिक महत्व को दर्शाया गया है।

द्वितीय अध्याय में विभिन्न साहित्य और धर्म ग्रन्थों में उपलब्ध गणेश के स्वरूपों का विस्तृत अध्ययन कर उन्हें वैदिक साहित्य में क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। यथा वैदिक वाङ्मय में गणपति गणेश के अन्तर्गत– वेदों में गणेश, ब्राह्मण ग्रन्थों में गणेश, आरण्यकों में गणेश, उपनिषदों में गणेश और वेदाङ्गों में गणेश। साथ ही समकालीन ग्रन्थों में सुमेलित कर गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में जनपद जालौन की गजानन गणेश प्रतिमाओं का सर्वेक्षण, परिचय उदभव् एवं विकास के अर्न्तगत जालौन के मन्दिरों में गणपति प्रतिमायें, जालौन के संग्रहालयों में गणपति प्रतिमायें, जालौन में श्रीगणपति के चित्र, जालौन के लोकाचार में गणपति गणेश, जालौन में गणेश उत्सव मराठों की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में गणेश नाम की व्याख्या, विनायक रूप में, गाणपत्य सम्प्रदाय में, पुराणों में श्री गणेश के स्वरूप का विकास, दार्शनिक गणपति स्वरूप का विकास, आध्यात्मिक गणपति स्वरूप का विकास और लिपि ज्ञाता स्वरूप के विकास के द्वारा गणपति तत्व का व्यापक सर्वेक्षण कर उन्हें प्रारम्भ से अन्त तक जानने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में बुन्देलखण्ड की मूर्तिकला में गजानन गणेश के अर्न्तगत– स्थानक गणेश मूर्तियाँ, आसनस्थ गणेश मूर्तियाँ, नृत्यत गणेश मूर्तियाँ, दम्पति सहित गणेश मूर्तियाँ और अन्य मूर्तियों में श्रीगणेश का जो भी रूप देखने को मिले उन सभी का जनपद जालौन सहित समस्त बुन्देलखण्ड के साथ ही अन्यत्र क्षेत्रों और मूर्तिकला में गणेश की मूर्तियों की प्राचीनता के साथ क्रम से वर्णित किया गया है।

पंचम अध्याय में गणेश के विभिन्न नाम एवं स्वरूप के अर्न्तगत–वैदिक शास्त्रों में गणेश के नाम, पुराणों में गणेश के नाम एवं स्वरूप, आगम ग्रन्थों में और अन्य साहित्यिक एवं शिल्प ग्रन्थों में श्रीगणेश के नाम एवं स्वरूप, मंगल पाठों में श्रीगणेश के नाम एवं स्वरूप, जनपद जालौन में उपलब्ध गणेश मूर्तियों के स्वरूप में प्राप्त कुछ सामान्य विशिष्ट नाम एवं श्रीगणेश नाम और स्वरूप का सामाजिक महत्व एवं आस्था, बृहत्तर भारत में श्रीगणेश के नाम एवं स्वरूप आदि का

समालोचनात्मक अध्ययन इस अध्याय में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में गजानन गणेश मूर्तियों के लक्षण एवं लांछन के अन्तर्गत– उरई में गणपति मूर्तियां– अष्टभुजी नृत्य गणेश, रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश, लोककला में चतुर्भुजी गणेश, मूषकासीन चतुर्भुजी गणेश, द्विभुजी गणेश मूर्तियां, चतुर्भुजी गणेश मूर्तियां, पंच मातृकाओं सहित गणेश मूर्तियां, कोंच में गणपति मूर्तियां – चतुर्भुजी मूर्तियां, अष्टभुजीनृत्यत् गणेश, कालपी में गणपति मूर्तियां–चतुर्भुजी मूर्तियां, पंच मातृकाओं सहित गणेश, जालौन में गणपति मूर्तियां–मूषकासीन गणपति, रिद्धि–सिद्धि सहित चतुर्भुजी गणेश, चतुर्भुजी आसनस्थ गणेश एवं अन्य मूर्तियां एवं उनके मूर्ति स्वरूप के कुछ अन्य सामान्य लक्षण भी यहाँ सुझाये गये है जो परवर्ती साहित्य में यत्र–तत्र उपलब्ध होते हैं।

सप्तम् अध्याय के अन्तर्गत में उपसंहार में शोध प्रबन्ध का संक्षिप्त रूप में निष्कर्ष और कुछ प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अपने अध्ययन के मध्य हम श्री गणपति के सम्बन्ध में प्राप्त जानकारियाँ जो प्रस्तावना से लेकर षष्ठ अध्याय तक इस शोध ग्रन्थ में प्रस्तुत नहीं कर सके, उन्हें हमनें उपसंहार में यथोचित स्थान प्रदान किया है।

इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने के में मुझे मेरे गुरूजनों, परिजनों, मित्रों और अनेक विद्वानों का अभूतपूर्ण सहयोग मिला है। इनके सहयोग के बिना मेरा यह समस्त कार्य सम्भव न हो पाता। अतः इनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना परम कर्त्तव्य समझती हूँ। यह शोध प्रबन्ध डॉ0 रामसजीवन शुक्ल एम0ए0, पी–एच0डी0, एल0टी0 साहित्य रत्न और रीडर प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच, जालौन के निर्देशन में पूर्ण हुआ है। उनके प्रति मैं विनम्र भाव से विशेष आभार प्रकट करती हूँ जिसके स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन, प्रोत्साहन और प्रेरणा से मैं यह शोध प्रबन्ध पूर्ण कर सकी हूँ। पूज्य गुरू के ज्ञान, अध्ययन और अनुभव का ही यह सुफल था कि मैं इस शोध की उन गलतियों को भी दूर कर सकी जो शायद मेरी आँखों से ओझल हो जाती थी।

महाविद्यालय के परम पूज्य गुरू डॉ0 टी0आर0 निरंजन 'संस्कृत विभाग के अध्यक्ष' के द्वारा प्रदत्त सहायता के लिये मैं कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे समय पर महत्वपूर्ण पुस्तके उपलब्ध कराकर अपना पूर्ण सहयोग दिया।

मैं बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के निर्देशक आदरणीय डॉ0 हरिमोहन पुरवार के प्रति विशेष आभार प्रकट करती हूँ। एक व्यवसायी होते हुये जो अपने क्षेत्र की संस्कृति में विशेष रूचि रखते हैं, उन्होंने मुझे न केवल उस संस्कृति के प्रति अवगत कराया बल्कि मेरे भ्रमण कार्य में इन्होंने अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

मैं स्व0 डॉ0 भगवान दास गुप्त शोध संस्थान की निर्देशिका श्रीमति सुधा गुप्ता के प्रति

कृतज्ञ हूँ उन्होंने मुझे शोध संस्थान में भाग प्रदान कर न केवल अपना शोध पत्र प्रस्तुत करने का अवसर दिया बल्कि शोध सम्बन्धी अनेकों जानकारियाँ उनके शोध संस्थान के माध्यम से मुझे प्राप्त हुई।

महाविद्यालय के पुस्तकालय अधीक्षक श्री नरेश चन्द्र द्विवेदी के प्रति भी मैं आभार हूँ । समयोचित उन्होंने पुस्तकें उपलब्ध कराकर मेरी सहायता की है।

मैं अपनी परम पूज्यनीय माताजी श्रीमती सुशीला अग्रवाल के प्रति विशेष आभार प्रकट करना चाहूँगी जिन्होंने मेरी प्रत्येक आवश्यकता को पूर्ण किया और पग–पग पर मेरा उत्साह बढ़ाकर शोध प्रबन्ध की प्रूफ रीडिंग में भी अपना पूर्ण सहयोग दिया। साथ ही मैं अपने भाइयों जितेन्द्र कुमार अग्रवाल, शैलेन्द्र, आकाश के प्रति और अपनी भाभी सीमा और नीतू के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होंने अपना असीम सहयोग प्रदान किया। मैं अपने दीदी, जीजाजी श्रीमती रीना अग्रवाल, श्री अजय अग्रवाल और मित्रतुल्य बहन कु0 दीपाली अग्रवाल के प्रति बहुत आभारी हूँ जिन्होंने सदैव ही मेरे उत्साह को बढ़ाया है और उनके द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन से ही मैं सहजता से शोध को पूर्ण कर पाई हूँ। मैं अपनी हितैषी मित्र रूचि गुप्ता और जूली अग्रवाल की आभारी हूँ जिन्होंने मेरे शोध के भ्रमण कार्य में मुझे सहयोग प्रदान किया।

कम्प्यूटर द्वारा प्रिंट करके शोध प्रबन्ध को स्वच्छ और सुन्दर रूप देने में मेरी मदद मनीष गुप्ता महाकाली कम्प्यूटर्स लवली चौराहा, कोंच ने की, उनकी मैं विशेष आभारी हूँ।

विषय -सूची

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

भारतवर्ष के प्रायः मध्यभाग में स्थित होने के कारण बुन्देलखण्ड को भारत का हृदयस्थल कहा गया है (बुन्देलखण्ड भारतवर्षस्य हृदयस्थलः) इसके सांस्कृतिक महत्व से हम सभी भिज्ञ हैं। यह भूभाग उत्तरी अक्षांश 23–45 तथा 26–50 और पूर्व देशान्तर 77–52 तथा 83 के मध्य स्थित है। इसकी ऐतिहासिकता का प्रथम सर्व उल्लेख ऋग्वेद में वैद्य अथवा चेदिय के रूप में मिलता है, जो प्रारम्भिक जैन और बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित चेटि अथवा चेटिय का संस्कृत रूपान्तर है। परन्तु बौद्धकाल (छठी शती ईसा पूर्व) में इसका महत्व सुस्पष्ट हो गया था। उस समय इस भूभाग को चेदि महाजन–पद के नाम से अभिहित किया जाता था, तो बुद्धकालीन षोडश (सोलहा) महाजनपदों में एक था। इसकी राजधानी शुक्तिमती या सोत्थिवती नगरी थी, जो इसी नाम की नदी के तट पर कहीं स्थित थी। महाभारत में इस नाम की नदी का उल्लेख आया है। पार्जिटर महोदय ने इस नदी की पहचान केन नदी से की है उक्त नगरी केन नदी के तट पर कहा स्थित थी, इस सम्बन्ध में अभी कोई सुनिश्चित मत निर्धारित नहीं किया जा सका हैं सम्भवतः पुरातत्वविदों की पैनी दृष्टि से बचा हुआ यह स्थान भी अपने अतीत के गौरव को अपने खण्डहरों में संजोये होगा।

इस भूभाग का बुन्देलखण्ड नाम बुन्देला शासकों के शासनाधान लगभग 14 शदी ईस्वी में पड़ा। इसके पूर्व इस क्षेत्र का बौद्ध काल में 'चेदि जुझौतिया ब्राह्मणों के प्रभुत्व व बाहुल्य के कारण 'जुझौति' जेजा अथवा जयशक्ति नामक चन्देल शासक के नाम पर 'जेजाकभुक्ति' तथा विन्ध्याटवी में स्थित होने के कारण 'विन्ध्येलखण्ड' अथवा 'विन्ध्यदेश' और यहां अनेक महत्वपूर्ण युद्ध होने के कारण 'युद्ध दश' आदि नामों से अभिहित किया गया। यमुना, मन्दाकिनी, चम्बल पहूँज, केन, काली, सिन्ध, क्वांरी, वेत्रवती और धसान नामक दस नदियों द्वारा अभिसिंचित प्रदेश होने के कारण इस क्षेत्र को दशार्ण भी कहा गया है। कौटिल्य, कात्यायन, भारवि तथा कालीदास जैसे महान विद्वानों ने भी दशार्ण का उल्लेख किया है। टॉलमी ने बुन्देलखण्ड को सेण्ड्रावेटिस कहा है। चीनी यात्री हवेनसांग ने इस भूभाग का विस्तार बताते हुये, इसे चि चि टो कहा है।

बुन्देलखण्ड के विस्तार तथा उसकी सीमा के सम्बन्ध में प्रायः सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। तथापि बुन्देलखण्ड के सुप्रसिद्ध साहित्यकार वियोगी हरिद्वारा छत्रसाल प्रशस्ति में उल्लिखित निम्न दोहा इसकी सीमा निर्धारण में पर्याप्त सहायता प्रदान करता है–

इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस ।

छत्रसाल से लरन को, रही न काहू हौंस।।

परन्तु इतिहासकार वुचमैन, एम0एल0 निगम जार्ज फर्म्गुसन और धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति विद्वानों को यह मत मान्य नहीं हैं इन सभी विद्वानों ने बुन्देलखण्ड का विस्तार इससे कहीं अधिक बताया हैं हर्षकाल में भारत की तीर्थ–यात्रा पर आया हुआ चीनी हवेनसांग भी बुन्देलखण्ड के उक्त विस्तार से सहमत नहीं है। उसने चि चि टो का विस्तार 4000 ली अर्थात 667 मील बताया है जो उक्त दोहे में प्रदत्त सीमा से कहीं अधिक है। गोरेलाल तिवारी ने तो न केवल यमुना अपितु इसकी समस्त सहायक नदियों द्वारा अभिसव्यित प्रदेश को बुन्देलखण्ड कहा हैं कनिंघम ने बुन्देलखण्ड का विस्तार दक्षिण में चन्देरी सागर तथा तिलहरी जिलों तक माना हैं डा0 के0एल0 अग्रवाल ने बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत न केवल उ0 प्र0 के सात जिले (बांदा, हमीरपुर, ललितपुर, झांसी, जालौन, महोबा, चित्रकूट) अपितु म0 प्र0 के छः जिले (दतिया, टीकमगढ़, पन्ना, दमोह, सागर, छतरपुर) को भी सम्मिलित किया हैं कुछ विद्वान बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत म0 प्र0 के लगभग 20 जिले सम्मिलित बताते हैं। जो भी हों, पर इतना निश्चित है कि बुन्देलखण्ड अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत का एक सुविस्तृत भूभाग रहा है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, बौद्धकाल में बुन्देलखण्ड का महत्व 'चेदि' महाजनपद के नाम से सुस्पष्ट हो चुका था। स्वयं भगवान बुद्ध अपने धर्म के प्रचार–प्रसार हेतु चेदि आये थे। उन्होंने यहां वर्षावास भी किया था। परन्तु बुद्ध काल के पश्चात मौर्यकाल तक बुन्देलखण्ड का इतिहास अन्धकारमय है। मौर्यकाल में निश्चय ही बुन्देलखण्ड मौर्य साम्राजय के अन्तर्गत था। इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी एवं लोकप्रिय राजा अशोक निश्चय ही बुन्देलखण्ड मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत था। इस वंश का सर्वाधिक प्रतापी एवं लोकप्रिय राजा अशोक स्वयं अपने पिता विन्दुसार के शासनकाल में विदिशा का वायसराय रह चुका था, उसकी पत्नी विदिशादेवी विदिशा की ही थी उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को बौद्ध धर्म के प्रचार व प्रसार के लिए विदिशा से ही श्रीलंका के लिये रवाना किया। जब वह अपने पिता के पश्चात् मगध के राज सिंहासन पर बैठा तो बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत आने वाले दतिया जिले के 'गुजर्रा' नामक स्थान पर अपना एक लघु शिलालेख लिखवाया। अतः स्पष्ट है कि बुन्देलखण्ड सम्राट अशोक की राजनैतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा होगा। ज्ञातव्य है कि गुजर्रा अभिलेख का अशोक के अन्य सभी अभिलेखों में विशेष महत्व है। इस अभिलेख पर अशोक के विरूद्ध 'देवानां प्रिय प्रियदर्शी' के साथ ही उसका नाम अशोक राजस अंकित हैं इसी प्रकार उसका नामधारी दूसरा अभिलेख मास्की और तीसरा म0 प्र0

रायसेन से प्राप्त हुआ हैं।

शुंगकाल में भी बुन्देलखण्ड शुंगो के साम्राज्य का एक महत्वपूर्ण अंग था। पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र विदिशा का राजा नियुक्त हुआ था। शुंगो के अनेक सिक्के बुन्देलखण्ड के विभिन्न भागों में मिले हैं।

गुप्तकाल में बुन्देलखण्ड गुप्त सम्राटों की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र बना रहा। चन्द्रगुप्त प्रथम के काल से ही बुन्देलखण्ड गुप्तों के साम्राज्य के अन्तर्गत था। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति से ज्ञात होता हे कि समुद्रगुप्त ने पद्मावती विदिशा और मथुरा के नाग राजाओं को हराया था। राम गुप्त के भी अनेक सिक्के बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों में प्राप्त हुये हैं। (विदिशा) के पास उदयगिरि की पहाड़ियों पर प्राप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय का अभिलेख यह प्रमाणित करता है, कि बुन्देलखण्ड पर चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्वामित्व था। अनेक पुष्ट प्रमाणों से विदित होता है कि कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त का भी बुन्देलखण्ड पर अधिपत्य था।

चीन का सुप्रसिद्ध तीर्थ–यात्री हवेनसांग जो हर्षकाल में भारत आया था 'चेदि' का भ्रमण किया था। उसने अपने यात्रा विवरण में 'चेदि' का वर्णन किया है।

पुरातात्विक दृष्टि से बुन्देलखण्ड का बड़ा महत्व है। यहां पग–पग पर पुरावशेष भरे पड़े हैं। इसके सभी जनपदों में पुरातात्विक खानों की भरमार है। यहां न केवल इन पुरातात्विक स्थलों की विस्तृत चर्चा असम्भव है अपितु उनका नामोलेख भी करना कठिन है। वरूआ सागर का जराय मठ, सीरोनखुर्द, देवगढ़, एरच, महोबा, खजुराहों ओर दुधई चांदपुर तथा कालप्रिय नाथ आदि कुछ ऐसे स्थल हैं जिन पर या तो शोध कार्य हो चुके हैं अथवा वे शोध परक हैं।

बुन्देलखण्ड भले ही आज आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा हो, परन्तु उसका अतीत अत्यन्त समृद्धशाली रहा है। पूर्व मध्यकाल में चन्देल शासकों के अधीन यह क्षेत्र अपनी उन्नति की पराकाष्ठा पर था। अत्यन्त प्राचीनकाल के दोनों महापथों (उत्तरापथ ओर दक्षिणापथ) का बुन्देलखण्ड से होकर निकलना इस बात का द्योतक है कि उस समय बुन्देलखण्ड का आयात और निर्यात में विशेष स्थान था। उत्तरापथ इसके दो बड़े व्यापारिक केन्द्र कौशाम्बी विदिशा, उज्जैनी और ग्वालियर स्थित थे, इन सभी व्यापारिक केन्द्रों में ग्वालियर सर्वाधिक महत्वपूर्ण था।

बरूआसागर झाँसी से 18 किलोमीटर दूर दक्षिण पूर्व में झाँसी मऊरानीपुर मार्ग पर स्थित है। प्राचीनकाल में संस्कृति प्रचार प्रसार हेतु मठों की स्थापना की जाती थी। यह मठ धर्म,

संस्कृति, कला, साहित्य, वाणिज्य तथा सामाजिक समृद्धि हेतु नियोजित कार्य करते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न मतावलम्बियों के साधनास्थल तथा मंदिर बनाये जाते थे। इस दृष्टि से बरूआसागर का सांस्कृतिक अनुशीलन स्वतन्त्र शोध का विषय है। यह तथ्य विशेष महत्वपूर्ण है कि बरवासागर के पूर्व में ''घुघुवामठ' तथा पश्चिम में ''जरायमठ'' नामक दो चन्देलकालीन मठों का उल्लेख मिलता है। इनके पुरातत्वीय अवशेष अभी भी विद्यमान हैं। यहां ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित दो विशाल मन्दिर थे। इनका निर्माण चन्देलकाल में हुआ था। इनमें गणेश तथा दुर्गा जी की मूर्तियां प्रतिष्ठित थी। अब वहां कोई मूर्ति नहीं है। अधिकांश ग्रामवासी आज भी मठ की प्राचीनता अथवा उसके विस्तृत विवरण से अनभिज्ञ थे।

ललितपुर जिले के सीरोनखुर्द (सीयडोजी) गांव में एक महत्वपूर्ण अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस लेख से पता चलता है कि प्राचीनकाल में यह स्थल बहुत बड़ा धार्मिक स्थल था। यह उत्तर भारत का बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र भी था। यहां से प्राप्त श्रीगणपति की मूर्ति जो 10 वीं शदी ईस्वी की है गोलाई में उकेरी गई है। यह मूर्तिकला की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। यहां से प्राप्त चतुविंशति विष्णु मूर्तियां, राम, परशुराम, छत्रधारी वामन तथा लक्ष्मी आदि की प्रतिमायें न केवल कलात्मक और सुन्दर हैं अपितु भारत में अण्यत्र कम उपलब्ध है। सीरोनखुर्द के प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन पर शोध प्रबन्ध भी लिखे जा चुके हैं।

उत्तर प्रदेश जनपद ललितपुर में सदानीरा वेत्रवती तट पर मुख्यालय से 3 कि0मी0 की दूरी पर विन्ध्याचली दक्षिण पश्चिमी कोनिया की पर्वतमाला पर अवस्थित है विश्व पुरातत्व का अप्रितम केन्द्र देवगढ़। यहां के गुप्तकालीन विष्णु मन्दिर के तीन ओर की दीवालों पर तीन फलकों में से पहले में शेषशायी विष्णु, जिनके चरण लक्ष्मी जी दबा रही खचित हैं। आकाश में इन्द्र, ब्रह्मा, शिव, पार्वती व मयूर पर कार्तिकेय हैं। यहीं पर एवम् नदी के तट पर सिद्ध गुफा में श्री दुर्गाजी राजघाटी की भित्ति पर कीर्तिवर्मन का लेख और गणेश के साथ नवग्रह है। यहां के जैन मंदिरों में तीर्थंकर, पंचपरमेष्ठी आचार्य, उपाध्याय, बाहुवलि भारत, चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सरस्वती आदि की अद्वितीय प्रतिमायें हैं। इसी कारण विद्वान मूर्तिकला में सर्वाधिक प्रयोग उत्तर भारत में इसी क्षेत्र में हुये बताते हैं।

मध्य प्रदेश के सागर जिले की खुरई तहसील में स्थित एरण एक छोटा सा गांव हैं यह पुरातात्विक दृष्टि से तो महत्वपूर्ण है ही कला चातुर्य भी यहां अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गया है। एरण का नाम सिक्कों पर लिखा मिलता है, ब्राह्मी लिपि में 'एरकण्य' नाम मिलता है यह एरण का

प्रचीन नाम था। ऐरिकण नाम पांचवी शताब्दी ईसवी की एक वृत्ताकार पकी मिट्टी की बनी हुई मुदा पर भी मिलता है। उस मुद्रा के ऊपरी अर्धभाग पर स्थानक गजलक्ष्मी को दिखाया गया है। उनका एक हाथ जंघा पर रखा है। तथा दूसरा हाथ ऊपर को उठा है। देवी प्रभामंडल से युक्त है। उनके दोंनों ओर एक–एक हाथी अपनी सूंड ऊपर को उठाये हुए देवी का अभिषेक कर रहे हैं। इस प्रकार यहां के अभिलेखों से स्पष्ट है कि यह क्षेत्र मूर्तिकला सम्पदा में पिछड़ा हुआ नहीं था।

सदियों तक चंदेल राजाओं की राजधानी रह चुकी ऐतिहासिक नगरी महोबा आज भी अपने खण्ड में अतीत का गौरव संजोये हुये है। यहां झांसी से रेल व बस मार्ग से पहुंचा जा सकता हैं यहां का 11वीं शताब्दी में निर्मित सालट का माडल महल व मन्दिर जिसमें गणपति, कार्तिकेय, शार्दूल एवं जैन तीर्थाकरों की मूर्तियां विद्यमान हैं। यहां इसी प्रकार के चंदेल कालीन कला के अनेक नमूने प्राप्त हुये हैं।

यह मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का पर्यटन केन्द्र है। यह चन्देलकालीन कला का अनुपम उदाहरण है। न केवल देश के कोने–कोने में अपितु अनेक विदेशी पर्यटक भी यहां आते रहते हैं। यहां के मन्दिरों में देव प्रतिमाओं को इस प्रकार कामुक मुद्रा में दर्शाया गया है, कि लोग उन्हें देखकर चकित रह जाते हैं। इन मूर्तियों के कामुकता पूर्ण अंकन का प्रश्न आज भी अनुत्तरित बना हुआ हैं।

अजयगढ का प्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग मध्य प्रदेश के पन्ना जिले में पन्ना से 21 मील की दूरी पर स्थित है। यहां से प्राप्त कलात्मक अवशेष एवं स्मारक चन्देलयुगीन वास्तु एवं मूर्तिकला की उस उत्कृष्ट परम्परा का परिचय देते हैं जो हमें खजुराहों के विश्व विख्यात मन्दिरों में मिलती है। यहां पर जैन मन्दिर, शिव मन्दिर एवं विष्णु मन्दिर प्राप्त है। जो यहां पर विभिन्न धर्मों के पारस्परिक सौहार्दमय वातावरण में पल्लवित एवं पुष्पित होने का परिचय देते हैं। यहां पर शान्तिनाथ, शिव, नन्दी, कार्तिकेय गणेश, पार्वती हनुमान आदि अनेक देवी देवताओं की मूर्तियां मिलती हैं। जो चन्देल शासकों की धर्म सहिष्णुता का परिचय देती हैं। इस प्रकार से हम अजयगढ दुर्ग को धर्म एवं कला का संगम स्थान कह सकते हैं।

चांदपुर वास्तुकला और मूर्तिकला का यह बेमिसाल गवाह ललितपुर मुख्यालय से लगभग 5 कि0मी0 दूर स्थित है। चांदपुर में दूर दूर तक बैष्णव जैन, शैव मन्दिरों खण्डहर व घने जंगल के बीच मूर्तिकला एवं शिल्पकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण मूर्तियां पड़ी हुई है। इसी कारण प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता कनिंघम जैसे विद्वान नें यहां की मूर्तिकला का महत्वपूर्ण वर्णन अपने

आर्केलाजिकल सर्वे रिपोर्ट में किया है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र से लगाव रखने वाले डा0 महेन्द्र वर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध 'चन्देलकालीन कला और संस्कृति में इस क्षेत्र का व्यापक वर्णन किया है।

इस सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक भी जिला ऐसा नहीं है जहां देखने के लिए कुछ न हों समूचा क्षेत्र अपने कला वैविध्य के लिए विख्यात है।

ऐसे ही बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत स्थित उत्तर प्रदेश का जनपद–जालौन भी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक दृष्टि से सदा समृद्ध रहा है। इस जनपद के अन्तर्गत उरई, कालपी कोंच, जालौन और माधौगढ़ पांच तहसील मुख्यालय है। कोंच ऐतिहासिक नगरी जो सम्प्रति तहसील मुख्यालय भी है कि मूलनिवासी होने के कारण मेरे मन में सदा से अपने जनपद की सांस्कृतिक विरासत को जानने की इच्छा रही है। वैसे तो में अनेक किंवदन्तियां, दन्तकथायें, और परम्परायें वयोबृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध स्थानीय नगरिकों से पहले भी सुन चुकी थी और इस प्रकार की अनेक बाते कवीह्रदया मेरी माताजी और दादी जी भी मुझे बताया करती थीं, परन्तु कोंच सहित सम्पूर्ण जनपद की इस सांस्कृतिक विरासत को जानने का सबसे सुन्दर अवसर मुझे अपने गुरूदेव और इस शोध–प्रबन्ध के निर्देशक डा0 रामसजीवन शुक्ल के व्यक्तिगत मार्गदर्शन और उनके द्वारा लिखित एवं सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक' से प्राप्त हुई । इस पुस्तक ने मेरे ज्ञान को द्विगुणित अथवा बहुगुणित कर दिया जिससे कि मुझे गजानन गणेश पर कार्य करने की प्रेरणा जाग्रत हो उठी।

इसके पूर्व जब मैं दयानन्द वैदक महाविद्यालय उरई में परास्नातक छात्रा के रूप में अपने चतुर्थ प्रश्नपत्र के विकल्प के रूप में लघु शोध प्रबन्ध चुना, तो भी डा0 शुक्ल ने मुझे गजानन गणेश पर ही कार्य करने की प्रेरणा दी थी। इस कार्य में मुझे सर्वाधिक सहयोग मिला बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के निर्देशक डा0 हरीमोहन पुरवार का और उनके द्वारा निजी संग्रहालय में संकलित सैंकड़ों गणेश प्रतिमाओं का जो उनके द्वारा बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों से प्राप्त करके संग्रहालयों में संग्रहीत की गई थी। इसके अतिरिक्त लखनऊ में छपने वाले हिन्दुस्तान दैनिक समाचार पत्र के द्वारा ज्ञात हुआ कि विवेकानन्द पाली क्लीनिक डा. चन्द्रा सुब्रमण्यम के निजी संकलन में 500 से अधिक विभिन्न मुद्राओं वाली गणेश प्रतिमाओं का संकलन है, तो मेरे हर्ष का पारावार झलकने लगा और मुझे लगा कि पांच सौ से अधिक विभिन्न लक्षण और लांछनों से युक्त प्रतिमाओं का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का मेरूदण्ड बन सकेगा। इस आशा के साथ मैं प्रथम पूज्य देवाधिदेव गणनायक, गजानन, श्रीगणेश के चरणों में समर्पित होकर मूर्तिकला के

माध्यम से उनकी यशोगाथा लिखने में संलग्न हो गई।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मेरे इसी संकल्पना और परिकल्पना का सुफल है। यहां पर मैंने न केवल जनपद–जालौन में प्राप्त समस्त गजानन गणेश प्रतिमाओं का सम्यक अध्ययन, मनन और अनुशीलन कर उनका समूचे बुन्देलखण्ड में प्राप्त गणपति–प्रतिमाओं से तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है बल्कि श्रीगणेश –स्वरूप की उपासना को प्रारम्भ से जानने का प्रयास किया है। अर्थात् वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक के भारतीय वाङ्मय और मूर्तिकला में गणेश के विविध स्वरूप, उनकी पूजा पद्धतियां, आराधना आदि का सांगोपांग अध्ययन करने में रत हो गई ये शोध प्रबन्ध हमारे उद्देश्य की कहां तक पूर्ति कर सका है यह प्रेक्षकों, बिद्धतजनों इतिहासकारों और शोधार्थियों के अभिमत का विषय है। परन्तु मैंने इस कार्य का पूर्णतः प्रदान करने में किसी भी प्रकार की न्यूनता नही आने दी।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य जनपद जालौन और उसके आस–पास के सम्बद्ध स्थलों में प्राप्त गणेश–प्रतिमाओं के विशेष सन्दर्भ में प्रथम–पूज्य देव गजानन गणेश का अध्ययन करना है। इस हेतु हमने जनपद–जालौन सहित बुन्देलखण्ड में आने वाले उत्तर प्रदेश के समस्त जनपदों का व्यापक सर्वेक्षण किया। इसी परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड की स्थिति, सीमांकन, नामकरण एवं भौगोलिक सीमाओं के औचित्य पर भी संक्षिप्त विचार प्रस्तुत किया। जहां तक जनपद–जालौन के ऐतिह्य का प्रश्न है इसकी प्राचीन जाल्वन व जालिम ऋषि से सम्बद्ध होती है। यद्यपि इन ऋषि प्रवर का कालक्रम तो निर्विवाद रूप से निर्धारित नहीं हो सका है परन्तु समूचा जनपद जालौन ऋषि परम्परा से समृद्ध रहा है । इस जनपद का तहसील मुख्यालय उरई उद्दालक ऋषि की कर्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। इसी प्रकार कालपी महर्षि वेदव्यास की, कोंच क्रोंच ऋषि की, पराशन पाराशर ऋषि की, दिरावटी द्रावण ऋषि की, आटा क्षेमोक ऋषि, कुरैना में कुंभज (अगस्त्य) ऋषि का आश्रम, इटौरा में वृहस्पति ऋषि का आश्रम, इटौरा के पास ही निरंजनी पथ कें प्रवर्तक रोपण गुरू का आश्रम रोमई में लोमेश ऋषि का आश्रम की कर्मभूमि होने का गौरव लिये हुये हैं बुन्देलखण्ड छठी शताब्दी ई0पू0 में चेदि महाजनपद के अन्तर्गत आता था जिसकी राजधानी शुक्तिमती या शोत्थिवती नगरी थी। सम्प्रति इस नगरी की ठीक से पहचान नहीं हो सकी है परन्तु कुछ विद्वान ब इसकी पहचान जनपद बांदा के शेहुणा ग्राम में स्थित टीले से करने लगे हैं। तत्पश्चात् यह अंचल शुंग, सातवाहन, मौर्य और कुषाण शासकों के भी शासन क्षेत्र के अन्तर्गत रहा। सम्राट अशोक अपने पिता बिन्दुसार के शासनकाल में इसी अंचल का वायसराय भी रह चुका था। गुप्तकाल में यह अंचल गुप्तों की राजनैतिक गतिविधियों का सशक्त केन्द्र बना। और गुप्त

सम्राटों ने इस क्षेत्र को अपनी राजनैतिक गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र भी बनाया। गुप्तशासकों के पश्चात् परवर्ती गुप्तशासकों ने भी जनपद–जालौन सहित बुन्देलखण्ड पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। गुप्तों के पश्चात् जब उत्तर भारत के शासन की बागडौर सम्राट हर्षवर्धन के हाथों में आयी, तो जनपद–जालौन का यह क्षेत्र ऐतिहासिक ख्याति प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् कन्नौज का मौखरि राजा यशोवर्मा कालपी में स्थित कालप्य देव के सूर्यमन्दिर का दर्शन करने के लिये इसी जनपद के कालपी क्षेत्र में पधारा। नवी शताब्दी के आगमन के साथ ही बुन्देलखण्ड में चन्देलों का आधिपत्य स्थापित हुआ। इस काल में बुदेलखण्ड में अभूतपूर्व उन्नति हुई खजुराहों, महोबा और कालिंजर अपनी उन्नति के शिखर पर पहुंच गया। बाराहवी शदी के अन्त तक चन्देलों ने बुन्देलखण्ड पर एकछत्र राज्य किया। तत्पश्चात् यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के तुर्कों के आक्रमणों का भी साक्षी बना। तेरहवी शताब्दी के प्रारम्भिक दौर में ही कुतुबुद्दीन ऐबक ने महोबा के आस–पास के क्षेत्र को जीता। अलाउद्दीन खिलजी का भी कालिंजर आगमन इतिहास को मान्य है। सन् 1934 ई0 में मुहम्मद शाह तुगलक भी जनपद–जालौन के ग्राम वहबलपुर में स्थित रामजानकी मन्दिर में आया था। उसने इस मन्दिर के तत्कालीन संतस्वामी सेवा दास को 936 करमुक्त वीधा जमीन प्रदान किया था।[1] यह क्षेत्र मुगलशासक बाबर, अकबर और जहांगीर के आधिपत्य का साक्षी बना। अन्तिम मुगल सम्राट औरंगजेव तो कोंच तक आया था ओर उसने माता राजराजेश्वरी मन्दिर में स्थित हिंगलाज देवी के चमत्कारों से अभिभूत होकर इस मन्दिर के नाम चौदह सो वीघे की मुवाफी भी लगा गया था।[2]

तत्पश्चात मराठा शासकों की गतिविधियों का सशक्त साक्षी बना जनपदजालौन। कोंच का गोविन्द सागर तालाब मराठा गोविन्द राव होलकर की ही देन है। यहां के गढ़ी पर स्थित गणेश प्रतिमा बाजीराव पेशवा ने स्थापित करायी था। सर्वविदित है कि मुहम्मद खां बंगश के आक्रमण से भयाक्रान्त हाकर 84 वर्ष से अधिक आयु प्राप्त कर चुके महाराजा छत्रसाल बुन्देला ने बाजीराव पेशवा से अपनी सहायता का अनुरोध किया था। पेशवा की सहायता से बंगश हारा था, जिसके बदले महाराज छत्रसाल बुन्देला ने अपने राज्य के तीन हिस्से करके एक हिस्सा पुरस्कार स्वरूप दिया था, जिसमें जनपद जालौन सम्मिलित था।स्वतन्त्र भारत में बुन्देलखण्ड आंग्ल शासकों के आधिपत्य में आया और 1857 के स्वाधीनता संग्राम में झांसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई की भूमिका न केवल भारत में अपितु सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। ऐसे ऐतिहासिक

1. कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक पृ0 15
2. वही, पृ0 28

सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से सम्पन्न जनपद–जालौन के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित गजानन गणेश की प्रतिमाओं का अध्ययन करने का मुझे जो अवसर प्राप्त हुआ है। उसके लिये मैं सौभाग्यशाली हूं।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

वैदिक वाङ्‌मय में गणपति गणेश

वेद विश्व का आदि वाङ्.मय है। वेद का अर्थ है 'ज्ञान' जिसे तत्कालीन तत्व–जिज्ञासु ऋषियों ने तपस्या के द्वारा 'आत्मा' के स्वरूप को साक्षात् देखने के लिये एक तेजोमय रूप में प्राप्त किया था। जिन ऋषियों ने उस तेजः स्वरूप का दर्शन किया और स्तुति की, वे अपनी स्तुति के 'ऋषि'[1] कहे जाने लगे और उस तेजोमय स्वरूप का जिस, रूप में जिसे भान हुआ वह उस स्तुति के 'देवता' [2] कहे जाने लगे। तेजःस्वरूप तो एक ही है और नित्य है, इसलिये 'वेद' एक ही है और नित्य है।

जिस प्रकार शास्त्रों में एक ही ब्रह्म के ब्रह्मा, विष्णु और महेश – ये तीनों रूप कहे गये हैं, उसी प्रकार'गणेश' को भी ब्रह्म के होते हुये भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अपनी–अपनी भिन्न–भिन्न विशेषताएं हैं, उसी प्रकार 'गणेश' की भी है। वेदों में भी स्पष्ट– कर दिया गया है कि मूलतत्व एक ही है– 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'[3]।

सनातन हिंदू धर्म में किसी भी देव की आराधना के आरम्भ में, किसी भी प्रकार के कार्यों के आरम्भ में भगवान् गणपति का स्मरण, उनका विधिवत् अर्चन एवं वन्दन किया जाता हैं ऋग्वेद–संहिता में श्रीगणपति की स्तुति करते हुए कहा गया है–

'न ऋते त्वत् क्रियते किंचन'

हे गणपति! तुम्हारे बिना कोई भी कर्म नहीं किया जाता।'

ऐसे समस्त मंगलों के परम निधान श्री गणपति वेदों में ब्रह्मण स्पति– रूप में सर्वज्ञाननिधि है, सर्वश्रेष्ठ देव है, समस्त वाङ्‌मय के अधिष्ठाता कवि हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद आदि तथा ऐतरेय ब्राह्मण और गणपत्यु–पनिषद् आदि में ब्रह्मणस्पति गणेश का विशद तत्वांङ्कन मिलता है। ब्रह्मवैर्क्तपुराण के गणेशखण्ड में उनकी निस्सीम महिमा वर्णित है। महर्षि व्यास को जब इतने से ही संतोष नहीं हुआ, तब उन्होंने एक स्वतंत्र 'गणेश पुराण' की भी रचना की। अतः गोश पुराण में भी कहा गया है कि 'परब्रह्म श्रीगणेशजी ब्रह्मणस्पति रूप में ऋक–युजुः–साम– तीनों वेदों

---

1. ॐ अस्य श्री दुर्गासप्त श्लोकीस्तोत्र मंत्रस्य नारायण ऋषि..................सप्तश्लोकी दुर्गा
2. श्री महासरस्वती देवता.........................कीलकम्–विनियोग
3. ऋग्वेद– 1/164/46

के सार हैं।[1] श्रीगणेश की असीम महिमा एवं उनके परम दिव्य मंगल–स्वरूप का मधुर वैदिक तत्वांङ्कन का निरूपण श्रुति–स्मृति–पुराण–तन्त्र सूत्रादि ग्रन्थों के अतिरिक्त वैदिकोत्तर धर्मग्रन्थों रामायण महाभारत में भी यत्र–तत्र प्रसंगवंश उपलब्ध है। इस प्रकार सिद्ध होता है कि धर्मप्राण भारतीय जनता में अनादिकाल से ही वैदिक और पौराणिक मंत्रों द्वारा भगवान् गणपति की पूजा चली आ रही है[2]।

अतः भगवान गणेश के वैदिक माहात्म्य का विस्तृत विवेचन करने से पूर्व वैदिक वाङ्. मय का संक्षिप्त शास्त्रीय स्वरूप परिचय कर लेना श्रेष्ठकर होगा –

भारतीय मान्यता के अनुसार वेद सृष्टिक्रम की प्रथम वाणी है। इसी कारण वेद अनादि, अपौरूषेय और नित्य कहे जाते हैं। अतः उनकी प्रमाणिकता की सिद्धि नास्तिक दार्शनिकों न्याय और वैशेषिक को छोड़कर आस्तिक सिद्धान्तवाले सभी पौराणिक एवं सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त के दार्शनिकों ने दी है। आस्तिक दर्शनशास्त्रों ने नास्तिक दार्शनिकों के मत का युक्तिपूर्ण तर्कपूर्ण एवं प्रमाणिक रूप से खण्डन किया है फलतः वेद भारतीय संस्कृति के मूल ग्रन्थ सिद्ध हुए।

अतः वर्तमान काल में वेद चार है लेकिन द्वापर युग की समाप्ति के पूर्व वेद अलग–अलग नहीं थे। उस समय शब्द– प्रयोग की तीन शैलियाँ पद्य, गद्य और गान के आधार पर क्रमशः वेद 'ऋक्' 'यजुः' और 'साम' कहलाते थे। इसी आधार पर शास्त्र और लोक में वेद को त्रयी कहा गया। इसके अतिरिक्त वेद को आस्तिक ग्रंथों में श्रुति और आम्नाय भी कहते हैं, जो अलिखित रूप में ही अनादिकाल से गुरू–शिष्य परम्परा द्वारा सुरक्षित रहने के कारण इन नामों से व्यवह्यत किये जाते हैं। अतः मनुस्मृति कहती है 'वेदों को ही श्रुति कहते हैं अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर आजतक जिसकी सहायता से बड़े–बड़े ऋषि – मुनियों को सत्यविद्या ज्ञात हुई उसे श्रुति कहते हैं।[3]

द्वापर[4] युग की समाप्ति के समय महर्षि व्यास ने भावी कलियुग के व्यक्तियों की शक्तिहीनता और कमआयु होने की बात को ध्यान में रखकर ब्रह्म परम्परा से प्राप्त एकात्मक वेद का यज्ञ–क्रियानुरूप चार विभाग कर दिये। जिनमें होत्रकर्म के उपयोगी मंत्रों और क्रियायों का

---

1. त्रयीवेदसारं परब्रह्मपारम्'
2. श्री दुर्गासप्तशती में नवार्ण विधि में गणपति को आदि देवता के रूप में स्मरण किया गया है। ' श्रीगणपत्तिर्जयति' श्रीदुर्गासप्तशती 'गीताप्रेस गोरखपुर, सम्वत् – 2062, पृष्ठ–52
3 'श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः' आदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्ते सा श्रुतिः, श्रुति इसलिए भी कहते हैं कि ये मंत्र कर्णपरम्परा द्वारा सुनकर सहस्राब्दियों तक सुरक्षित रहे।
4. इस युग में 8,64,000 वर्ष होते हैं–विश्राम सागर। देखिए क्रौंचरश्मि' मथुराप्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच जालौन (उ. प्र.) की वार्षिक पत्रिका अंक 2003–2004, प्रधान सम्पादक डा0 रामसजीवन शुक्ल

संकलन ऋग्वेद के नाम से, यज्ञानुष्ठान सम्बन्धी अध्वर्युवर्ग के यजुर्वेद के नाम से, उद्गातवर्ग के सामवेद और शान्ति पौष्टिक अभिलाषाओं (जातविद्या) के ब्रह्मवर्ग के उपयोगी मंत्र अथर्ववेद[1] के नाम से प्रसिद्ध हुये।

चार भागों में विभक्त वेदों की शाखाओं का विस्तार याज्ञिक क्रियायों में प्रयुक्त मन्त्रोच्चारण की शैली मन्त्राक्षर एवं कर्म–विधि में विविधता के कारण हुआ। यही कारण है कि 'वेदों की शाखाओं की संख्या में भिन्नता पायी जाती है। युक्तिकोपनिषद् में 1180, स्कन्दपुराण में 1137, और महाभाष्य में 1131 शाखाएं बतलायी गयी है[2]। अतः पतंजलि की 1131 शाखाओं के अनुसार–ऋक्–संहिता की 21 शाखाएं उपलब्ध हैं, यजुर्वेद के दो भेदों में 101 शाखाएं हैं जिनमें शुक्लयजुर्वेद की 15 शाखाओं में दो वाजसनेयी और काण्व प्राप्त है और कृष्णयजुर्वेद की 86 संहिताओं में तैन्तिरीय–संहिता, मैत्रायणी संहिता, काठक और कठ–कपिष्ठल ये चार मिलती है। सामवेद की 1000 शाखाओं में कौथुम और जैमिनी शाखा के अतिरिक्त रामाणनीय का भी कुछ भाग मिलता है। अथर्ववेद की 9 शाखाओं में शौनक औ पैप्पलाद दो शाखायें मिलती हैं।

इन वेदों की प्रत्येक शाखा के दो भाग मन्त्र और ब्राह्मण बतलाये गये हैं। इस प्रायोगिक दृष्टि के दो विभाजनों में साहित्यिक दृष्टि के चार विभाजनों 1– संहिता 2– ब्राह्मण 3– आरण्यक और 4– उपनिषदों का समावेश हो जाता है[3]। वेद के मन्त्र–भाग और ब्राह्मण भाग की संहितायें, आराण्यक और उपनिषद् बराबर ही होते हैं। इनमें अधिकांश का लोप हो गया है। वेद काप्रतिदिन विशेषतः अध्ययनीय भाग संहिता, कर्मकाण्डीय भाग 'ब्राह्मण' उपासनाकाण्डीय 'आराण्यक' और ज्ञानकाण्डीय भाग 'उपनिषद' कहलाता है। वेदों सर्वांगीण विकास अर्थात् वैदिक शब्दों के अर्थ एवं उनके प्रयोग की पूरी जानकारी के लिये वेदागण आदि शास्त्रों की व्यवस्था मानी गयी है जिनकी संख्या छः है – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष [4]। शब्दों की व्यवस्था के लिये शिक्षा तथा व्याकरण और प्रयोग पद्धति की सुव्यवस्था के लिये कल्पशास्त्र माना जाता हैं इनके चार भेद हैं – श्रौत सूत्र, धर्मसूत्र, गृहासूत्र और शुल्वसूत्र।

धर्म सूत्र साहित्य से कालान्तर में स्मृति साहित्य का विकास हुआ। पं0 श्रीरामाधार जी शुक्ला के अनुसार – 'हमारे पूर्वज महर्षियों की तपः पूत वाणी से निस्सृत श्रुतिमूलक अनुभव पूर्ण प्रवचनों का संकलन जिन ग्रंथों में किया गया है, वे 'स्मृतियाँ' कहलाती हैं। जिन महर्षि का विवेचन

---

1. वेदत्रयी से पृथक होने के कारण इस उत्तर वैदिक कालीन वाङ्मय कहा जाता है।
2. कल्याण – (वेद कथाङ्क) पृष्ठ 142
3. कल्याण – 'वेद कथाङ्क' पृष्ठ 157
4. यही वेदों के छः अंग होने के कारण वेदांग हैं।

जिस स्मृति में हुआ है, वह उन्हीं के नाम से प्रचलित हैं[1]। वैदिक साहित्य सूत्र रूप में था, जनसामान्य के लिये दुरूह था, अतः वेदार्थ को उपदेशात्मक उपाख्यान शैली द्वारा समझने हेतु इतिहास–पुराण की व्यवस्था की गयी है। इसी कारण प्रसिद्ध है –

इतिहास पुराणभ्यां वेदार्थमुपवृंध्येत।
विभेव्यल्पश्रुताद्वेदो, मामयं प्रहरिष्यति।।

पुराण वेदोत्तर कालीन हैं, फिर भी उन में वैदिक–अवैदिक संस्कृति का समान्वित् रूप देखा जा सकता है और उनके बिना वेद का एकमात्र प्रामाण्य अव्यवह्यत है, इसी कारण इतिहास पुराण को पाँचवाँ वेद कहा गया है–

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं।
चतुर्थमितिहास–पुराणं पंचम्। वेदानां वेदानां वेदम्– इत्यादि ।

आशय यह है कि प्राचीन भारत में पुराणों को मान्यता प्राप्त थी, जिनमें उस समय के जनसामान्य में प्रचलित मान्यताओं और लोक–विश्वासों को आधार बनाकर विचार व्यक्त किये गये।

वास्तव में इस समय सुविशाल वैदिक साहित्य का कङालमात्र अवशिष्ट हैं तथापि जो कुछ भी है, उससे ज्ञात, होता है कि गणेश अति प्राचीन देवता है, अर्वाचीन नहीं। अतः उपर्युक्त वर्णित 12 शाखाओं में से अध्ययन शैली की जो शाखा प्राप्त है उनमें ऋग्वेद की शाकल, कृष्णयुजर्वेद की तैत्तिरीय और मैत्रायणीय, शुक्लयजुः की माध्यन्दिनीय और काण्व, सामवेद में केवल कौथुम और अथर्ववेद में शौनक शाखा में श्रीगणेश स्वरूप की जो विशेषतायें– वर्णित हैं उनसे यह सिद्ध होता है कि गणेश की उपासना बहुत प्राचीन है जैसा कहा भी गया है–

'शुभाशुभे वैदिकलौकिके वा त्वमर्चनीयः प्रथमं प्रयत्नात।'

पुण्यभूमि भारतवर्ष में अनादिकाल से ही अनेक देवी–देवताओं की उपासना चली आ रही है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता हे कि वैदिक काल से लेकर आज तक, समाज के प्रायः सभी वर्गों में श्रीगणेश की उपासना प्रचलित रही है। यद्यपि भगवान् गणेश का परवर्ती स्वरूप बहुत बाद से प्राप्त होता है परनतु उनकी ये सभी विशेषताएं वैदिक काल से ही मिलने लगती हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

---

1. कल्याण गणेश अङ्क। इसीलिए मनु नारद और याज्ञवल्क्य आदि के नाम पर मनुस्मृति नारद स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति आदि नाम करण हुए।

यहाँ वैदिक संहिता तथा वैदिक वाङ्मय के कुछ महत्वपूर्ण मन्त्र उद्धत किए गए हैं जिनमें श्रीगणेश का ब्रह्मण स्पति रूप, ओंकार, लोक में स्वास्तिक का और लेखन–स्मरण, सिद्धिदाता (मंगलार्थक) विघ्नहर्ता के अतिरिक्त विविध रूपों और अनन्त नामों का विस्तार से विवरण मिलता है जिससे उनकी वैदिकता और महत्ता सिद्ध हो जाती है –

श्रीगणेश का ओंकार रूप वेदमन्त्रों के प्रारम्भ में आविर्भूत माना गया है और वेदों को पढ़ने वाले सर्व–प्रथम 'ऊँ' का उच्चारण करके ही वेद का स्वाध्याय करते हैं। अतः वेदमन्त्रों के प्रारम्भ में गणेश की प्रणवस्वरूप की अनिवार्यता उनके सम्पूर्ण कार्यों के आरम्भ में स्मरण और पूजन की उपयोगिता भी सिद्ध करते हैं। जैसा कि 'गणेशपुराण' में भी लिखा है कि 'ओंकाररूपी भगवान जो वेदों के प्रारम्भ में प्रतिष्ठित हैं, जिनको सर्वदा मुनि तथा इन्द्रादि देवगण हृदय में स्मरण करते हैं। वे ओंकाररूपी भगवान् गणनायक कहे गये हैं। वे ही विनायक सभी कार्यों में पूजित होते हैं[1]।'

वेदों में गणेश

ऋग्वेद में गणेश

वैदिक देवता श्रीगणेश को जो वेद 'गणपति' कहते हैं वे ही उन्हें 'ब्रह्मणस्पति' और 'वृहस्पति' भी कहते हैं। गणपति शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल के सुप्रसिद्ध मन्त्र में हुआ है–

गणनां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्माणां ब्रह्मणस्पत आ नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।।[2]

'तुम देवगणों के स्वामी होने के कारण गणपति हो, ज्ञानियों में श्रेष्ठ ज्ञानी हो, उत्कृष्ट कीर्तिवालों में श्रेष्ठ हो। तुम शिव के ज्येष्ठ पुत्र हो, अतः हम तुम्हारा आदर से आह्वान करते हैं। हे ब्रह्मणस्पते गणेश। तुम हमारे आह्वान को मान देकर अपनी समस्त शक्तियों के साथ इस आसन पर उपस्थित होओ।'

इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि उपर्युक्त मन्त्र गणपति–देव को समर्पित है। और यह दूसरी पंक्ति में आया हुआ ब्रह्मणस्पति पहली पंक्ति में आये हुये गणपति शब्द के लिये ही सम्बोधित हैं। गणपति और ब्रह्मणस्पति शब्द का एक ही अर्थ होता है। गणपति शब्द का

1. ओंकार रूपी भगवान् यो वेदादौ प्रतिष्ठितः।
यं सदा मुनयो देवाः स्मरन्तोन्द्रादयो हृदि।। ऋग्वेद–शाकल संहिता
ओंकाररूपी भगवानुक्तस्तु गणनायकः।
यथा सर्वेषु कार्येषु पूज्यतेऽसौ विनायकः।। 'गणेशपुराण'
2. ऋग्वेद, 2/23/1

अर्थ—अक्षर गण का पालक है, तो ब्रह्मस्पति का अर्थ वाक् या वाणी (शब्द) का स्वामी हुआ। वेद में शब्द को 'ब्रह्म' कहा गया है अतः पतंजलि की उक्ति है – ' सोऽयमक्षर समाम्नायो वेदितत्यो ब्रह्मराशि'। 'महाभाष्य' वर्णमाला ब्रह्मराशि है।' सायण के अनुसार ब्रह्म का अर्थ है मन्त्र, अतः ब्रह्मणस्पति का अर्थ हुआ मन्त्रों का स्वामी। उन्होंने ब्रह्मणस्पति – मन्त्र के अपने भाष्य में 'देवादिगणानां सम्बन्धी गणपतिः' – यह अर्थ भी किया है। अतः ॠग्वेद के ही एक मन्त्र में ऋषिजन गणपति को ज्ञान का स्वामी घोषित करते हुये उस परमेश्वर के गणपति स्वरूप का आवाहन कर कहते हैं 'देवत्व की कामना करने वाले लोग तुमसे प्रार्थना करते हैं, अतः ज्ञान के स्वामीन्। उठो[1]। इस प्रकार ब्रह्मणस्पति का देवपतित्व या गणपतित्व सिद्ध होता है। गण शब्द के सामान्य अर्थ – समूह, श्रेणी और वर्ग विशेष के स्वामी को कवियों के कवि और ज्येष्ठराज जैसी उपाधियाँ नहीं दी जा सकती, जो कि इस ब्रह्मणस्पति सूक्त में गणपति के लिये प्रयुक्त हुई है। ज्येष्ठराज का अर्थ है सब से ज्येष्ठ – सबसे पहले उत्पन्न होने वाले देवताओं के राजा—शासनकर्ता। इन्द्र तो केवल देवों के अधिपतिमात्र हैं, परन्तु इन्द्र के भी प्रेरक होने से आप का नाम ज्येष्ठ राज है। अब यदि गण का अर्थ व्यक्तियों का समूह माना जाय तब यह सूक्त किसी राजा की स्तुति होनी चाहिये। परन्तु यह वैदिक सूक्त जो उन्हें 'बृहस्पति' कहता है, जिनको हिन्दु पुराकथाओं में देवताओं का गुरू और बुद्धि का देवता माना गया हैं इसी कारण उपर्युक्त मन्त्र में उन्हें 'कवि' भी कहा गया। राजशेखर का ही मत देख लीजिए वह जो विविध भाषाओं एवं रसों में स्वतन्त्रता पूर्वक प्रबन्ध लिख सकता था 'कविराज' होता था। ऐसे कवि जगत में विरलतः होते थे और महाकवियों में भी प्रवीणतर माने जाते थे[2]।

महाभारत के लिखने के अवसर में गणपति का कवित्व प्रसिद्ध है ही, इस प्रकार वाणी (शब्द) एवं अक्षर आदि गणों के अधिपति को तो 'कवियों का कवि व ब्रह्म से भी ज्येष्ठ माना जा सकता है लेकिन मानव समूह के अध्यक्ष को नहीं। यही अभिप्राय वैदिक मन्त्रद्रष्टाओं का भी है। गणेशपुराण में 'गणेशसहस्त्र नामों में भी गणपति के लिये 'ब्रह्मणस्पति' के अतिरिक्त उक्त मंत्र के अन्य नाम भी आये हैं[3]।

अतः ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के अठारहें सूक्त को दूसरा मंत्र भगवान गणपति के

---

1. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तत्वेमहे।' वही – 1/40/1
2. काव्य मीमांशा, विहार राष्ट्रभाषा प्रकाशन, पृष्ठ – 48,49
   समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति की पंक्ति –27 में सम्रुगुप्त को उसकी तीक्ष्ण और प्रखर बुद्धि के कारण 'बृहस्पति' और 'कविराज' की उपाधि से विभूषित किया गया है – 'निशिताविदग्धमतिृ.........त्रिदशपतिगुरू........ जीव्यानेक काव्य—विक्रयाभिः प्रतिष्ठित कविराज....' गोयल, श्रीराम—'गुप्तकालीन अभिलेख' पृष्ठ 21
3. कविः कवीनामृषभो ब्रह्मण्यो ब्रह्मणस्पतिः।।
   ज्येष्ठराजो निधिपतिः निधिप्रियपतिप्रियः। गणेशसहस्त्रनाम – 4/5 'गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कवि कवीनाम्।'
   देखिये –गणेश पुराण उ0 1/5

सिद्धिदाता और पुष्टिप्रदान करने वाले गुण को द्योतन करता है जिसमें उनका मांगलिक रूप स्पष्ट होता है –

यो रेवान् यो अमीवहा वसुवित्पुष्टि वर्धनः। स नः सिषक्त यस्तुरः।।

उपर्युक्त मन्त्र का भाष्य सायणाचार्य द्वारा प्रस्तुत है –

'यो ब्रह्मणस्पतिः रेवान धनवान् यश्चामीवहा रोगाणां हन्ता वसुवित् धनस्य लब्धा पुष्टिर्वर्धयिता यश्च तुरः त्वरोपेतः शीघ्रफलदः स ब्रह्मणस्पतिर्नोऽस्मान् सिषक्तु सेवतां परिग्रह्यानुग्रंगात्वित्यर्थः।'

अभिप्राय यह है कि जो सम्पत्तिशाली, रोगापसारक, धनदाता, पुष्टिवर्धक और शीघ्र फलदाता हैं, वे ही ब्रह्मणस्पति हमलोगों पर अनुग्रह करें।

सम्भवतः इसी कारण कुछ लोगों की यह धारणा बन गई कि गणेशजी का लेखन – कार्य से सम्बन्ध 'सिद्धि' शब्द के गलत अर्थ लगाने के कारण हुआ है, लेकिन यह धारणा गलत है। उनका यह कहना है ' सिद्धि' शब्द प्राचीनकाल से ही वर्णमाला का बोधक रहा है और गणेश को 'सिद्धिदाता' कहा जाता है अतः उक्त शब्द ही गणेश को लेखक के रूप में वर्णन करने वाले उपाख्यान का जन्मदाता है – असंगत है। पतंजलि ने 'सिद्धि' शब्द को मंगलार्थक और नित्यार्थक माना है। 'कातन्त्र–व्याकरण का पहला सूत्र है –'सिद्धो वर्णसमाम्नायः।' इसका अर्थ है – ' वर्णमाला नित्य है। ''ऊँ नमः सिद्धम्' इसका भी प्रयोग यत्र–तत्र मिलता है।[1] इसमें पठित तीनों शब्द मंगलार्थक एवं परमात्मावाचक हैं। 'तैत्तिरीय संहिता' के सुप्रसिद्ध भाष्यकार कौशिक भटभास्कर ने रूद्रभाष्य में लिखा है – ऊँ, स्वाहा, स्वधा, वषट्, नमः इति पंच ब्रह्मणों नामानि 'मंगलार्थम्' – सिद्ध–शब्द मंगलार्थक है।

महाभाष्य के इस प्रतीक को लेकर भर्तृहरि लिखते हैं –

''निरपकृष्टा भिमतार्थ सिद्धिर्मंगलम्। तदर्थं च यदुपादीयते तदपि तदर्थत्वान्मंगलमित्याख्यायते। –

बिना किसी त्रुटि के अभिप्रेत अर्थ की सिद्धि को 'मंगल' कहते हैं और मंगलार्थ जिस शब्द का ग्रहण किया जाता हे, वह भी तदर्थ होने के कारण 'मंगल' कहलाता है।' इस प्रकार सिद्ध शब्द का अर्थ मंगलमूर्ति या गणपति तो हो सकता हे, परन्तु वर्णमाला का बोधक नहीं। वैदिक

1. प्रथम कुमार गुप्त के शासन काल का मानकुंअर पाषाण–प्रतिमा–बौद्ध लेख में बुद्धों के लिये ,,नमो बुधान' लिखा है जिसमें फ्लीट ने 'नमो' के पूर्व 'ऊँ' का प्रतीक रूप में अंकन माना है परन्तु 'ऊँ' का अंकन बौद्ध अभिलेखों में असंगत है अतः सरकार ने इस प्रतीक को 'सिद्धम्' अर्थ में लिया है। गोयल श्रीराम गुप्तकालीन अभिलेख पृष्ठ –147

बृहस्पति ही लौकिक गणेश हैं, इसमें संदेह नहीं है। ऋग्वेद के ही एक मन्त्र में परिवार की मांगलिक कामना के निमित ब्रह्मणस्पति की स्तुति की गई है –

'ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भन्दं यदवन्ति देवा बृहद् वदेम विदथे सुवीराः।।

हे मंत्रों के अधिपति। तुम इस जगत् के नियामक हो, मेरे इस सूक्त को जानो और मेरी संतान को प्रसन्नता प्रदान करो, आप–जैसे देव जिसकी रक्षा करते हैं, उसका सर्वथा भला होता है। हमलोग इस–जीवन–यज्ञ में सुन्दर पुत्र–पौत्रों से युक्त होकर आपकी स्तुति करें।

इसके अतिरिक्त गणपति वेद में इन्द्र और अग्नि रूप में भी वर्णित हुये हैं यथा–

निपुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कथीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किं चनारे महामर्क मघवञ्चित्रमर्च।।

हे गणपति मनुष्यगणों में आज जागरूक होकर उपस्थित हों।

विज्ञों का कहना है कि तुम लेखकगणों अथवा कल्पकों की प्रज्ञा या लेखन – सामार्थ्य हो। अरे। तुम्हारे बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। अतः हे मधवन्। आप महान श्रेष्ठ और विविध कर्म (जनों के हृदय में उपस्थित होकर) करें।

उक्त मन्त्र में इन्द्र गणपतिदेवरूप में स्तुत हुए हैं – 'गणपते' मधवन'। अतः वेद में इन्द्र सभी देवों के अधिपति माने गये हैं इसीलिये कहा गया – 'इन्द्रो मायाभिः पुरूरूप ईयते' [1] अर्थात् अपनी शक्तियों के द्वारा इन्द्र बहुत से रूप को धारण कर लेते हैं। अतः शतपथ ब्रह्मण में भी कहा गया है – 'इन्द्रः सर्वा देवताः'[2] इसी प्रकार 'इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः'[3] में इन्द्र और अग्नि की सब देवताओं के रूप से स्तुति की जा सकती है – यह कहा गया है। ऋग्वेद में वर्णित है – 'त्वमग्ने!. ....द्विमाता,[4] अर्थात् अग्नि को 'द्वैमातुर (गणपति) कहा गया है। अतः एक अन्य मन्त्र में भी गणपति का 'महाहस्ती रूप' इन्द्र को सम्बोधित है –

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्रामं संग्रमाय।
महाहस्ती दक्षिणेन।।[5]

---

1. ऋग्वेद – 6/47/18
2. शतपथ ब्राह्मण – 3/4/2/2
3. वही – 6/3/3/21
4. ऋग्वेद संहिता – 1/31/2
5. वही – 8/31/2

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि गणपति वेद में एक व्यापक परम शक्ति रूप में भिन्न–भिन्न नाम से वर्णित है। यथा –

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे त्योमन्।
सप्तास्यस्तु विजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि।।[1]

'बृहती वाक् अथवा संसार के स्वामी बृहस्पति, परमव्योम रूप महाशक्ति के महान् तेज से सर्वप्रथम उत्पन्न होकर सात छन्दरूप मुखवाले और सात किरणों अथवा सात वर्णवर्गवाले गणपति विविधरूप धारण करके नाद के द्वारा अन्धकार अथवा अज्ञान को दूर करते हैं।'
ऋग्वेद के ही एक मन्त्र में गणेश को 'एकदन्त' कहा जाता है –

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारूषी।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णश्रृंङ्गोदृषन्निहि।।[2]

'वह अलक्ष्मी इस लोक से तथा उस लोक से भी विनष्ट हो जाय, जो समस्त भ्रूणो या औषधियों के अंकुरों को नष्ट कर देती है। हे तीक्ष्णदन्त ब्रह्मणस्पति। आप उस दान–विरोधिनी अलक्ष्मी या दुर्भिक्षाधिदेवता को दूर करते हुए जायें।

'श्रृंग का अर्थ दाँत भी होता है। सायणाचार्य ने 'तीक्ष्ण तेजस्क' ऐसा अर्थ किया है। उपर्युक्त मन्त्र में ब्रह्मणस्पति के लिये जो एकदन्त शब्द प्रयुक्त हुआ, उसी सम्बन्ध में पुराणों में भी कुछ कथायें वर्णित हैं। पदम्पुराण के अनुसार बाणासुर से युद्ध के अवसर पर बलराम की गदा से गणेश का एक दाँत टूट गया था परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में उल्लेख आता है कि परशुराम से युद्ध करते समय उनका एक दाँत टूट गया था।

लौकिक साहित्य में गणेश के दो मुख्य गुण वर्णित हैं– ' एक विद्या, बुद्धि और धन का प्रदान और दूसरा विघ्न या दुष्टों का दमन। उनके यही गुण ऋग्वेद में उल्लिखित हैं। यथा –

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरूर्न द्वयाविनः।
विश्वा इदमस्माद् ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते।।[3]

---

1. ऋग्वेद– 4/50/4 शैवी चित–शक्ति ही 'परमण्योम' के नाम से प्रसिद्ध है अतः इस शब्द का स्पष्टीकरण 'आनन्दलहरीचन्द्रिका–12 में दिया गया है।
2. ऋग्वेद – 10/155/2
3. ऋग्वेद – 2/23/5

हे ब्रह्मणस्पति। आप जिस जनकी रक्षा करते हैं, उसे कोई दुःख और पाप पीड़ित नहीं कर सकता, शत्रु कही भी उसकी हिंसा नहीं कर सकते, मन में कुछ और तथा क्रिया में कुछ अन्य करने वाले भी उसे बाधा नहीं दे पाते। अपने जनों की हिंसक समस्त सेनाओं को आप नष्ट कर देते हें।

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्नथ्नन दृक्तहाऽव्रदन्त बीलिता।
उद्गा आजदभिनद् ब्रह्मणा बलमगूहत्तमो त्यचक्षयत्स्त्वः।।[1]

देवों में श्रेष्ठ देव ब्रह्मणस्पति के ये कर्म हैं – दृढ़ पर्वतादि को ये अपने बल से विशीर्ण कर देते हैं, कठोर को कोमल बना देते हैं, प्रकाश या ज्ञान प्रदान करते हैं, अपनी वागरूपिणी शक्ति से असुरों को ध्वस्त करते हें, अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करते हैं एवं स्वर्गात्मक सुख प्रदान करते हैं।

ऋग्वेद में लोक में प्रसिद्ध गणेश और सरस्वती की एक साथ वन्दना भी देखी जाती है –

'प्रैतु ब्रह्मणपतिः प्र देव्येतु सुनृताः।।[2]'

'हमारे यज्ञ में ब्रह्मणस्पति देव आवें, वाग्देवता सरस्वती भी पधारें।'

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड (मानस) के बालकाण्ड के मंगलाचरण में भी सर्व प्रथम सरस्वती व गणेश की एक साथ वन्दना की है – 'वन्दे वाणीविनायकौ...'।

उपर्युक्त ऋग्वैदिक मन्त्र सामवेद और अथर्ववेद में भी उल्लिखित हुआ है जिसकी पुष्टि इस बात से होती है कि ऋग्वेद में एक ही स्थान पर चारों वेदों के नाम का उल्लेख है –

तस्माद्यज्ञात सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।[3]

इस मन्त्र में ' ऋच' से 'ऋग्वेद' 'सामानि' से 'सामवेद' छन्दाँसि से 'अथर्ववेद' एवं 'यजुष्' से यजुर्वेद समझा जाता है। अतः कहा जा सकता हे कि चारों वेद एक ही समय के हैं और स्वतन्त्र भिन्न – भिन्न ग्रन्थ नहीं हैं, प्रत्युत एक ही ग्रन्थ के चार स्वरूप है, जो परस्पर सम्बद्ध हैं। यही कारण है कि 'ऋग्वेद के कई मन्त्र अन्य वेदों में भी मिलते हैं। सामवेद में तो ऋग्वेद के ही मन्त्र अधिक हैं। स्वतन्त्र कम हैं।

अतः स्पष्ट है कि 'गणानां त्वा गणपति' यह ऋक्–मन्त्र तथा इसके अनुरूप और भी

---

1. ऋग्वेद – 10/155/2
2. वही – 1/40/3, सामवेद, आग्नेयपर्व, – 2/56 यजुर्वेद –33/89
3. वही – 10/90/9

कतिपय मन्त्र सर्वत्र चिरकाल से गणेश की उपासना में विनियुक्त होते आ रहे हैं। बंङ्गदेश में ऋग्वेदीय ब्रह्मण वृषोत्सर्गश्राद्ध में और बालम्भट्ट ने 'याज्ञवल्क्य स्मृति' की 'मिताक्षरा' टीका के लक्ष्मीभाष्य में इस मन्त्र का गणेशपूजन पर कहकर के लक्ष्मीभाष्य में इस मन्त्र का गणेशपूजन पर कहकर ही उल्लेख किया है। ऋग्वेद के ही एक मन्त्र में श्रीगणेश का वैदिक देवों द्वारा वन्दित होने का प्रमाण है –

विघ्नेश विधिमार्तण्डचन्द्रेन्द्रोपेन्द्र वन्दित।
नमो गणपते तुभ्यं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते।।[1]

ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र तथा विष्णु के द्वारा वन्दित हे विघ्नेश गणपति! मन्त्रों के स्वामी ब्रह्मणस्पति! तुम्हें नमस्कार है।

इससे स्पष्ट है कि वैदिक ब्रह्मणस्पति ही विघ्नेश गणपति है।

इसके अतिरिक्त महाकवि भास के सुप्रसिद्ध नाटक 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' के नन्दीश्लोक में दोहरे अर्थ में प्रयुक्त 'वत्सराज' [2] शब्द से हमें श्रीगणेश के ज्येष्ठराज नाम की पुष्टि मिलती है। जिसकी व्याख्या महामहोपाध्याय गणपतिशास्त्री ने निम्नलिखित वेदमन्त्र के आधार पर की है–

'वत्सराजः बालश्चासौ राजा च वत्सराजः।..... गणपतिर्हि अस्य ज्येष्ठो ज्येष्ठराज इति वेदे व्यपदिष्टः। यतः कनिष्ठ औचित्याद् वत्सराज इति व्यपदिश्यते।'

अतएव 'ज्येष्ठराज' या 'वत्सराज' ये दो पद परस्पर एक दूसरे के परिपूरक हैं। इनका अर्थ यथाक्रम दो देवभ्राता गणपति और कर्तिकेय हैं। वेद में ज्येष्ठराज नाम का उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण है। यह प्रथमतः गणेश को कनिष्ठ कार्तिकेय के ज्येष्ठ भ्राता के रूप में निर्दिष्ट करता है। केवल इतना ही नहीं, इसमें उनके माता–पिता शिवा–शिव का उल्लेख भी सुस्पष्ट है, क्योंकि 'ज्येष्ठराज' के अर्थ में गणेश उनके ज्येष्ठ पुत्र भी हैं।

अतः 'शाकल' और 'तैत्तिरीय' संहिता में 'ज्येष्ठराज' नाम आने से यह सिद्ध होता हे कि गणेश ही नहीं अपितु कार्तिकेय, शिव और पार्वती भी वैदिक देवता हैं। इसमें जर्मन विद्वान मैक्समूलर [3] आदि पाश्चात्य विद्वानों की गणेश को अनार्य मानने वाली विचारधारा तिरोहित हो जाती है।

---

1. शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार हरिस्वामी के गुरू स्कन्दस्वामी (संवत् 687 मे विद्यमान) के ऋगवेद – भाष्य में वर्णित
2. प्रतिज्ञायौगन्धरायण में 'वत्सराज' शब्द के दो अर्थ है – 'देवपक्ष में कार्तिकेय' और लौकि अर्थ में वत्सदेश का राजा 'उदयन' है।
3. मैक्समूलर गणेश को अनार्य देवता मानते हैं। हरमन जेकोबी और एम0 विन्टरनिज भी इसी विचार धारा के पोषक हैं।

यजुर्वेद में गणेश

इस काल में स्तुतियों के अतिरिक्त मन्त्रों का प्राकट्य हुआ। मन्त्र सशरीर होते हैं। इसीलिए ऋषियों को मंत्र द्रष्टार कहा गया है। ऋग्वेद में जिस प्रकार गणेश के पूजन में स्तुतियाँ वर्णित हैं, उसी प्रकार यजुर्वेद में गणेश के पूजनार्थ उन्हीं स्तुतियों के साथ–साथ आहूत मन्त्र भी प्राप्त होने लगते हैं जेसा कि उमेश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में लिखा है –

यह अनुमान किया जाता है कि स्तुतियों के द्वारा मनुष्यों ने अपनी कामनाओं की पूर्ति की। सम्भव है यह भी उसी समय ध्यान में आया हो कि स्तुतियों के द्वारा देवताओं को यज्ञों में आहूत कर उन्हें हविष् का भाग देकर प्रसन्न कर अपनी कामनाओं को सफल करें। अतएव लोग यज्ञ करने लगे और उन्हीं मंत्रों से देवताओं को आहूत किया और वे सभी मन्त्र 'यजुर्वेद' के नाम से प्रसिद्ध हुए[1]।

यजुः का अर्थ ही है यजन करना अर्थात् हवन यज्ञादि का सम्पादन। अतः यजुर्वेद के सर्वप्रसिद्ध मन्त्र 'गणानां त्वा' को गणपति– देवतापरक कहा गया है।

अतः इस मन्त्र का गणेश के पूजन और हवनादि में विनियोग होता है। विवेच्यमंत्र इस प्रकार है–

ऊँ गणानां त्वा गणपतिँ, हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं, हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपतिं, हवामहे वसो मम। आहम– जानि गर्भधामा त्वमजासि गर्भधम्।।' [2]

इसका वास्तविक अर्थ है – यजमान और यजमान–पत्नी प्रातः ब्रह्मणस्पति या सूर्य की[3] स्तुति करते हुये कहते हैं –

'हे मेरे जीवनरक्षक सर्वव्याप्री ईश्वर (मम वसो) मनुष्यादि गणों में गणपति हम आपका आह्वान करते हैं। प्रियों में प्रियपति हम आपका आह्वान करते हैं। निधियों में निधिपति हम आपका आह्वान करते हैं। तुम समस्त स्थावर जंङ्गमात्मक प्रजारूप गर्भ 'प्रजा वै पशवो गर्भः' (शतपथ ब्राह्मण 13/2/8) का पोषण करने वाले हो (त्वं गर्भधम् आ अजासि) मैं भी प्रजारूप गर्भ का पोषक पालक हो जाऊँ (अहं गर्भ–धम् आ अजानि)।'

इस वाक्य से ब्रह्मा–विष्णु आदि गणों के अधिपति श्रीगणनायक ही परमात्मा कहे गये

1. मिश्र, उमेश, 'भारतीय दर्शन' द्वितीय संस्करण, द्वितीय परिच्छेद, वेद में 'दार्शनिक विचार' पृष्ठ – 30
2. शुक्लयजुर्वेद – 23/19
3. नेपाल में उपलब्ध गणेश की एक मूर्ति का नाम 'सूर्य गणपति' है।

है और वैदिक यज्ञक्रिया से इनकी उपासना करना सर्वोत्तम माना गया है। अतः वंगलादेश के यजुर्वेदीय ब्राह्मण वृषोत्सर्ग[1] श्राद्ध में इस मन्त्र द्वारा गणेश का आवाहन करके उनकी पूजा करते हैं। इस मन्त्र के द्वारा अश्वमेघ यज्ञ में अश्व की भी गणपति रूप से स्तुति की गयी है जैसा कि इसके भाष्य में उवट लिखते हैं –

'पत्न्यः त्रिः परियन्त्यश्चम्। गणानां त्वा स्त्रीगणानां मध्ये त्वां युगपत् गणपतिं हवामहे आह्वयामः। एवमेव प्रियाणां मनुष्याणां मध्ये त्वामेव प्रियपतिं प्रियं भर्तारं हवामहे। एवमेव निधीनां सुखनिधीनां मध्ये त्वामेव निधिपतिं हवामहे। कथं कृत्वा हे वसो अश्व, मम त्वं पतिर्भूयाः इति। महिषी अश्व मुपसंविशति। आहमजानि। आकृष्य अहम् अजानि ' अज गतिक्षेपणयोः'। क्षिपामि। गर्भधं गर्भस्य धारयितृ रेतः। आत्वमजासि गर्भधम्। आकृष्य च त्वं हे अश्व, अजासि क्षिपासि गर्भधं रेतः।'

उपर्युक्तभाष्य का अर्थ तो स्पष्ट ही है। इस प्रसंग में यह कथन प्रयोजनीय प्रतीत होता है कि धर्माधर्माचरण या पुण्यापुण्याचरण देश, काल और परिस्थिति के अनुसार त्याप्त होता है। सम्भव है, एक देश का धर्म दूसरे देश के लिये अधर्म या अहितकर सिद्ध हो जाय, एक काल का अनुष्ठित सुकर्म कालान्तर में कुकर्म का रूप धारण कर लें, एक परिस्थिति का असत्यभाषण दूसरी परिस्थिति में परिगणित हो जाय, तथा एक ही औषधि किसी व्यक्ति के लिये हितकर है तो वही दूसरे के लिये घातक। इसी प्रकार उपर्युक्त मन्त्र वैदिक युग में मेध्य अश्व के लिये प्रार्थनारूप था तो आज वही मन्त्र गणेश देव के आवाहन में प्रयुक्त होने लगा। जैसा कि मीमांसा–शास्त्र में भी कहा गया है – एक ही मन्त्र प्रस्थान – भेद से कई देवताओं के लिये प्रयुक्त हो सकता है इसी आधार पर यह मन्त्र गणेश के लिये प्रयुक्त हुआ है।

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद में अन्यत्र भी 'गणपति' शब्द आया है –

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमः।।[2]

उपर्युक्त मन्त्र में गणों को और आप गणपतियों को नमस्कार भी किया गया है। यहाँ गणपति के लिये बहुवचन[3] का प्रयोग सम्मानार्थ दिया गया हे जो उनके गणात्मक भाव का प्रतीक है। उक्त सूक्त के देवता रूद्र है, वस्तुतः यह कहा भी गया है कि ये गण या समुदाय गणेश का अपना नहीं अपितु रूद्र–शिव का है। रूद्र के इस गण को वैदिक साहित्य में रूद्रः भी कहा गया

1. मृतक की शान्ति एवं सद्‌गति हेतु इस यज्ञ का विधन है।
2. शुक्लयजुर्वेद, माध्यन्दिन संहिता – 16/25
3. आज भी किसी विशिष्ट व्यक्ति के सम्मान में संस्कृत में वहुवचन का ही प्रयोग होता है।

है और उनके इन गणों का विस्तृत विवेचन यजुर्वेद की विभिन्न शाखाओं में प्राप्य 'शतरूद्रिय' सूक्त में मिलता है।[1] परन्तु यजुर्वेद में ही ' रूद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरहि' में रूद्र का गणपतित्व बताया गया है। आर्यसमाजी 'प्रेम वैदिक यन्त्रालय' से प्रकाशित यजुर्वेद की प्रति में भी उक्त मन्त्र का देवता गणपति लिखा गया है। अतः पास्कर गृहसूत्र के अनुसार ' आत्मा वै पुत्र नामासि' अर्थात् पिता–पुत्र का अभेद सम्बन्ध प्रसिद्ध होने के कारण रूद्र का गणपति रूप से वर्णन आया है। इसलिये महाभारत में ' महादेव प्रसादाश्च गाणपत्यं च विन्दति।।,[2] महादेव की कृपा से गणपतित्व की प्राप्ति भी कही गयी है। यही बात एक गाणपत्य ने स्वामी शंकराचार्य को कही थी –[3]

अंशांशिनोरभेदस्तु वेदे सम्यक् प्रकीर्तितः।
गणेभ्यो गणपेभ्यश्च नम इत्यादिना यते।।
रूद्रश्च गणपात्मैव न त्वन्यो मुनिपुंगव।

इस प्रकार जब गणपति वैदिक देवता, रूद्र के अन्य रूप अथवा अशांवतार या पुत्र सिद्ध हुए, तब गणपति को 'अवैदिक देव' कहना एक अक्षम्य अपराध है।

इस अतिरिक्त श्रीगणेश की गणपतित्व की पुष्टि शिवगण की व्याख्या से भी मिलती है जिनमें शिवगणों में भूतप्रेत, पिशाच, वेताल, कूष्माण्ड, भैरव आदि ही शब्द ग्राह्य नहीं हैं, बल्कि व्यापक दृष्टिकोण से अध्यात्मगण (मन–बुद्धि–चित्त–अहंकारादि), अधिदैवतगण (सूर्य–चन्द्र–अग्नि–वायु वाय्वादि) और अधिभूतगण (पृथ्वी–जल– तेज, वायु, आकाशादि) भी ग्रहन् है। इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में – देवगण, मानवगण तथा राक्षसगण–तीनों का स्वामी होने के कारण ही गणपति को पूजनीय बतलाया गया है। यजुर्वेद में ही 'आखुस्ते पशु' [4] कहकर चूहे को गणपति का वाहन माना जाता है, इस मन्त्र के देवता भी रूद्र है अतः इसमें वैदिकता है। वैदिक यज्ञ की क्रिया में चूहे के बिल की मिट्टी लायी जाती है [5] अतएव उसके अध्यक्ष गणपति की भी यज्ञ में पूजा होती है। इसके अतिरिक्त शुक्लयजुःसंहिता में भी वाचस्पति, बृहस्पति और ब्रह्मणस्पति – सम्बन्धी अनेक कण्डिकाएं मिलती हैं।

तीनों की एकता भी भाष्यकारों ने प्रतिपादित की हैं। बृहस्पति या ब्रह्मणस्पति समस्त देवों में श्रेष्ठ, उनके पुरोहित अर्थात् अग्रगण्य हैं–

---

1. कृष्ण युजुर्वेद, तैत्तिरीय संहिता –4/5, कठ संहिता 17/11, कपिष्ठल संहिता – 27/1, मैत्रायणी संहिता – 2/9/14 तथा शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता, अध्याय 16
2. महाभारत, 'वन पर्व'
3. आनन्दश्रम, पूना के शंकरदिग्विजय की टीका – पृष्ठ 527 श्लोक 384–85
4. शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन संहिता – 3 /57
5. देखिये शतपथ ब्राह्मण – 2/1/7

'त्रयो देवा एकादश त्रयस्त्रिँशाः सुराधसः।
बृहस्पति पुराहिता देवस्य सवितुः सवे। देवा देवैरवन्तु भा।।'[1]

'त्रिगुण एकादश अर्थात् तैंतीस सुसम्पन्न देव, जिनमें बृहस्पति अग्रगण्य हैं, सविता या परमात्मा की आज्ञा में वर्तमान होकर अन्य देवों के साथ हमारी रक्षा करें।

'रक्षा णो ब्रह्मणस्पते।' [2]

शुक्लयजुर्वेद में ' गणपतये स्वाहा' से गणेश जी के लिये आहुति देने का विधान है –

'गणश्रिये स्वाहा, गणपतये स्वाहा।'[3]

ऐतिहासिक दृष्टि से कृष्णयजुर्वेद, शुक्ल यजुर्वेद की अपेक्षा बड़ा, प्राचीन और सुव्यवस्थित भी है। इसी कारण कृष्णयजुर्वेद संहिता में भी श्रीगणेश के विविध रूपों का वर्णन मिलता है। अतः कृष्णयजुर्वेद में दो गणेश–गायत्री मन्त्र हैं जिनमें तैत्तिरीयारण्यक में श्रीगणपति–गायत्री मन्त्र का रूप इस प्रकार है –

'तत्पुरूषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।[4]

इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि 'दन्ती हमको प्रेरित करें। दन्ती का अर्थ हुआ– दाँतवाला। उनका विशेषण है – वक्रतुण्ड, टेढ़ी सूँड़वाला। अतः इस मन्त्र में 'वक्रतुण्ड' नाम उनके गजानन, गजकर्ण होने का तथा 'दन्ती नाम उनके 'एकदन्त' होने का स्पष्ट संकेत करता हैं यद्यपि दन्ती में दाँतों की संख्या निर्देश नहीं हैं, तथापि यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसी को दिया जा सकता था, जिसके दाँतों में कोई विशेषता रही हो। ऐसी दशा में स्वभावतः गणेशजी के एकदन्त, एकरद जैसे नामों की ओर ध्यान जाता है और यह स्पष्ट हो जाता है कि 'दन्ती' गणेशजी का ही नाम है। 'वक्रतुण्ड' नाम इसी निष्कर्ष की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त मैत्रायणी संहिता में उपलब्ध गणेश–गायत्री का रूप भिन्न है –

'तत्कराटाय विद्महे, हस्तिमुखाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।'[5]

इस मन्त्र में हस्तिमुखगजानन और दन्ती को 'करं शुण्डादण्डंआटति' सूँड को

1. शुक्ल यजुर्वेद संहिता – 20/11
2. वही 3/30
3. शुक्ल यजुर्वेद संहिता – 22/30
4. कृष्ण यजुर्वेद, तैत्तिरीय आरण्यक –10/1/6
5. वही, मैत्रायणी संहिता – 2/9/1/6

घुमानेवाला 'कराट' कहा गया हैं अतः इन नामों से यह संकेत मिलता है कि गणपति की प्रतिमा गजानन–रूप में उसं समय भी बनायी जाती रही तथा उसकी पूजा की जाती रही । दो प्रकार की गणपति–गायत्री भी यह संकेत करती है कि संहिताकाल में ही गणपति के भिन्न–भिन्न सम्प्रदाय भी रहे। इसके साथ मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों का गणेश के हस्तिशुण्ड को लेकर प्रलाप करना व्यर्थ और निरर्थक ही सावित होता है। गणेश के गजवदन का विशद वर्णन वेद है। मिस्त्र देश के बहुतेरे देवताओं का मुख पशु के समान था। उनके साथ वैदिक देवता गणेश का कोई सम्पर्क नहीं है और न हो सकता हैं।

अतः कृष्णयजुर्वेदीय मैत्रायणी–संहिता और काण्वसंहिता में 'गणपतये स्वाहा'[1] के द्वारा गणेशजी को आहुति प्रदान करने को कहा गया हैं इसके अतिरिक्त कृष्णयजुर्वेद में 'गणानां त्वां'[2] इत्यादि मन्त्र भी आता है जो ऊपर दिया जा चुका है। आनन्दगिरी के 'शंकरविजय' में कहा गया है कि जब एक गाणपत्य ने आचार्य शंकर के सामने गणपति का यही मन्त्र रखा, तो उन्होंने इसका खण्डन न करके अनुमोदन ही किया। इसलिये इस गणपति को यजुर्वेद में कही नैवण्टुकरीति (अन्य देवता के मन्त्र में अन्य देवता का वर्णन) से अश्वमेघ के अश्व के रूप में भी वर्णित किया गया है तो कहीं रूद्र के, कहीं इन्द्र के तो कही ब्रह्मणस्पति के तथा वृहस्पति के रूप में वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद में गणेश

यजुर्वेद में जहाँ मंत्रों द्वारा यज्ञ में हवि प्रदान कर श्रीगणेश को प्रसन्न करने की बात कही गई, वहीं अर्थवेद में संग्रहीत गणेश मंत्रों में उनसे आयुवृद्धि, प्रायश्चित और पारिवारिक एकता हेतु, दुष्ट प्रेतात्माओं और राक्षसों यथा विघ्न विनाशक आदि के निवारण के लिये प्रार्थना की गई है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'अथर्व वेद की रचना यज्ञ विधान के लिए न होकर या में उत्पन्न होने वाले विघ्नों के निवारण के लिए हुई हैं अथर्ववेद में एक स्थान पर जातवेदस ब्रह्मणस्पति से प्रार्थना की गयी है कि 'बच्चे के दो दाँत, जो माता–पिता को व्याघ्र के समान मारने के लिये उद्यत हैं, आप उन्हें कल्याणकारक बना दें।

यौ ब्याघ्रावववरूढौ जिघत्सतः पितरं मातरं चं।
तौ दन्तौ ब्रह्मणस्पते शिवौ कृणु जातवेदः।।[3]

---

1. कृष्ण यजुर्वेद, – 3/12/13, काण्वसंहिता –24/42
2. वही, –2/3/14/3
3. अथर्ववेद –6/140/1

अन्यत्र विविध प्रकार के राक्षसों के नाश की भी प्रार्थना की गयी है –

'येषां पश्चात्प्रपदानि पुरः पार्ष्णीः पुरामुखा।
खलजाः शकधूमजा उरूण्डा ये च मट्मटाः कुम्भमुटका अयाशवः।
तानस्या ब्रह्मणस्पते प्रतीबोधेन नाशय।।[1]

वृहस्पति या गणपति को वेदों में 'देवपुराहित' कहा गया है[2]। पुरोहित अग्निस्वरूप होता है[3]। इसमें पाँच विघ्नकारक शक्तियाँ विद्यमान रहती हैं। एक वाणी में, एक पैरों में, एक त्वचा में, एक हृदय में तथा एक उपस्थेन्द्रिय में। कुपित अग्निरूप पुरोहित राजा का निग्रह करता है और शान्त होने पर अनुग्रह। अतः हम पंचोपचार–पूजन द्वारा उन्हें शान्ततनु बनें जिनमें सूनृतावाक् के द्वारा यजमान पुरोहित की वाणी में स्थित विघ्न को शान्त करता है, पादोदक से पैरों के विघ्न को। अलंकारों से त्वचा में विद्यमान, तर्पण से हृदय में स्थित और अनारूद्ध सुन्दर गृहप्रदान करके उपस्थ के विघ्न को शान्त करता है। इस प्रकार शान्त हुआ अग्निस्वरूप पुराहित (गणपति) जैसे समुद्र भूमि को सुरक्षित रखता है, वैसे राजा का कल्याण करता है।

जिस प्रकार 'ब्रह्मणस्पति' में 'ब्रह्म' वेद का नाम बताया गया है उसी प्रकार अथर्ववेद–संहिता के 'स्तुता मया वरदा वेदमाता'[4] मन्त्र में वेदमाता से गायत्री ही अभिप्रेत है जिसकी पुष्टि अर्थवेद शौनक संहिता में आये गणेश–गायत्री मंत्र से हो जाती है –

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।[5]

अर्थात् हम एकदन्त को जानते है और वक्रतुण्ड का ध्यान करते हैं– वह गणेश हमारी बुद्धि को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें। गायत्री चारों वेदों की सारस्वरूपा है[6]। तब बुद्धि का अधिष्ठाता गणपति भी वेद का स्वामी होने से 'ब्रह्मणस्पति' है। पुराणों में विष्णु के अवतार भगवान् परशुराम के साथ युद्ध में गणेश का एकदन्त भग्न होने की कथा का मूल इस मन्त्र में पाया जाता है।

---

1. अथर्ववेद – 8/6/15
2. बृहस्पतिर्ह वै देवानां पुरोहितः' वही
3. अग्निमीले पुरोहितम्, ऋग्वेद। कहीं–कहीं अग्निमीडे पुरोहितम् मिलता है।
4. अथर्ववेद संहिता –19/71/1, तथा गायत्री वेद जननी गायत्री पाप नाशनी। गायत्र्यास्तु परं नास्तिदिविचेहच पावनं।।
5. वही – शैनक संहिता
6. सन्दर्भों के लिए देखिए 'मनुस्मृति – 2/72–77

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद के ही एक मन्त्र में गणपति के लिए धूम्रकेतु[1] उच्छिष्टगणपति और ज्येष्ठराज नाम भी आये हैं। इसी मन्त्र के पूर्वार्ध में ग्रहों से प्रार्थना की गयी है और उत्तरार्ध में 'धूम्रकेतु–शब्द से 'धूमकेतु र्गणाध्यक्षः' गणेश की प्रार्थना तथा चतुर्थ पाद में रूद्रदेवताओं से प्रार्थना की गयी है ठीक इसी प्रकार उन्हें 'उच्छिष्टगणपति' भी कहा गया, उसका यही भाव है कि वे 'सर्वान्तेऽवशिष्टः– सबके अन्त में शेष रहने वाले हैं। अथर्ववेद का ही मन्त्र है–

तं सुष्ठुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्। महो वाजिनं सनिभ्यः[2]।
इस मन्त्र में गणपति 'ज्येष्ठराज'रूप में स्तुत हुये हैं।

सामवेद में गणेश

सामवेद के ऋत्विज् उद्गाता का कार्य हे कि वह यज्ञों में मन्त्रों को उच्च गति से गान करे। उद्गाता शब्द का अर्थ ही है – 'उच्च स्वर के गाने वाले व्यक्ति' उदाहरण सामवेद का यह मन्त्र प्रस्तुत है –

'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्वेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। [3]

अतः सिद्ध ही है कि उक्त मंत्र उच्च स्वर द्वारा उच्चारित है जिसमें गणपति का स्वस्तिक रूप उभरकर आता है। इस मन्त्र में इन्द्र, पूषा, ताक्ष्र्य एवं बृहस्पति–ये चार देवता आकाश में तारों के रूप में इस प्रकार विराजमान हैं कि उन चारों के ऊपर से नीचे को तथा दाहिने पार्श्व से बायें को रेखा कर दी जाय तो 'स्वस्तिक' बन जाता है।

उक्त मन्त्र में चार बार 'स्वस्ति' – शब्द आने से 'स्वस्तिक' बना है। उसी वामावर्त स्वस्तिक में चारों ओर गणपति का बीजमन्त्र 'गं' विराजमान है। ध्यान से देखने पर ज्ञात हो जाता है –

卐 दक्षिणावर्त स्वस्तिक में वही बीजमन्त्र 'गं' विराजमान है। अतः गणपत्यथर्वशीर्ष में निरूपित इस बीजमन्त्र 'ऊँ' गं गणपतये नमः' – में गकार पूर्वरूप, मध्यम अकार और अन्त्यरूप अनुस्वार है। बिन्दु उत्तमरूप है। इस भिन्न अक्षरों के एकीकरण को साधन 'गं, नाद कहते हैं। और

---

1. 'शं नो मृत्युर्धूम्रकेतुः शं रूद्रास्तिग्मतेजसः, अथर्ववेद, 19/9/10
2. वही – शैनक संहिता – 20/44/2
3. सामवेद संहिता –21/3/9 ' विस्तृत यशवाले इन्द्र हमारा कल्याण करें', सर्वज्ञ पूषा हम सबके लिये कल्याणकारक हों, अनिष्ट का निवारण करने वाले गरूड़ हम सबका कलयाण करें और बृहस्पति भी हम सबके लिये कल्याणप्रद हों।

उनके मिलन को 'संहिता' कहा गया है। यह गणेशविद्या प्राप्ति का सबसे सरल मन्त्र है। अतः वेद में जहाँ कही भी इन्द्र, पूषा या ताक्ष्र्य (गरूड़) या वृहस्पति का मन्त्र आये, तो उसे स्वस्तिक अर्थात गणेश ही समझना चाहिये। जैसा कि सामवेदसंहिता के उक्त मंत्र में पहले गणपति का इन्द्ररूप से स्तवन है और सबसे पीछे बृहस्पति रूप से। इसका भाव यह हुआ कि वेद में इन्द्र भी गणपति रूप से स्तुत होते हैं तथा बृहस्पति भी। यहाँ तक कि प्रस्तुत वेद मंत्र के भाष्य के अनुसार इसमें प्रस्तु अरिष्टनेमि 22 वें जैन तीर्थङ्कर न होकर सम्पूर्ण अरिष्टों अर्थात् विघ्नों का शमन करने वाले गणेश ही हैं[1]। अतः उदयगिरि जैन–गुहा लेख गुफा संख्या –106, 425 ई0 जो कि गुप्तकालीन है की प्रथम पंक्ति में उन जैन संतों के लिये नमः सिद्धेभ्यः शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिन्होंने कठिन तपश्चर्या से सिद्धि प्राप्त कर ली है[2]। यह तो सर्व विदित है ही कि अनादि काल से ही श्रीगणेश 'सिद्धिदाता' माने गये हैं। स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक देव गणेश के ही विविध नामों के आधार पर जैन धर्म के संतों के अपने गुणों के अनुरूप नाम पड़े और उन्हीं देव के समानार्थ सम्मान भी प्राप्त किया। अतः वेदों द्वारा ही हमें श्रीगणेश देव के सभी देवों में निरूपित होने की भी पुष्टि मिलती है[3]।

चूंकि सामवेद की अपनी मौलिक ऋचाएँ का और अधिकांशतः ऋग्वेद से ही उद्धत की गयी है इसलिये यह मन्त्र 'गणानां त्वा गणपतिं' जो ऋग्वेद और यजुर्वेद में वर्णित है वह सामवेद में भी पढ़ा जाता है। यथा –

'शिवविष्णुदेवीविषयकाणामिव गणपतिविषयाणामुपनिषदामपि जागरूकत्वाच्च।कर्मकाण्डेऽपि अभ्यातानामत्र कदर्थनमपेक्ष्य स्पष्टरस्य 'गणानां त्वा' इति मन्त्रस्य वेदत्रयेऽपि पठव्यमानस्य शरणीकर्तुं युक्तत्वाच्चेति दिक्[4]।

सामवेद के एक मन्त्र में भगवान ब्रह्मणस्पति का उल्लेख उपलब्ध होता है जिसमें उपासक द्वारा उनकी प्राप्ति की प्रार्थना की गयी है –

---

1. 'कुछ विद्वान इन्हें नेमिनाथ भी कहते हैं' – पाण्डेय, राजेन्द्र, 'भारत का सांस्कृतिक इतिहास', पृष्ठ 63, लखनऊ, 1983
2. गोयल, डॉ0 श्रीराम, 'गुप्तकालीन अभिलेख' पृष्ठ 142
3. श्री गणेश के एक तत्व को निम्न वैदिक मंत्रों द्वारा समझा जा सकता है – A - 'त्वमग्ने.......द्विमाता', ' आ तू न इन्द्रः..... महाहस्ती...., 'इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरूत्मान्।
   एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्नि यमं मातरिश्वानमाहुः ।।
   ऋग्वेद – 1 /31/2, 8/81/1, 1/164/46

B- 'इन्द्रः सर्वा देवताः', 'इन्द्राग्नी वै सर्वे देवताः' शतपथ ब्राह्मण – 3/4/2/2, 6/3/3/21

C- 'त्वमिन्द्र' गणपत्युपनिषद – (1)

D- त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुत्वं रूद्रस्त्वमिन्द्रस्त्वमग्निस्त्वं वायुत्वं सूर्यस्त्वं चन्द्रमास्त्वं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम।।'
गणपत्यथर्वशीर्ष

4. 'निर्णयसागर संस्करण – पृष्ठ –3

'प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता[1]।

यही मन्त्र ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी आया हुआ है। मन्त्र का आशय है कि ब्रह्मणस्पति और वाग्देवता– भगवती वाणी (सरस्वती) हमें प्राप्त हों।

ब्राह्मण ग्रन्थों में गणेश

वेद की संहिताओं के अध्ययन से विशेष रूप में मालूम होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में लोग अपनी मनोरथ की सिद्धि के लिये इन संहिताओं के मन्त्रों से प्रार्थना, स्तवन, और यज्ञ द्वारा श्रीगणेश को प्रसन्न करते थे। वेद का दूसरा भाग 'ब्राह्मण' है उसमें यज्ञ के विधान का विशेष विचार है। प्रत्येक वेद का अपना–अपना ब्राह्मण है जिसमें हम केवल ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेद के शतपथ, ब्राह्मण और सामवेद के सामविधान ब्राह्मण का ही उल्लेख करेंगे क्योंकि उसमें श्रीगणेश सम्बन्ध पूजन विधि, यज्ञ विधि ही नहीं अपितु श्रीगणेश के गजमुख होने के पीछे उठे संशय को समाप्त करने की विधि भी बतलाई गई है।

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि इन्द्र और अग्नि की सब देवताओं के रूप में स्तुति की जा सकती है – इन्द्रः सर्वा देवताः, इन्द्राग्नी वै सर्वे देवाः। यही कारण है कि गणपति को अग्निस्वरूप कहा गया हे जो अशान्त होने पर विघ्न ही उत्पन्न करते थे। इसीलिये उन्हें शान्त करने हेतु पंचोपचार– विधि द्वारा पूजन करना चाहिये–

'स एनं शान्ततनुरभिहुतोऽभिप्रीतः स्वर्गलोकमभिवहति क्षत्रं च बलं च राष्ट्रं च विशं च[2]।

पञ्चोपचार में व्यक्ति की पाँच विघ्नकारक शक्तियों पर नियन्त्रण रखने का विधान है जो उनके वाणी, पैरों, त्वचा, हृदय और उपस्थेन्द्रिय में विद्यमान रहती है ऐतरेय ब्राह्मण ही में वर्णित है।

'अग्निर्वा एष वैश्वानरः पंचमेनिर्यत् पुरोहितः, तस्य वाच्येवैका मेनिर्भवति पादयोरेका त्वच्येका हृदय एकोपस्थ एका..........[3]।'

'सामविधान ब्राह्मण' में भी 'आ तू नः,[4] 'सुहस्त्या'[5] में इति प्रथम षष्ठे च 'एषा वैनायकी नाम

---

1. सामवेद, आग्नेयपर्व –2/56
2. ऐतरेय ब्राह्मण
3. वही, 8 पंचिका, अध्या0 5/24/27
4. साम0 पू0 –2/3/3
5. वही – 6/3/7

संहिता' इसको विनायक (गणेश) का मन्त्र कहा गया है। विनायकसंहिता में ही उल्लेख मिलता है – 'एतान् प्रयुञ्जन् विनायकान् प्रीणाति'[1]। इस मन्त्र से स्पष्ट ही है कि यह गणेश पूजा की विधि है।

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ की क्रिया विधि का विस्तृत विवेचन मिलता है। उसी में यह भी वर्णित है कि 'वैदिक यज्ञ की क्रिया में चूहे के बिल की मिट्टी लायी जाती है[2]। अतएव उसके अध्यक्ष गणपति की भी यज्ञ में पूजा होती है।

अतः श्रीगणेश के गजमुख होने से उठी संशय और जिज्ञासा को समाप्त करने में ब्राह्मण ही सक्षम हैं जो हमारे इन सभी प्रश्नों का उत्तर दे देता है कि 'श्रीगणेश गजमुख से सार्थक भाषा बोल कैसे सकते हैं। सिर कटने पर गजमुख का संधान कैसे हुआ। उनकी मृत्यु क्यों न हो गयी' अतः ये सभी संदेह 'श्रद्धा' और शतपथ ब्राह्मण के इस वर्णन से समाहित हो जाते हैं कि 'अर्थर्वा के पुत्र दध्यड् का सिर काटकर अश्विनीकुमार से यज्ञपूर्ति की विद्या अश्विनी कुमार ने सीखी । सिर कटने से दध्यड मरे भी नहीं, घोड़े के सिर का संधान भी हो गया। उससे बोलचाल तथा विद्या–प्राप्ति भी सम्भव हो गयी[3]। कहीं यह बात ब्राह्मा भाग की होने से किसी को खटक न जाय, अतः उन्हें वेदसंहिता में भी देख लेनी चाहिये –

'अथर्वणाय अश्विनौ दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैस्यतम्।'[4]
'यवं दधीचो मन आविवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं (अश्वनौ) वदत्।।'[5]

इस सम्बन्ध में एक प्रत्यक्ष उदाहरण मास्को 24 सितम्बर। ' मास्को ईवनिंग' के अनुसार रूसी वैज्ञानिक कल एक कुत्ते का सिर एक अन्य किस्म के कुत्ते की गर्दन पर लगाने में सफल हो गये। पत्र में लिखा है – 'दो सिरोवाला कुत्ता सकुशल है और उसके दोनों सिर खते–पीते हैं'[6]

फलतः उक्त वैदिक कथा की भाँति तथा प्रत्यक्ष वैज्ञानिक रूसी घटना की भाँति गजमुख का संधान तथा उससे भाषण–शक्ति भी सम्भव है। अगर हम इस शंका से कि हाथी का इतना बड़ा सिर छोटे मनुष्य की गर्दन पर कैसे जुड़ गया, श्रीगणपति को अनार्य माने, तो क्या अश्व

1. साम0 विधान ब्राह्मण
2. शतपथ ब्राह्मण –2/1/7
3. वही – 14/1/1–19–24
4. ऋक् संहिता –1/117/22
5. वही – 1/119/9
6. कल्याण, श्री गणेश अंक में वर्णित। ' देखिए वीर अर्जुन, दिल्ली, सितम्बर 25, 1958

के सिर वाले वैदिक ऋषि दध्यङ् को भी अनार्य ऋषि मान लिया जायेगा? मनुष्य और सिंह की संकीर्ण आकृतिवाले नृसिंहावतार तथा मत्स्य, कूर्म, वराह और हयग्रीव की आकृतिवाले विष्णु को भी क्या 'अनार्य देव' मान लिया जायेगा। यदि इन विसंगतियों से हम सहमत हो सकते हैं तो फिर गणनायक का गजानन होना स्वाभविक ही है।

आरण्यकों में गणेश

ब्राह्मण–ग्रन्थों की तरह प्रत्येक वेद का अपना–अपाना 'आरण्यक' ग्रन्थ है। ये ग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थों के सहायक है और यज्ञों के रहस्यों को स्पष्ट करते हैं। इन ग्रन्थों में दार्शनिक विचारों का विशेष वर्णन है। यही कारण है कि कतिपय महत्वपूर्ण 'उपनिषद्' आरण्यक ग्रन्थों के ही भाग हैं। जैसे 'ऐतरेय उपनिषद' ऐतरेय आरण्यक का 'महानारायण उपनिषद्' तैत्तिरीय आरण्यक का ' कौषीतकि उपनिषद्' कौषीतकि आरण्यक का भाग है। शतपथ–ब्राह्मण का चतुर्थ काण्ड का कुछ भाग ' आरण्यक कहलाता है और इसी आरण्यक का अन्तिक छः अध्याय 'वृहदारण्यक' नाम का महत्वपूर्ण उपनिषद् है। इसी प्रकार 'छान्दोग्य उपनिषद्' भी आरण्यक से मिला हुआ ग्रन्थ है। यही कारण है कि दार्शनिक विचारों के लिये उपनिषदों के साथ–साथ आरण्यकों का अध्ययन भी आवश्यक है।

कतिपय विद्वान मानते है कि आरण्यक–ग्रन्थों में श्रीविनायक गणपति सम्बन्धी उल्लेख ऐसा संकेत देते हैं कि श्रीगणेश की उपासना वैदिकयुग एवं पूर्व–वैदिक युग में भी लगभग वर्तमान रूप में प्रचलित थी। तैत्तिरीयारण्यक में महादेव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय और नन्दी का पृथक्–पृथक् गायत्री– मन्त्र मिलता हे जिससे इनमें से प्रत्येक का स्वतन्त्र देवता के रूप में लोक में उपास्य होने का प्रमाण प्राप्त होता हैं तैत्तिरीयारण्यक में एवं नारयणोपनिषद् में श्रीगणपति के गायत्री –मन्त्र का रूप यों है –

'तत्पुरूषाय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि। तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।' इसमें यह प्रार्थना की गयी है कि 'दन्ती हम को प्रेरित करें। अतः इस मन्त्र में हस्तिशुण्ड और दन्ती को ध्यान करना होता हैं दन्ती का अर्थ हुआ– दाँत वाला। उनका विशेषण है – वक्रतुण्ड, टेढ़ी सूँडवाला। दन्ती में दाँतों की संख्या का निर्देश नहीं है, परंतु यह स्पष्ट है कि ऐसा नाम उसी को दिया जा सकता था, जिसके दाँतों में कोई विशेषता रही हो। ऐसी दशा में स्वभावतः गणेशजी के एकदन्त, एकरद–जैसे

नामों की ओर ध्यान जाता है और यह स्पष्ट होता है कि 'दन्ती गणेशजी का ही नाम है। 'वक्रतुण्ड' नाम इसी निष्कर्ष की पुष्टि करता है।

उपनिषद में गणेश

उपनिषदों का ब्राह्मण भाग में अन्तर्भाव होने से उन्हें 'वेद' माना जाता है – 'मन्त्रब्राह्मणयो र्वेदनामधेयम्' । उदाहरणार्थ मुक्ति कोपनिषद् में वेद की सभी शाखाओं का एक–एक उपनिषद् माना गया है। वेद तो ज्ञानस्वरूप है ही, इसमें संदेह नहीं, किंतु ज्ञान का तात्विक विवेचन वेदों के शीर्षस्वरूप उपनिषदों में भी आया है। उपनिषदों में अविद्या का नाश, मोक्ष की प्राप्ति, ब्रह्मतत्व का साक्षात्कार आदि भिन्न–भिन्न विषयों का निरूपण है। परंतु विचार करने पर मालूम होता है कि ये सभी अर्थ वस्तुतः एक ही विषय का प्रतिपादन करते हैं। उपनिषद शब्द का अर्थ है – वेदों के निकट आना, बैठना आदि। वस्तुतः उपनिषद के माध्यम से ही हम वेदों को समझ सकते हैं। उपनिषद ज्ञान के आगार हैं। यही कारण है कि उपनिषदों की समता दूध देने वाली गायों से की गयी है। यथा– 'सर्वोपनिषदों गावों गोग्धा गोपालनन्दनः।

छन्दोग्योपनिषद् के अनुसार –

सदेव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयम्' ।[1]
'सर्व खल्विदं ब्रह्म तञ्चलानिति शान्त उपासीत' ।[2]

'सत्' ही सबसे पहले था। वह एक मात्र परब्रह्म है, सच्चिदानन्द स्वरूप है। वही सत् है, असत नहीं। जो सत् है वही चित् है, जो चित् है, वही आनदरूप हे और जो आनन्दरूप है, वही सत् है। सत् का अर्थ है सर्वकालिक, चित् का अर्थ है – चैतन्यरूप और आनन्द का अर्थ है – सदा सुखमय। सदूप, चिद्रूप और आनन्दरूप सत् इस विश्व का मूल कारण है। उसी में स्फुरित हुआ ' एकोडहं बहुस्यां प्रजायेय– मैं एक हूँ, अनेक हो जाऊँ। महानारायण– उपनिषद् के अनुवाक में भी कहा गया है ' वही ब्रह्मा है, शिव है, हरि है, इन्द्र है, अक्षर है और परमसत्ता है[3]। मैत्रायणी–उपनिषद् इसी सिद्धान्त का उल्लेख करता है कि 'सारे देवता निराकार ब्रह्म के ही विविध रूप हैं[4]।

---

1. छन्दोग्योपनिषद – 6/2/1
2. वही – 3/14/1
3. महानारायण उपनिषद् – 3/1
4. ब्रह्मणो वावैताअत्यास्तनवः परस्यामृतस्याशरीरसय। ब्रह्म खल्विदं वाव सर्वम्।' मैत्रायणी उपनिषद् –4/6

अतः गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद्, पूर्वत्तरतापिनी उपनिषद् और गणपत्यथर्वशीर्ष उपनिषद भी गणपति के इसी परम एकत्व को बताता है और उनका यह परब्रह्मस्वरूप ओंकार रूप में व्यक्त है। इसी प्रकार अन्य उपनिषद् ग्रन्थों में भी इस तत्व पर विचार किया गया है।

अतः उपर्युक्त वर्णित विवेचन गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् में देखने को मिलता है–

'गणेशो वै सदजायत तद् वै परं ब्रह्म।'[1]

अर्थात् वह एक सत् ही गणेश परब्रह्मरूप में अभिव्यक्त है।

इसी आशय का मन्त्र तैत्तिरीयोपनिषद् में भी देखने को मिलता है –

'यतो वा इमानि भूतानि ज़ायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म।'

जिससे ये भूत उत्पन्न होते हें, उत्पन्न होकर जिनसे जीवन धारण करते हैं और मृत्यु को प्राप्त हो कर जनमें ही लीन होते है, उसे जानने की इच्छा मनुष्य का लक्ष होना चाहिये। ब्रह्म है। वस्तुतः दृश्यमान समस्ज जगत् उसी ब्रह्म से व्याप्त है। जगती के कण–कण में वह रमा हुआ है। श्रुति कहती है –

'ईशावस्यमिदँ सर्वम्यत्किंच जगत्यां जगत्'।।[2]

अतः मनद्वारा ग्राहय तथा वाक्द्वारा वर्णनी सम्पूर्ण भौतिक जगत् को तो 'ग' कार से उत्पन्न हुआ जाने तथा मन और वाक् से अतीत ब्रह्म विद्यास्वरूप परमात्मा को 'ग' कार समझे। और इस 'ग' अक्षर के देवता गणेश हैं। अतः गण–ईश के चिन्तन तथा वर्णन में तथा वाणी समर्थ नहीं है। अतःऐसे सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म गणेश को गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद बिना रूप, नाम व गुण का बताता है। वही गणेश निर्गुण, निरहंकार, निर्विकल्प, निरीह, निराकार, आनन्दरूप, तेजोरूप, अनिर्वच और अप्रमेय कालातीत गणेश है[3]।

अतः ऐसे परमतत्व गणेश की निर्गुण और सगुण दोनों रूपों में उपासना की जा सकती

---

1. 'सोऽपश्यदात्मनाऽऽत्मानं गजरूपधरं देवं शशिवर्ण चतुर्भुजं यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते यतो वाऽऽयन्ति यत्रैव यन्ति च। तदेवदक्षरं परं ब्रह्म। एतस्मांजायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुरापो ज्योतिः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। पुरूष एवेदं विश्वं तपो ब्रह्म परामृतमिति। 'गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद्' –1/2
2. ईशावास्योपनिषद
3. न रूपं न नाम न गुणम्। 'सः ब्रह्म गणेशः'.......पुरातनो गणेशः निगद्यते'। इसी आशय के कन्त्र अन्यत्र भी द्रष्टव्य है– 'यतो वचो निवर्तन्त अप्राप्य मनसा सह। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' –2/4 ' न चक्षुषा ग्रह्यते नापि वाचा'। मुण्डकोपनिषद्' –3/8

है। श्रुति का ही वचन है – 'ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह–नपश्चद्ब्रह दक्षिण तश्चोत्तरेण[1]। अस्तु इस सिद्धान्तानुसार 'गणेश' भी निर्गुण–सगुण' रूप से सर्वत्र विद्यमान हैं।

'ॐ तद् गणेशः। ॐ सद् गणेशः। ॐ परं गणेशः। ॐ ब्रह्म गणेशः'।[2]

'वही तत्–गणेश है, वही सत्–गणेश है, वही परगणेश है, वही ब्रह्म–गणेश है।'

तचिंत्स्वरूपं निर्विकाहं अद्वैतं च'।[3]

वही चिद्रूप निर्विकार औरअद्वितीय हैं। वही सद्रूप गणेश आनन्दरूप है।[4]

अतः इसी प्रकार गणेश के मांगलिक स्वरूप को गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् एकाक्षर ओंकार रूपी ब्रह्म भी बतलाता है –

'ॐ गणेशो वै ब्रह्म तद् विद्यात्। यदिदं किं च सर्व भूतं भव्यं जायमान च तत् सर्व मिव्योचक्षते'।

उसके अनुसार एकाक्षररूप ब्रह्म की व्याख्या भूत, भविष्य, वर्तमान सभी ओंकार रूप है। यह त्रिकालस्वरूप और त्रिकालातीत ओंकाररूप ब्रह्म गणेश ही स्वयं मांगलिक होकर उपासकों का रक्षण करता है[5]।

'ओंकार शब्दश्च एतौ.......माङ्गलिकावुभौ'।

अतः जिस प्रकार प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओंकार का उच्चारण आवश्यक है, उसी प्रकार प्रत्येक मांगलिक कार्यो के आरम्भ में श्री गणेश की पूजा करने का कारण यही है और यह परम्परा शास्त्रीय है उसे किसी गणेशभक्त ने प्रारम्भ नहीं की। छान्दोग्योपनिषद में लिखा है कि देवताओं ने ओंकार का आश्रय लेकर ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की। ॐ को 'प्रणव' प्रणवाक्षर भी कहा गया है[6]।

---

1. मुण्डकोपनिषद –2/2/11
2. गणेशोत्तरतापिन्युनिषद् –2/1
3. वही
4. ' आनन्दो भवति स नित्यो भवति स शुद्धो भवति स मुक्ततो भवति स स्वप्रकाशो भवति स ईश्वरो भवति स मुख्यो भवति स वैश्वानरो भवति स तैजसो भवति स प्राज्ञो भवति स साक्षी भवति स एव भवति स सर्वो भवति स सर्वो भवतीति।' 'गणेशोत्तर तापिनी –5
5. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मेदं सर्वम्। तस्योपव्याख्यानम् सर्वभूतं भव्यं भविष्यदिति सर्वमोंकार एवं। एतच्चान्यत्त्रिकालतीतं तदप्योंकार एव। सर्वह्मेतग्दणेशोऽयमात्मा ब्रह्मेति।' 'गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद' –1
6. ......प्रणवश्छन्दसामिव, रघुवंश, दिलीपस्यवशिष्ठा श्रमगमनम्, प्रसंग।

गणेशपूर्वतापिनी उपनिषद् –2/2

इसके अतिरिक्त श्रीगणेश के श्रीविग्रह का एक भाग–गजमुख–एकाक्षर परब्रह्म रूप ओंकार का ही प्रतीक है। केवल इस ब्रह्म रूप को देखकर कुछ विद्वान भी भ्रम में पड़ गये और श्रीगणेशजी को अनार्यो के देव मान बैठे। वैदिक सनातनधर्म में रूढ़ प्रतीकोपासना का रहस्य यथार्थरूप से समझने से इस भ्रान्त धारणा का निराकरण हो जाता है। 'गणेशोत्तरतापिनी–उपनिषद्' में यह रहस्य सम्यक् रूप से प्रकट किया गया है –

'ततश्चोमिति ध्वनिरभूत। स वै गजकारोऽनिर्वचनीया सैव भाया जगद्बीजमित्याह।
सैव प्रकृतिरिति गणेश इति प्रधानमिति च मायाशबलमिति च'।

इन उपनिषद् ग्रन्थों में अन्यत्र श्रीगणेश के ज्येष्ठराज, गजवदन, वक्रतुण्ड और प्रियपति आदि नामों के आम्नात होने से भी उनकी वैदिकता सिद्ध होती है –

(क) गणानां त्वा गणनाथं सुरेन्द्रं कविं कवीनामातिमेधविग्रहम्।
ज्येष्ठराजं वृषभं केतुमेकं स नः श्रृण्वन्नूतिभिः सीद शश्वत्।।

'गणपति गण–समूह के नाथ सुरेन्द्र हैं। वे क्रान्तदर्शियों में प्रधान हैं, अतिशय, मेधावी हैं। इसी कारण वे मानों अतिमेधा के विग्रहस्वरूप हैं। वे उमामहेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र, तेजस्वी, एक और अद्वितीय केतु हैं। वे हमारी स्तुति अनवरत श्रवण करते हुए यज्ञशाला में अधिष्ठित होकर रहें।

(ख) ....वक्रतुण्डस्वरूपिणम्।

पार्श्वाधः स्थितकामधेनुं शिवोमातनयं विभुम्।
रूवमाम्बरनिभाकाशं रक्तवर्ण चतुर्भुजम्।।[1]

गणेशजी चतुर्भुज हैं, उनका वर्ण लोहित है। वे गजवदन हैं। उनका शुण्ड वक्र है। वे भक्तो के लिये कामधेनुस्वरूप परमेश्वर हैं।

गणानां त्वा गणपतिम्।
सप्रियाणां त्वा प्रियपतिम्।
सनिधीनां त्वा निधिपतिम्।
तत्पुरूषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।

1. गणेशपूर्वतापिनी उपन्निषद् –2/2

तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।[1]

'मैं गणसमूहों के पति गणपति, प्रियगणों के प्रियपति, निधिसमूहों के निधिपति उन परम पुरूष को जानता हूँ। उनके वक्र (हस्ति) शुण्ड का ध्यान करता हूँ। वे ब्रहद् दन्तधारी देव हमारी बुद्धि को सत्पथ में प्रेरित करें।'

उपर्युक्त वर्णित ये दो उपनिषद् 'अथर्वशिरः' के अन्तर्गत है। महाभारत मे लिखा है तथा आचार्य शंकर ने भी इनसे प्रमाण उद्धत किये हैं। अतएव वहाँ इन्हें अर्वाचीन या क्षेपक कहकर तर्क करने का अवसर नहीं प्राप्त हो सकता।

गणपत्यथर्वशीर्ष' में श्री गणेश की परमतत्व और ब्रह्म रूप में जो स्तुति की गयी है, वह उन्हें अन्य देवताओं से अभिन्न बताती हैं। अतःगणपति–उपनिषद् के प्रथम–खण्ड में गणेश जी के सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप का बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन प्राप्त होता है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि गणेशजी का गजवदन सम्पूर्ण जगत् के सृजन्, पालन तथा प्रलय की सूचना देता है[2]।

अतः इसी उपनिषद् में 'खं ब्रह्म' आकाश ब्रह्म है, कहकर आकाश की ब्रह्मरूपता सिद्ध की गयी है, अतः आकाशस्वरूप होने से गणेशजी भी निष्कल, निरंजन, निर्गुण, निराकार, अनवद्य अद्वैत, अज, अखण्ड एवं अभेद परब्रह्म हैं। ऐसे सच्चिदानन्द 'अद्वितीय' श्रीगणेश पर ब्रह्म की ज्ञानमयी और बाङ्मयी रूप चिन्मय ब्रह्म कहा गया है।

ज्ञान की अभिव्यक्ति वाणी द्वारा होती है इसी कारण श्रीगणेश को वाणी का नियन्ता होने के कारण मूलाधार में स्थित माना गया है क्योंकि मूलाधारचक्र परावाक् का केन्द्र है। योगशास्त्र के आचार्यो का कहना है कि मेरूदण्ड के मध्य जो सुषुम्ना नाड़ी है, उसमें नीचे से ऊपर तक नाड़ीकन्द या नाड़ियों के गुच्छे होते हैं। इन्हें क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, चक्र गुदामूल से दो अंगुल ऊपर होता है और चक्र के मध्य में चतुष्कोण आधारपीठ पर श्रीगणेश जी विराजमान हैं। योग या प्राण साधना द्वारा इस मूलाधार चक्र में एक दिव्य शक्ति जाग्रत होती है और फिर यही शक्ति ऊर्ध्वगामिनी होकर अन्य चक्रों को भी स्वतः ही जाग्रत कर देती है। योग व प्राण के साथ वाक् व नादमय ओंकार शब्द के जप–ध्यान द्वारा ही ज्ञान और शक्ति की प्राप्ति होती है अतः

---

1. गणेशपूर्वतापिनी उपनिषद 1/5
2. 'ऊँ नमस्ते गणपतये। त्वमेव प्रत्यक्षं तत्वमसि। त्वमेव केवलं कर्तासि। त्वमेव केवलं धर्तासि। त्वमेव केवलं हर्तासि। त्वमेव सर्व खल्विदं ब्रह्मासि। त्वं साक्षादात्मासि नित्यम्।
   गणपति उपनिषद् , 'अथर्वशीर्ष' – (1)

पतंजलि ने योगदर्शन में इसका स्पष्टीकरण, इस सूत्र के माध्यम से किया है कि तस्य वाचकः प्रणवः' ।

ओंकार श्रीगणेश का प्रतीक चिनह हैं और स्वयं वह ज्ञान और शक्ति के देव कहे गये हैं इसी कारण उपनिषद् में मूलाधार में उनकी स्थिति बतलाते हुये उन्हें प्रणव कहा गया जिनका कि योगीजन नित्य ध्यान करते हैं[1]। श्री दुर्गा को भी मूलाधार निवासिनी कहा गया है [2]। उपनिषद् में श्रीगणेश की जो मूलाधार में स्थिति बतलाई गई है वह उनके प्रथम पूज्य होने के प्रमाण को भी प्रस्तुत करती है जिस प्रकार योगियों की योग साधना द्वारा मूलाधार प्रथम स्थान पर होने के कारण सर्वप्रथम प्रकाशित होता है और उसके प्रकाशित होते ही समस्त चक्र स्वतः ही प्रकाशित होने लगते हैं, उसी प्रकार कोई भी साधक किसी भी देव का पूजन करें, जब तक वह सर्वप्रथम श्रीगणेश का स्मरण व पूजन नहीं करता है, उसके सभी प्रयास निष्फल ही जाते हैं।

अतः ऐसे अनूठे और अद्वितीय श्रीगणेशजी का ' गणपत्यथर्वशीर्ष्ज' में एक श्रेष्ठ मन्त्र उपलब्ध है–

'गणादिं पूर्वमुच्चार्य वर्णादि तदनन्तरम्।.....ऊँ गं गणपतये नमः।[3]

इस मन्त्र में 'गकार' आया है, उसके बाद वर्णादि 'अकार' है और उससे परे सानुनासिक अनुस्वार है। साथ में प्रणव है। इस मन्त्र में 'गं' बीज है और 'ओंकार' शक्ति। अतः 'गकार' पूर्व रूप है, 'अकार' मध्यमरूप है और 'अनुस्वार' अन्त रूप है। बिन्दु उत्तररूप है। इन भिन्न अक्षरों के एकीकरण को साधन 'गं' नाद कहते हैं और उनके मिलन को 'संहिता' कहा गया है। यह गणेशविद्या प्राप्ति का सरल मंत्र है।

अथर्वशीर्ष के मध्य के मन्त्रों में गणेश–गायत्री भी दी हुई है, जिनमें उनको एकदन्त और वक्रतुण्ड नाम से सम्बोधित किया गया है –

'एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।'[4]

हम एकदन्त को जानते हैं और वक्रतुण्ड का ध्यान करते हैं – वह गणेश हमारी बुद्धि

1........त्वम् मूलाधारस्थितोऽसि नित्यम्।......त्वां योगिनो ध्यायन्ति नित्यम्।.....त्वं भूर्भवः स्वरोम्।। 'श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम् –(6)
2. मूलाधार निवासिनी इह पर सिद्धि प्रदे–आरती श्रीदुर्गासक्ष्शती
3. श्री गणपत्यथर्वशीर्षम्
4. श्री गणपत्यथर्वशीर्षम्–(8)

को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें।

श्रीगणेशजी के ध्यान में एक मन्त्र ऐसा भी आया है जिसमें उनका वह यथार्थरूप वर्णित है जो हम आज की मूर्तिकला में देखते हैं। इसमें उनका एकदन्त, चतुर्भुज हाथों में पाश, अंकुश, अभय एवं वरदान मुद्रा धारण किये, मूषक चिन्ह कील ध्वजा लिये, रक्तवर्ण, लम्बोदर, शूर्पकर्ण और लाल वस्त्र धारी रूप वर्णित है। इसके साथ यह भी वर्णित है कि उनके शरीर में लाल चन्दन लगा हुआ है और जिन्हें लाल सन्दर पुष्प अर्पित किये जाते है जिनका योगीजन नित्य ध्यान करते हैं[1]।

अन्त में श्रीगणेश के ऐसे विविध रूपों के चरण कमलों में नमन करके सद्बुद्धि प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं।

'नमो व्रातपतये नमों गणपतये नमः प्रमथपतये नमस्तुऽस्तु ।
लम्बोदरायैकदन्ताय विघ्ननाशिने शिवसुताय श्रीवरदमूर्तये नमः।।[2]

व्रातपति को नमस्कार, गणपति को नमस्कार, प्रमथपति को नमस्कार, लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय, श्रीवरद मूर्ति को नमस्कार है।

अतः अथर्वशीर्ष की परम्परा में गणपति के पूजन में प्रार्थना रूप में इस 'गणपति अथर्वशीर्ष' के पाठ की परम्परा हैं। अब हम इस उपनिषद् के विभिन्न फलस्तुति और उन्हें प्राप्त कराने वाली विविध विधियों को जानेंगे –

एतदथर्वशीर्ष योऽधीते। स ब्रह्मभूयाय कल्पते।.....सहस्त्रा वर्तनात् यं यं काममधीते तं तमनेन साधयेत्।[3]

इस अथर्वशीर्ष का जो पाठ करता है, वह ब्रह्मीभूत होता है, वह किसी प्रकार के विघ्नों से बाधित नहीं होता, वह सर्वतोभावेन सुखी होता है, वह पंच महापानों से मुक्त हो जाता है। सायंकाल इसका अध्ययन करन वाला दिन में किये हुये पापों का नाश करता है, सायं और प्रातःकाल पाठ करने वाला निष्पाप हो जाता है। सदा पाठ करने वाला सभी विघ्नों से मुक्त हो जाता है एवं धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष इन चारों पुरूषार्थो को प्राप्त करता है। यह अथर्वशीर्ष उसको नहीं देना चाहिये, जो शिष्य न हों। जो मोहवश अशिष्य को उपदेश देगा, वह महापापी होगा।

---

1. एकदन्तं चतुर्हस्तं...........रक्तपुष्पैः सुपूजितम्।.....' श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम्' – (9)
2. वही –10
3. श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम् – (11)

इसकी एक हजार आवृत्ति करने से उपासक जो कामना करेगा, इसके द्वारा उसे सिद्ध कर लेगा[1]। सायणाचार्य ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है –'समयकालात्मकंभयहारिणे अमृतात्मक प्रदत्वात्' अर्थात् गणेशजी कालात्मक भय को हरण करने वाले हैं, क्योंकि वे अमृतात्मकपदप्रद हैं।

इसी प्रकार कुछ मन्त्र ऐसे भी है जिनमें अभिषेक और व्रत विधि द्वारा और विभिन्न वस्तुओं से पूजन कर श्रीगणेश को प्रसन्न कर विभिन्न आशीष प्राप्ति के विधान वर्णित हैं –

अनेन गणपतिमभिषिंचति स वाग्मी भवति।
चतुर्थ्यामनश्नंजपति स विद्यावान भवति।
इत्यथर्वणवाक्यम्।
ब्रह्माद्याचरणं विद्यात्।
न बिभोति कदाचनेति।।

जो इस मंत्र के द्वारा श्रीगणपति का अभिषेक करता है, वह वाग्मी हो जाता है। जो चतुर्थी तिथि में उपवास कर जप करता है, वह विद्यावान् (अध्यात्मविद्याविशिष्ट) हो जाता है। यह अथर्वण–वाक्य है। जो ब्रह्मादि आवरण को जानता है, वह कभी भयभीत नहीं होता[2]।

यो दूर्वाकुंरैर्यजति स वैश्रवणोपमो भवति।
यो लाजैर्यजाति स यशोवान् भवति।
स मेधावान् भवति।
यो मोदकसहस्त्रेण यजति व वाछिंतफलमवाप्नोति।
यः साज्यसभिन्दिर्यजति सर्व लभते स सर्व लभते।।
अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग्ग्राहयित्वा सूर्यवर्चस्वी भवति।
सूर्य ग्रहे महानद्यां प्रतिमास निधौ वा जप्त्वा सिद्धमन्त्रो भवति।
महाविघ्नात् प्रमुच्यते।
महापापात् प्रमुच्यते।
महादोषात् प्रमुच्यते।
स सर्वविद् भवति।

---

1. श्रीदेव्यथर्वशीर्ष में भी देवी की स्तुति करने वाले के लिए ऐसे ही फल का कितान है।
2. श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम् – (12)

य एवं वेद।

इत्युपनिषत्।[1]

अर्थात– जो दुर्वाकुंरोद्वारा यजन करता है, वह कुबेर के समान हो जाता है। जो लाजा के द्वारा यजन करता है, वह यशस्वी होता है, वह मेधावान् होता है। जो सहस्त्र मोदकों के द्वारा यजन करता है, वह मनोवांछित फल प्राप्त करता है। जो घृताक्त समिधा के द्वारा हवन करता है, वह सब कुछ प्राप्त करता है। जो आठ ब्राह्मणों को इस उपनिषद् का सम्यक ग्रहण करा देता है, वह सूर्य के समान तेजस्वी होता है। सूर्यग्रहण के समय महानदी में अथवा प्रतिमा के निकट इस उपनिषद् का जप करके साधक सिद्ध मन्त्र हो जाता हैं सम्पूर्ण महाविघ्नों से मुक्त हो जाता है। महापापों से मुक्त हो जाता है। वह सर्वविद हो जाता है, जो श्रीगणेश की सार्वभौमिकता एवं सार्वजनीनता से परिचित है।

वेदाङ्गो में गणेश

वैदिक साहित्य के अध्ययनाध्यापन की सुत्यवस्था के लिये साहित्य का सृजन हुआ है, उस साहित्य को हम 'सूत्र–साहित्य' कहते हैं। इस सूत्र–साहित्य को ही वेदांग कही संज्ञा से अभिहित किया जाता है[2]। वेदांग छः हैं – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द और ज्योतिष। ये वेदों के साथ अङ्गागी–भाव से सम्बद्ध है। अतः काव्यशास्त्र में 'अंग' शब्द का यह अर्थ प्रतिपादित किया गया है –'वेदों के वास्तविक अर्थ का भलीभाँति दिग्दर्शन कराने वाला। जैसा कि कहा गया है – 'अगन्यन्ते– ज्ञायन्ते अभीभिरिति अगांनि। अर्थात् जिन उपकरणों से किसी तत्व के परिज्ञान में सहायता प्राप्त होती है, वे 'अंग' कहलाते हैं। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि वेदांग में पारंगत हुए बिना श्रुति के गूढ़ रहस्य और प्रकृत अर्थ को हृदयंगम करना सम्भव नहीं।

यहाँ हम केवल कल्प, व्याकरण और निरूक्त के माध्यम से ही गणपति–उपासना का उल्लेख करेंगे।

वेदाङ्ग· साहित्य में कल्प का दूसरा और अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कल्प का आविर्भाव वैदिक कर्मकाण्डीय–यज्ञ यागादि के यर्थार्थ अनुष्ठान के लिये किया गया था। जैसा कि उसका शब्दार्थ किया गया है – "कल्पों वेद विहितानां कर्मणामानुपूर्त्येण कल्पना शास्त्रम्"

---

1. श्रीगणपत्यथर्वशीर्षम् – (13–14)
2. भारतीय सेंसकृति पृ0 256

अर्थात् कल्प वेद निहित कर्मो का भलीभाँति विचार प्रस्तुत करने वाला शास्त्र है। कल्पसूत्र के विद्वानों ने चार भेद बतलाये हैं – श्रौत, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र के माध्यम से श्रीगणेश का वैदिक स्वरूप ज्ञात होता है, जो उनके विनायक रूप को दर्शाता है।

विनायक शब्द का अर्थ 'सेनापति' होता है उनके पार्षद और पार्षदियाँ ही उन की सेना या उनका गण है, जिसके अधिपति होने के कारण वे 'गणपति' या 'गणेश' हैं। वस्तुतः यह गण या समुदाय गणेश का अपना नहीं अपितु रूद्र शिव का है। आशुतोष, परमकारूणिक, भूतभावन् भगवान शंकर ने इस जगत् के उन क्षुद्र प्राणियों को भी अपनी शरण में ले रखा है। जो विचित्र और विकृत आकार–प्रकार के हैं, जो स्वभाव से ही उत्पाती एवं उपद्रवी हैं और जिनका काम है, लोगों का काम बिगाड़ना। भूतेश्वर भगवान शिव ने स्वाभाविक औदार्य वश इन प्रमथों एवं भूतगणों को स्वीकार तो किया किन्तु वे इनके क्रिया कलापों से बहुत संतुष्ट नहीं हुए। अतः किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता अनुभव की गई जो शिव के इन उत्पाती गणों पर नियंत्रण रख सके जो इस भूत सेना का स्वामी या नायक हो और जिसका आदेश मानकर ये अपने स्वभावजन्य उत्पात एवं उपद्रव से विमुख हो सकें। यह सोचकर उनहोंने स्वतः अपने अंश से ही इस गण के अधिपति 'गणेश'या 'गणपति' की सृष्टि की जिन्हें इन गणों के विशिष्ट नायक' होने के कारण 'विनायक' की संज्ञा प्रदान की गई।

अधिकांश गण मानवाकृति के नहीं हैं वे विचित्र आकार–प्रकार रखते हैं। अतः विनायक का शरीर एवं उनकी मुखाकृति गणों के अनुरूप ही बनाई गई। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जो किसी भी कार्य के आरम्भ में गणेश या विनायक का पूजन करेगा, उसके कार्यं में विघ्न डालने से भूत–प्रेत, प्रमथ आदि गणों को गणेश रोकेगें। गणों के अधिपति के रूप में वे गणों को उक्त कार्य में विघ्न न डालने का आदेश देंगे जिससे कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होगा और सफलता मिलेगी।

अतः ऐसे ही विनायक का 'मानव गृह्यसूत्र' में एक वृतान्त मिलता है – अथातो विनायकान् व्याख्यास्यामः। उनकी संख्या चार बताई गई है जिनके नाम हैं शालकंटकट, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन। इसके साथ ही इसमें कहा गया है कि जिन व्यक्तियों को विनायक अवशिष्ट कर लेते हैं। तो उसकी मानसिक स्थिति एवं क्रियाकलापों में विषमता उत्पन्न हो जाती है – वह मिट्टी के ढेर बटोरने लगता है तिनके तोड़ते रहते हैं, अंगो में लेख लिखते हैं, बुरे स्वप्न देखने लगता है। इनसे अवशिष्ट राजकुमार योग्य होने पर भी राज्य प्राप्त नहीं कर पाते। गुणवती कन्यायें भी वर प्राप्ति से वंचित रह जाती हैं। सुलक्षणा स्त्रियाँ भी पुत्रवती नहीं होती......वैश्यों का व्यापार नष्ट हो जाता है, किसानों की खेती मारी जाती है।

अतः इस वृतान्त के साथ ही सूत्र में विनायक – शान्ति का विधान भी वर्णित है। अथर्ववेद की नौ संहिताओं में से छः संहितायें जो पाँच सूत्र ग्रन्थों में विनियोजित है वे हैं–

नक्षत्रकल्पों वैतानस्तृतीयः संहिता विधिः।
तुर्य आङ्गिरसः कल्पः शान्तिकल्पस्तु पंचमः।।[1]

इन सूत्रों में पंचम सूत्र 'शान्तिकल्प' में विनायक (गणेश) पूजा, ग्रहपूजा और ग्रहयज्ञादि का निरूपण किया गया है। और अन्य सूत्र–ग्रन्थों में विघ्न–बाधाओं के निवारण हेतु शान्ति विधान वर्णित है। जैसा कि प्रारम्भिक प्राचीन सूत्रग्रन्थों में गणेश, नवग्रह आदि की पूजा नहीं दीखती, उसका यही कारण है कि प्रत्येक कार्यारम्भ में शान्तिकर्म की आवश्यकता पड़ती है। प्रत्येक ग्रह्यसूत्र तथा प्रत्येक संस्कार में शान्तिकर्म निहित करना इस शोध ग्रन्थ में सम्भव नहीं है । इसीलिये एक ही शान्तिविधान की व्यवस्था की गई और अन्य ग्रन्थों में गणेशादि पूजन को आभ्युदायिक, स्वास्तिक और स्वस्तिवाचन आदि नामें से ही संकेतित कर दिया गया। उदाहरणार्थ – गृह्यसूत्रों में प्रारम्भ में कुशकण्डिका का कृत्य तथा सर्वयज्ञशेष एक बार ही उपदिष्ट कर दिया जाता है। पास्करगृह्यसूत्र [2] में उल्लेख है 'एव एव विधिः यत्र कचिद् होमः 'अर्थात् वह विधि सभी स्थानों पर निरूपित नहीं की जाती। इस प्रकार 'शान्तिकल्प' में गणेश–गृह पूजा आदि का उल्लेख हो जाने से प्रत्येक सूत्रादि में गणेश–गृह–पूजा का पृथक् उल्लेख अनावश्यक समझा गया।

इसी प्रकार बोधायन गृह्यसूत्र में श्रीगणेश की प्रथम अर्चना का विधान है – 'अथातो विनायककल्पान व्याख्यास्यामः।[3] अतः उनको सभी कार्यों में सिद्धि विनायक एवं धन ऐश्वर्य तथा पशुओं को प्रदान करने वाला बताया गया है। अगले मन्त्र में उनके लिये विघ्न तथा विघ्नेश्वर संज्ञाएं प्रयुक्त हुई हैं। उपासकों के भक्तिभाव से संतुष्ट होकर वे उनके समस्त उद्यमों को निर्विघ्न करते हुए उन्हें कार्यों में सफलता प्रदान करते हैं –

विघ्न विघ्नेश्वरागच्छ विघ्नत्येव नमस्कृत।
अविघ्नाय भवान् सम्यक् सदास्माकं भव प्रभो।।[4]

इसी स्थल पर आगे विनायक (विशिष्ट नायक) तथा 'भुवनपति' भूतानां पतिः (सम्पूर्ण भुवन के तथा प्राणियों के स्वामी) आदि कहा गया है और उनके लिये शूर, वीर उग्र तथा भीम

1. वायुपुराण–61/54
2. पास्करगृह्यसूत्र 1/1/27
3. बौधायन गृहपरिशिष्ट सूत्र – 3/10
4. बौधायनगृह्यसूत्र

(भयंकर) आदि विशेषण प्रयुक्त हुए हैं। वे वरद (वर प्रदाता) हैं तथा उनके साथ 'पार्षदों' और पार्षदियों का एक विशाल गण रहता है –

विनायकाय भूपतये नमो विनायकाय स्वाहा।
विनायकाय भुवनपतये नमो विनायकाय भूतानां पतये नमः।
हस्तिमुखाये स्वाहा, वरदाय स्वाहा।
विघ्नपार्षदेभ्यः स्वाहा, विघ्नपार्षदीभ्यः स्वाहा।[1]

इसके अतिरिक्त बौधायन धर्मसूत्र[2] में गणेश के विषय में सर्वाधिक विस्तार से विवरण प्राप्त होता है इसमें विनायक और स्कन्द, षण्मुख, महासेना तथा षष्ठी आदि देव–देवियों की उपासना की विधियाँ हैं। और वहाँ श्रीगणेश ' विनायक' के लिये वक्रतुण्ड, एकदन्त, हस्तिमुख, लम्बोदर, स्थूल तथा विघ्न (राज) विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं।

इसी प्रकार शब्दस्वरूप और व्युत्पत्ति–ज्ञान के लिये व्याकरण की उपयोगिता वेदांग–शास्त्र में प्रसिद्ध है। अतः व्याकरणचार्यपाणिनीमुनि की 'अष्टाध्यायी' के 'जीविकार्थे चापण्ये।'[3] तथा 'इवे प्रतिकृतौ'[4] आदि सूत्रों में मूर्तिपूजा का प्रमाण मिलता है। 'पाणिनी' आदि सूत्रों में मूर्तिपूजा का प्रमाण मिलता है। 'पाणिनी–शिक्षा' भी उपर्युक्त 'अष्टाध्यायी' का ही समकालीन ग्रन्थ है जिसमें' व्याकरण को वेदपुरूष का मुख कहा गया है – मुखं व्याकरणं–स्मृतम्।

अतः इन दो सूत्रों के भाष्य में पतंजलि में मूर्तिपूजा का तथा कैयट (द्वितीय–तृतीय शताब्दि ई0 पूर्व) ने शिव, स्कन्द, विशाख और गणपति– मूर्तियों का उल्लेख किया है। इसके साथ ही श्रीगणपति का ओंकार रूप भी प्रतिपादित हुआ है जो परब्रह्म का प्रथम व्यक्त स्वरूप है। भगवान पतंजलि कहते हैं – तस्य वाचकः प्रणवः। ओंकार – यह परब्रह्म का वाचक तथा स्तावक भी है। उनके भाष्य निःसन्देह गुरू–शिष्य परम्परा द्वारा जो ज्ञान का स्त्रोत प्रवाहित होता आ रहा है, उसके ही प्रकाशक हैं। अतएव स्वीकार करना पड़ता है कि उनसे बहुत पहले, यहाँ तक कि पाणिनी से बहुत पूर्व से ही इन सब देवताओं की मूर्तिपूजा वैदिक आराधना में प्रचलित थी।

वेदाङ्ग के चौथे अंग निरूक्त में भी यत्र तत्र श्रीगणपति के ब्रह्मतत्व का निरूपण प्राप्त होता है। निरूक्त पद की व्याख्या सायण ने इस प्रकार की है – 'निरपेक्षतया पदजातं यत्र उक्तम्

1. बौधायनगृह्यसूत्र
2. बौधायन धर्मसूत्र 2/5/6
3. पाणिनी 'अष्टाध्यायी' – 5/3/99
4. वही –5/3/96

तत्र निरूक्तम्' अर्थात् अर्थ की जानकारी के लिये स्वतन्त्र रूप से जो पदों का संग्रह है, वही निरूक्त है। अतः इसके टीकाकार दुर्गाचार्य ने निरूक्त की व्याख्या कर उसके महत्व को दर्शाया है। यास्क 'निरूक्त' में लिखते हैं – बृह्मणस्पतिः – ब्रह्मणः पाता वा पालयिता वा।' अर्थात् ब्रह्मणस्पति को ब्रह्म अर्थात् अन्न या वेदादि का पालनकर्त्ता कहा गया है। दुर्गाचार्य ने इस पर लिखा है – 'ब्रह्म' का अर्थ अन्न और ऋगादि वेद हैं। वर्षा के द्वारा ओषधियों का निष्पादन करते हुये यह दोनों का रक्षक बन जाता हैं ब्रह्मणस्पति को गणों का गणपति भी कहा गया जिसका अर्थ सायण ने इस प्रकार किया है – देवादि गणों से सम्बन्ध रखने वाला गणपति, देवों के गणों का स्वामी[1]। वस्तुतः गणपति का भी यही अर्थ है – अक्षर–गण[2] का पालक । यास्क का ही कथन है – 'महाभाग्ययाद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।[3] अत्यन्त ऐश्वर्यशाली विविध शक्तिसम्पन्न होने से एक ही परमात्मा विभिन्न गुणों के कारण अनेक प्रकार से स्तुत एवं प्रशंसित हैं। त्रिगुण (सत्व, रजस, एवं तमस्) का एकमात्र अधिपति होने के कारण वह परमात्मा ही 'गणपति' या 'गणाधिपति' कहाता है। निरूक्तकार स्पष्ट कर देते हैं–'एकस्यात्मनाऽन्ये देवाः प्रत्याङ्गनि भवन्ति।' अर्थात् एक ही परमात्मा के ये सारे देवगण विभिन्न अंश हैं, प्रत्यगं हैं। सभी देवताओं की महती शक्ति अथवा पराशक्ति एक ही है।

उक्त पुष्कल प्रमाणों से स्पष्ट है कि गणेश विनायक वैदिक आर्यों के देवमण्डल के एक महत्वपूर्ण उपास्य देवता थे। पाश्चात्य इतिहासकार ऐलिस गेट्टी का यह मत कि गणेश एक अनार्य देवता है, पूर्णतः अमान्य है। अतः ऊपर वर्णित तीन 'कल्प–सूत्रों में गणेश की उपासना का उल्लेख इसका प्रमाण है जो कि पाणिनी की अपेक्षा भी अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग के समाज की विधि – व्यवस्था के विषय में व्याकरण और कल्पसूत्र का जो साम्य प्राप्त होता है, उससे दृढरूप से प्रमाणित हो जाता है कि हिंदूधर्म में गणेशजी की पूजा अति प्राचीन काल से प्रचलित रही है।

---

1. गणेश, पृ0 –1
2. coomarswamy attributes his reputation as ' patron of letters to the double meaning of the ward, Gana, which besides being the name of the followers of siva, is also the 'technical designation of carly lists ar callections of related works (गणेश) in Bulletin of the Boston Museum of Fine arts - vol xxvi, P -30 April 1982) गणेश, Alice Getty.
3. यास्क 'निरूक्त' 3/6/1

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

जनपद–जालौन की गजानन गणेश प्रतिमाओं का सर्वेक्षण, परिचय, उद्भव एवं विकास

भारतीय संस्कृति सदा से ही धर्म प्रधान रही है। धार्मिक परम्परायें ही इस देश को पतन के गर्त में गिरने से रोक सकी हैं। प्रत्येक धर्म को मानने वाला अपने धर्म को सार्वभौम कहता है। सब धर्म वाले परमात्मा की सर्वव्यापी तथा अप्रतिहत शक्ति में विश्वास रखते हैं। यह परमात्मा तत्वतः एक ही है – एकमेवाद्वितीयम्। वेदों में गुणकर्मानुसार अनेक नामों से अनेक देवताओं की स्तुति की गई हैं[1]। परन्तु मूल सत्ता एक ही है – एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।[2] वस्तुतः सभी विशिष्ट मानव अपनी–अपनी रूचि, विश्वास, आस्था और श्रद्धा के अनुसार किसी एक अभीष्ट देव के उपासक हैं।

प्रत्येक हिंदु धर्म में कोई भी कार्यदेवाराधना से प्रारम्भ किया जाता है जो धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति के साथ, ही निर्विध्न कार्य–सिद्धि की मनोदशा को संबल प्रदान करके लक्ष्यपूर्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। गणपति अथवा गणेश उन्हीं परमात्मा का एक अन्यतम नाम है। देवाराधना में गणेशजी का अतिशायी महत्व सर्वविदित है। तैंतीस करोड़ देवताओं में वही एक ऐसे देवता हैं जिनको प्रथम पूज्य होने का गौरव प्राप्त है। किसी भी देवता की आराधना और प्रत्येक मंगल–कार्य के आरम्भ में यथाशास्त्र विधिपूर्वक श्रीगणेश का स्मरण, वन्दन व अर्चन किया जाता है। परन्तु, सामग्रियों के अभाव में केवल 'श्रीगणपतये नमः' श्रीगणेशाय नमः, का स्मरण ही कल्याणकारी होता है। अतः मुहावरे की भाषा में ही देखें तो किसी कार्य के लिये 'श्रीगणेश' कहने का तात्पर्य ही है कि उस कार्य का आरम्भ होने वाला है। उनके प्रथम–पूज्य होने के अनेक कारण ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं में मिलते हैं जिनका विवरण आगे किया गया है।

गणेश की उपासना बहुत प्राचीन है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त का धर्माभिमानी हिंदू चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो गणपति की पूजा अवश्य करता है। गणेश पूजा के नाम पर उनकी प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल से ही प्रारम्भ हो गया था[3]। इस बात की पुष्टि एलोरा की गुफाओं के उन चित्रों से होती है जिसमें गणपति–चित्रण, काल काली व सप्तमातृकाओं के साथ किया गया हैं यह आठवीं–शताब्दी का है। देश के अन्य क्षेत्रों की ही भाँति –जालौन में भी गणेश का परम्परागत पूजन होता है।

---

1. श्रीमद्भागवत् मे ऐसा ही विचार व्यक्त है–'ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्धते।' 1/2/11
2. श्वेताश्वत्तरोपनिषद
3. वर्मा, महेन्द्र 'बुन्देलखण्ड का इतिहास, पृ0 67

यहा अनेक सुन्दर गणेश मन्दिर हैं और उनमें भगवान गणेश की विविध प्रतिमाओं की स्थापना की गई है। जिनमें से कुछ सम्भवतः चन्देलों और मराठों ने स्थापित करवायी थी। चन्देल कालीन बुन्देलखण्ड में गणेश पूजा का बड़ा प्रचार था। वहां से प्राप्त अनेक गणेश प्रतिमाओं से इस बात की पुष्टि होती है। तीन प्रकार से निर्मित गणेश प्रतिमाएं इस प्रकार हैं।

1. गणेश अपनी शक्ति के साथ
2. नृत्य करते हुए। इस रूप में वे दो भुजाओं से लेकर बीस भुजाओं वाले तक दिखते हैं।
3. सप्तमातृकाओं में वीरभद्र के साथ अथवा एकाकी रूप में और प्रायः नृत्य मुद्रा में[1]।

चन्देलकाल में पंचदेवों के नाम पर हिन्दू धर्म में स्मार्त पूजा के रूप में पांच सम्प्रदायों का महत्व बढ़ गया – वैष्णव सम्प्रदाय, शैव सम्प्रदाय, गाणपत्य सम्प्रदाय, सौर सम्प्रदाय (सूर्य के नाम पर), एवं शक्ति सम्प्रदाय (शक्ति के नाम पर)। मध्यकालीन विशेषतः चन्देल काल में प्रतिमा–निर्माण की महत्ता की दृष्टि से अन्य देवों के स्थान पर गणेश की प्रतिमाओं का अधिक संख्या में निर्मित होने का कारण यह था कि उन्हें विघ्न नाशक देव माना गया है। केवल चंदेल राजाओं ने ही नहीं अपितु उनके मंत्रियों, सामन्तों, धनिकों ने अपने–अपने आराध्य देवी–देवताओं अथवा धर्म प्रदर्शन में अत्यधिक रूचि ली। यथा संवत् 1337 (1280 ई0) के अजयगढ़ के शिलालेख द्वारा चंदेल नरेश वीरवर्मन के मंत्री गणपति द्वारा गणेश की मूर्ति का निर्माण करवाया गया[2]।

इससे यह सिद्ध होता है कि चन्देली लोगों में गणेश भगवान का वही महत्व था जो कि शास्त्रों में वर्णित है। वस्तुतः चन्देल राजाओं का इतिहास बाँदा, हमीरपुर तथा झाँसी आदि जिलों से सम्बन्धित रहा है तथा यह भी चन्देल सत्ता से अत्यन्त प्रभावित रहा है। वास्तव में कालपी नगर की उन्नति चन्देलों के समय में ही हुयी[3]। कोंच नगर के पश्चिमी किनारे पर स्थित एतिहासिक चौड़ियाताल और महत्वपूर्ण पुरास्मारक 'बाराखम्भा' चन्देल कालीन की हैं[4]। स्पष्ट ही है कि जनपद–जालौन का क्षेत्र उनकी संस्कृति से अछूता न रहा होगा। इस बात की पुष्टि यहाँसे प्राप्त कुछ चन्देलकालीन शैली में बने मन्दिरों से होती है। उनमें मुख्तः मन्सिल माता उरई की नृत्यरत् अष्टभुजी गणेश प्रमिता और लक्ष्मीनारायण ' उरई की रिद्धि–सिद्धि युक्त चतुर्भुजी गणेश

1. वर्मा, महेन्द्र 'बुन्देलखण्ड का इतिहास पृ0 68
2. वही पृ0 63–64
3. जिला विकास पुस्तिका – पृ0 28
4. शुक्ल, राम सजीवन – 'कोंच के मन्दिर सरोवर एवं स्मारक

और कालपी में नागफन पर त्रिभंग मुद्रा में वंशी बजाते हुये गणेश, बड़ी माता कोंच की संगमरमर की चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा चन्देलकालीन प्रतिमाओं के महत्व को ही दर्शाते हैं।

जनपद–जालौन में श्रीगणेश के स्वतन्त्र मंदिर भले ही अधिक न हो, लेकिन यहां कुछ लघु गणेश मन्दिर अवश्य विद्यमान हैं जो कि मराठा कालीन हैं। सन् 1729 ई0 में जब बुन्देलखण्ड के एक हिस्से पर मराठों का राज्य हो गया,[1] तो उस क्षेत्र में जालौन क्षेत्र भी सम्मिलित था[2]। चूंकि मराठा महाराष्ट्रीयन होने के कारण गणेश जी के अंध भक्त थे, इसी कारण उन्होंने इस क्षेत्र में भी गणेशोत्सव की परम्परा चलाई[3] और अनेक गणेश मंदिरों का निर्माण भी कराया। कोंच की गढ़ी पर स्थित गणेश मंदिर मराठा कालीन ही है।

जनपद–जालौन में लोकाचार में यदि श्रीगणेश पर दृष्टि निक्षेप किया जाए तो हम पाते हैं कि प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिंदू–घर में, दुकान में, व्यवसाय केन्द्र में श्रीगणेश की प्रतिमा, चित्रपट या अन्य कोई प्रतीक अवश्य विद्यमान रहती है। इसी प्रकार लोकाचार के रीति रिवाजों में, शुभ संस्कारों तथा तिथि–त्यौहारों में बिना श्रीगणेशजी की स्थापना के कोई कार्य सम्पन्न नहीं होता हैं अतः यहां के लोकजीवन में उनका सर्वपूज्य होना उनका वैदिक और पौराणिक महत्व ही दर्शाता हैं कला के क्षेत्र में देखें तो यहां के प्रत्येक शिल्पियों ओर चित्रकारों ने गणेश–प्रतिमा निर्माण में शास्त्रोक्त नियमों का ही पालन किया है । अपने जनपदीय सर्वेक्षण के दौरान इस क्षेत्र में गणपति–प्रतिमाओं के जितने भी पहलुओं के अध्ययन का लघु प्रयास कर सकी हूं उसी का संक्षिप्त परिचय यहां दिया गया है।

जनपद–जालौन के मन्दिरों में गणपति – प्रतिमायें।

उरई से प्राप्त गणपति – प्रतिमायें–

ऋषि उद्दालक की तपोभूमि एवं आल्हा खंड में विख्यात कूटनीतिज्ञ माहिल की नगरी के नाम से सुप्रसिद्ध उरई नगरी झाँसी से लगभग 110 कि0 मी0 उत्तर में तथा बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार कालपी से लगभग 35 कि0मी0 दक्षिण में स्थित है। उरई, जनपद जालौन का मुख्यालय है। उरई क्षेत्र को यदि तीर्थो की पवित्र वसुन्धरा और धार्मिक मन्दिरों का स्थान कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। यहाँ के केवड़ा बाग (धुरट), ठड़ेश्वरी मन्दिर, संकट मोचन मन्दिर उरई,

---

1. उपाध्याय रमेश कुमार – 'गणपति विशेषाङ्क' पृ0 236
2. वर्मा महेन्द्र 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पृ0 110–116
3. महाराष्ट्र में भाद्रपद मास की चतुर्थी को गणपति की पार्थिव मूर्ति की पूजा बड़े समारोह से की जाती है : यही गणेशोत्सव कहलाता है' गणेश अंङ्क – पृ0 110

संकटा देवी (मौनी बाबा), राधा कृष्ण मन्दिर मुगलाना घाट (बेतवा कोटरा) और माहिल तालाब, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, मन्सिल माता, बड़ी माता और हुलकी माता[1] आदि जितने भी दर्शनीय मंदिर है, उनमें से अधिकांश मंदिरों में गणपति जी की विभिन्न मुद्राओं की सुन्दर प्रतिमायें विराजमान है।

मन्सिल माता के मंदिर जो उरई क्षेत्र के तिलक नगर में स्थित है गणेश की नृत्यत मुद्रा में अष्टभुजी प्रतिमा स्थित है। गणेश की यह नृत्य प्रतिमा मन्दिर के द्वार पर विराजमान है जो कि 26 इंच ऊंची व 13 इंच चौड़ी है। यह बलुआ पत्थर से निर्मित प्राचीन प्रतिमा है[2]।

इसी क्षेत्र का लक्ष्मीनारायण का प्राचीन मंदिर भी चन्देलकालीन शैली में ही बना हुआ है[3]। इस मंदिर में रिद्धि–सिद्धि युक्त चतुर्भुजी गणेश भगवान विष्णु व माता लक्ष्मी के गर्भगृह के द्वार पर दाहिने तरफ पूरब की ओर मुख किये बैठे हैं। मध्य प्रदेश में अमरकण्टक गहन वन में महर्षि भृगु के आश्रम में भी रिद्धि–सिद्धि युक्त सिद्ध–विनायक विराजमान है जोकि द्विभुजी है इसके अतिरिक्त गुजरात के मोढेरा गाँव के दक्षिण में भी एक मन्दिर में गणेश अपनी पत्नियों के साथ विराजमान हैं[4]। अन्तर इतना है कि इसमें उनकी पत्नी के नाम सिद्धि और बुद्धि बतलाये गये हैं।

इस मंदिर की विशेषता यह है कि 3 अप्रैल 1858 को जब झाँसी से महारानी लक्ष्मीबाई ने कालपी की ओर प्रस्थान किया था तब लक्ष्मीनारायण के मंदिर पर रूक कर उन्होंने पहले प्रथम पूज्य आराध्य श्रीगणेश को प्रणाम किया था क्योंकि उन्हें विघ्ननाशक देव माना गया हे तत्पश्चात् भगवान विष्णु और माता लक्ष्मी का आशीर्वाद प्राप्त कर आगे बढ़ी थी। 17 वीं शताब्दी का यह मंदिर मराठों के काल में बनवाया गया था। यह मंदिर बल्दाऊ चौक राजमार्ग, उरई पर दाहिनें तरफ ऊंची जगती पर स्थित है।

इसके अतिरिक्त मुहल्ला बलदाऊ चौक में ही 18 वीं शताब्दी की एक गणेश प्रतिमा अड्डा मन्दिर में विराजमान है। लोक कला में गढ़ी हुयी यह चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा बलुए पत्थर से बनी हुई है, जिसका आकार 39x28 से0मी0 है।

हुलकी माता मन्दिर, उरई की एक चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड

---

1. हुलकी माता का मन्दिर कोंच और उरई के अतिरिकत अन्यत्र देखा और सुना नहीं गया' शुक्ल रामसजीवन कोंच के मन्दिर सरोवर एवं स्मारक' पृ0 15
2. पुरवार, डा0 हरीमोहन – 'जनपद–जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन' शोध ग्रन्थ' पृ0 22
3. 'जनपद–जालौन के अन्य स्थानों (कोंच, जालौन, कालपी) पर भी लक्ष्मीनारायण के मन्दिर स्थित है जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध और ऐतिहासिक मन्दिर कालपी का है जिसे कन्नौज के राजा हर्ष शीलादित्य ने 7वीं सदी में निर्मित कराया था। ' शुक्ल, डा0 रामसजीवन – ' कोंच के मन्दिर सरोवर एवं स्मारक' पृ0 30
4. पत्नियों के साथ गणेश की प्रतिमाएं इस क्षेत्र में बहुत कम मिलती है।

संग्रहालय, उरई में देखी जाती है, जो बालू पत्थर से निर्मित 11वीं शताब्दी की हैं[1]। इसके अलावा उरई से ही पीतल धातु की ऐसी अनेक गणेश प्रतिमायें उपलब्ध हुई है, जो आज बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई की निधि है।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में गणेश की अनेक प्रतिमाएं इस क्षेत्र के विभिन्न अंचलों से संग्रहीत करके एकत्र की गयी है। प्रतिमाशास्त्रीय अध्ययन करने पर इनकी मौलिकता के साथ–साथ निर्माण काल, निर्माण सामग्री आदि का भी ज्ञान प्राप्त हो सकता हैं इस संग्रहालय के निदेशक ने यद्यपि इन का तिथि निर्धारण कार्वन विधि से कराया हे, तथापि कतिपय प्रतिमाओं का काल निर्धारण अद्यावधि नहीं हो सकता है गणेश की प्रतिमाओं के अतिरिक्त मुद्राओं पत्रों, लोक कलाओं, भित्तिचित्रों आदि में भी उनका अंकन हुआ है।

कोंच से प्राप्त गणपति प्रतिमायें

उरई मुख्यालय से पश्चिम की ओर 28 कि0मी0 की दूरी पर स्थित 25° 59° उत्तरी अक्षांश तथा 79° 10° पूर्वी देशान्तर के मध्य बसी कोंच[1] नगरी जनपद जालोन के नन्दन वन के रूप में विख्यात है। इस नगरी में गणेश महोत्सव की परम्परा 17वीं शताब्दी से चली आ रही है। इस बात की पुष्टि कोंच नगरी के उस प्राचीन मन्दिर (महाकालेश्वर मन्दिर)[2] से होती है जो कि लगभग 200 वर्ष पुराना है। बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों कालिंजर, खजुराहो, गैराहा, चाँदपुर, चौका, चित्रकूट, झाँसी देवगढ़, नाँदचाँद और पाली आदि स्थानों पर भी अनेक शिवमन्दिर निर्मित हैं[3]।

कोंच क्षेत्र के मन्दिर के विषय में ऐसा कहा जाता है कि यह मन्दिर 17वीं शताब्दी में बंजारों के समय में बनवाया गया था जिससे नायक का मठ भी कहा जाता है। बताते हैं कि इस मन्दिर का पुजारी 'नायक' नामक पण्डित था जिसके कारण इस मंदिर को नायक मठ भी कहा जाता हैं[4]।

कोंच नगरी में स्थित यह मन्दिर रेलवे लाइन के समीप एक विशाल प्रांगण में बना हुआ है जो सड़क के बायें किनारे पर एक ऊंची जगतीपीठ पर स्थित है। इस मन्दिर का गर्भगृह

---

1. पुरवार, हरीमोहन,जालौन जनपद में श्रीगणेश के विविध स्वरूप' पृष्ठ 17–18
1. शोध प्रबन्ध – जालौन जनपद के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन' पृ0 67 देखिए, जालौन गजेटियर
2. इस नाम का सर्वाधिक महत्वपूर्ण मन्दिर उज्जैन में है। देखिए, शुक्ल, रामसजीवन, कोंच के मंदिर, सरोवर एवं स्मारक–पृ0 24
3. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व – पृ0 101–105
4. सर्वेक्षण के दौरान मन्दिर के पुजारी से प्राप्त जानकारी के अनुसार'

जगतीपीठ से गहराई पर है जहाँ सीढ़ियों से उतरकर जाया जाता है। इस गर्भगृह के दक्षिण–पश्चिम में गणेश की पत्थर से बनी हुयी दो प्रतिमायें विद्यमान हैं जिनमें एक प्रतिमा मूषकासीन गणपति की है, और दूसरी पद्मासीन गणेश की है। इस मन्दिर में विद्यमान गणेश – प्रतिमा में सम्भवतः वही विशेषतायें देखने को मिली हें जो उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर के मन्दिरों में निर्मित गणेश–

प्रतिमा–शिल्प में देखने को मिलता है[1]। यहाँ की गणेश–प्रतिमाओं को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभक्त किया गया है एक वर्ग गणेश के प्रसिद्ध वाहन मूषक रहित प्रतिमाओं का है और दूसरा मूषकरहित प्रतिमाओं का। जिसमें प्रथमवर्ग की मूषकरहित सभी प्रतिमाएँ बैठी हुई स्थिति में, आसनस्थ मुद्रा में हैं। और दूसरे वर्ग की सभी प्रतिमाएं खड़ी हुई मुद्रा में निर्मित हैं एवं उन सब के साथ मूषक अवश्य है। भुवनेश्वर की दोनों वर्गों की गणेश–प्रतिमायें अलग–अलग मंदिर में स्थापित है जबकि कोंच के महाकालेश्वर मन्दिर में ये दोनों वर्ग की विशेषतायें एक साथ देखने को मिलती है अन्तर इतना है कि इसमें दूसरे वर्ग की गणेश प्रतिमा मूषक पर आसीन है जबकि भुवनेश्वर मन्दिर में यह स्थानक रूप में विराजमान है[2]।

कोंच के पश्चिमी किनारे पर गढ़ी[3] के ऊपर एक गणेश मन्दिर स्थित है जो तहसील कार्यालय एवं कोतवाली के पास है। यह मन्दिर मराठाकालीन है। इसमें गणेश की नृत्य प्रतिमा विराजमान है जो कि मराठा संस्कृति और सभ्यता की प्रतीक है। 1730 में जब वाजीराव पेशवा का बुन्देलखण्ड के एक तिहाई हिस्सा पर आधिपत्य स्थापित हुआ तब उसमें जनपद–जालौन का कोंच क्षेत्र भी सम्मिलित था। उसी समय बाजीराव पेशवा ने वहाँ पावन पूज्य आराध्य श्रीगणेश की सुन्दर नृत्य मूर्ति की स्थापना करवाई। यह मूर्ति अष्टभुजी है। ऐसी ही नृत्य प्रतिमायें हमें खजुराहो के मन्दिरों में अजयगढ़ के दुर्ग में और झाँसी के संग्रहालय में भी देखने को मिली है जिनका कोंच गढ़ी की गणेश प्रतिमा से तुलनात्मक विवरण हम आगे करेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के अन्यत्र क्षेत्रों में भी गणेश की नृत्य प्रतिमायें देखी गयी हैं जिनमें भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मन्दिर में अष्टभुजी नृत्यगणेश की मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है जो सन् 800 एवं 1060 ई0 के बीच निर्मित हुयी थी। कोंच गढ़ी की इस नृत्य प्रतिमा के विषय में कहा जाता है कि यह प्रतिमा मिट्टी में दब गई थी। 19 वीं शदी में इस प्रतिमा को खुदाई कर निकाला गया। इस मन्दिर का जीर्णोद्धार तथा प्रदक्षिणा पथ रेलिंग व फर्श का निर्माण सन् 2000 ई0 में हुआ था[4]। गणेश उत्सव के समय इस मन्दिर में

1. वृहत्संहिता के प्रतिमाध्याय में गणपति – मूर्ति की इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख मिलता है।' कल्याण, गणेश अङ्क
2. वही पृ0 446
3. बुन्देलखण्ड में छोटे दुर्गों को गढ़ कहा जाता है' बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ039
4. कोंच के मंदिर सरोवर एवं स्मारक' पृ0 63

भजन–कीर्तन आदि हुआ करते थे। लेकिन बीते दो दशक से इस परम्परा का ह्रास हो गया है।

गढ़ी की खुदाई में अनेक गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमायें भी प्राप्त हुई हैं जो इसी के समीप स्थित भारत माता मन्दिर के जगती पीठ पर एक प्रांगण में एकत्रित की गई है। इस मन्दिर का निर्माण सन् 1953 ई0 में श्री चतुर्भुज दास महन्त के संयोजकत्व में हुआ था[1]। यहाँ की संकलित मूर्तियों में नृत्य गणेश और एक मूर्ति में श्री गणेश के पावन प्रतीक हाथी का भी अंकन प्राप्त होता है जो कि साधारण स्थिति में खड़ा हुआ झूम रहा है। भारत माता मन्दिर के पास ही खेरा पति हनुमान का मन्दिर है जिसके बरामदे में दक्षिण–पश्चिमी कोंने पर बने आले पर श्रीगणपति की प्रतिमा स्थापित हैं।

कोंच में स्थित रामलला का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है। यह 300 वर्ष पुराना है। मन्दिर का निर्माण रामानुज सम्प्रदाय ने धार्मिक भक्ति भावना के प्रसार हेतु किया था। इस मंदिर के प्रसिद्ध महात्मा महन्त आत्माराम दास थे जो महारानी लक्ष्मीबाई के गुरू माने जाते हैं। इसी कारण इस मन्दिर को रानी का गुरूद्वारा भी कहा जाता है[2]। इस मन्दिर में कोपीनधारी चतुर्भुजी गणेश की सुन्दर प्रतिमा विराजमान है जो कि पीतल की है[3]। डॉ0 हरीमोहन पुरवार के मुताबिक यह मंदिर उरई स्थित रामलला मंदिर ही की एक शाखा है[4]। अतः राममन्दिर में गणेश मुर्ति की प्रधानता धर्मशास्त्रीय परम्परा का ही बोध कराती है जिसमें गणेश को सभी देवों में श्रेष्ठ, अग्रपूज्य, मंगलदाता और विघ्नेश्वर माना गया है। शास्त्रों का ही कथन है –

'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रूद्रस्त्वमिन्द्र....ब्रह्म भूभुर्वः स्वरोम्[5]। अतः गणेश में ही सभी देव रूप निरूपित किये गये हैं। वसिष्ठ संहिता में भी गणेशजी को श्रीराम का स्वरूप कहा गया है–

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्यं सच्चिदानन्दविग्रहम्।।

राम विष्णु के ही अवतार हैं इसीलिये वैष्णव–भक्त कवि तुलसीदास जी ने जिनके इष्टदेव रामभगवान थे अपने सभी ग्रन्थों के प्रारम्भ में श्रीगणेश की ही वन्दना की है। हमारे यहाँ

1. कोंच के मंदिर सरोवर एवं स्मारक' खजुराहो, देवगढ़, बानपुर और सीरोनखुर्द में भी गणेश की प्रस्तर मूर्तियां मिली हैं पृ0 25
2. वही, पृ0 27
3. पुरवार, हरीमोहन – जनपद जालौन में श्री गणेश के विविध स्वरूप पृ0 29
4. दैनिक जागरण ' कानपुर' 11 मई, 2007 'जागरण सिटी, उरई
5. गणपत्यथर्वशीर्ष

प्राचीन काल से ही 'मंगलाचरण' की परम्परा चली आ रही है जिससे सभी कार्य निर्विघ्न सम्पन्न हो – इस बात की पुष्टि इन शब्दों से होती है –

सर्वमंगलकार्येषु भवान् पूज्यौ जनैः सदा।
मंगलं तु सदा तेषां त्वत्पादे च घृतात्मनाम्।।[1]

तुलसीदास का कथन है कि गणेश ही एकमात्र ऐसे देवता हैं, जो केवल स्मरणमात्र से ही प्रसन्न हो जाया करते हैं[2]। उन्होंने राम पर आधारित ग्रंथों विशेषकर रामचरितमानस, विनयपत्रिका श्रीरामलला–नहछू, जानकी मंगल एवं 'बरवै–रामायण' के प्रारम्भ में गणेश की वन्दना बड़ी भक्ति से की है। रामचरितमानस के आरम्भ में श्लोक के माध्यम से गणेश सरस्वती की सम्मिलित वन्दना की गई है[3]। सोरठा के माध्यम से केवल गणेश से अनुग्रह किया गया है। सरस्वती ज्ञान और बुद्धि की देवी मानी गयी है और विनय–पत्रिका के प्रथम–पद में गणेश विद्या–वारिधि, बुद्धि प्रदाता, कृपासिंधु, मुदमंगलदाता और सिद्धि प्रदाता के रूप में वर्णित है। इतना ही नहीं गोस्वामी तुलसीदास ने विवाहादि मांगलिक अवसरों और यात्रा के और रामसीता विवाह–

'मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ संभु भवानि।'[4]
'आचारू करि गुरू गुर गौरि गनपति, मुदित विप्र पूजावहीं।'[5]

रामविवाह के अवसर पर दशरथ अयोध्या प्रस्थान करने से पूर्व गणेश का स्मरण करते है –

..........सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु[6]।'

इस प्रकार हम देखते हैं, कि गोस्वामी जी के रामचरितमानस और अन्य रचनाओं के माध्यम से श्रीगणेशजी के पूजन, वन्दन, स्तवन एवं स्मरण का जो संदेश दिया है, वह कोंच के रामलला मन्दिर में विराजित गणेश–प्रतिमा के कारण आज भी उपयोगी और कल्याणकारी है। इस मन्दिर का महत्व इसलिए भी अधिक है क्योंकि महारानी लक्ष्मीबाई ने झाँसी से चलकर कोंच के इसी मन्दिर में वस्त्र आदि बदलकर युद्ध वेष धारण कर कालपी की ओर प्रस्थान किया था[7]।

1. सत्योपाख्यान पू0 अध्याय –23
2. गणेश अङ्क – पृ0 113
3. मंगलाना च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।। जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करविरवदन।
   करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभगुन सदन।।
4. रामचरितमानस – 1/100
5. रामचरितमानस – 1/322/1 छन्द
6. वही, बालकाण्ड – 3001
7. त्रिपाठी, मोतीलाल – 'बुन्देलखण्ड दर्शन पृष्ठ – 159

कोंच का बड़ी माता मन्दिर के प्रवेश द्वार पर ही दाहिने तरफ एक कक्ष बना हुआ है, जिसमें गणेश की दो प्रतिमायें विराजमान है। बड़ी माता का मन्दिर चन्देल कालीन पुरास्थल बाराखम्भा के ठीक सामने बना है इसी कारण यह मन्दिर चन्देलकाल में ही निर्मित हुआ ऐसा माना जाता है[1]।

बड़ी माता मन्दिर में प्रवेश द्वार पर ही सर्व प्रथम गणेश की मूर्ति का होना गणेश के सर्व प्रथम–पूज्य होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है जो कि पौराणिक– आख्यानों में वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के गणपतिखण्ड (13/2) में लक्ष्मीपति विष्णु ने सबसे पहले गजानन की पूजा कर उन्हें 'सर्वपूज्यश्च योगीन्द्रो भव....'[2] का आशीष प्रदान किया था। इसी ग्रन्थ में अन्यत्र विष्णु उनकी स्तुति में उन्हें सबके आदि, अग्रपूज्य, सर्व–पूज्य आदि उपाधियों से विभूषित करते हैं[3] और उनके 'गुहाग्रह' नाम की व्याख्या में गुह (स्कन्द) से पहले उत्पन्न और सभी देवों में अग्रपूज्य बतलाते हुए उनकी वन्दना करते हैं[4]। शिवपुराण की रूद्रसंहिता, कुमारिखण्ड में तो स्वयं माँ पार्वती और त्रिदेवो (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) ने उन्हें सर्वगणाध्यक्ष और सर्वपूज्य होने का वर प्रदान किया था[5]। इसी सम्बन्ध में देवगणों में सर्व श्रेष्ठ कौन है इस निर्णय के लिये शिव के पास गये। शिव ने यह ज्ञात करने के लिये उनसे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा की आज्ञा दी और कहा कि जो सबसे पहले सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा कर लौट आयेगा, वही सर्वश्रेष्ठ देव होगा। शिव के इतना कहते ही इन्द्र अपने ऐरावत व कार्तिकेय अपने मयूर और अन्य सभी देव अपने–अपने द्रतगामी वाहनों से ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करने निकल पड़े। गणेश ने अपने वाहन मूषक पर बैठकर शिव की परिक्रमा की और उनके सामने आकर हाथ जोड़कर बोले– 'भगवान् मैं ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करके सबसे पहले आ गया हूँ। शिव के पूंछने पर गणेश ने सविनय उत्तर दिया ' प्रभो! आप देवाधिदेव महादेव हैं, समस्त ब्रह्माण्ड आप में ही समाहित है, इसलिए आपकी परिक्रमा ही ब्रह्माण्ड की परिक्रमा है। गणेश की ये तर्कपूर्ण, भक्तिपूर्ण और बुद्धिपूर्ण वचन सुनकर शिव प्रसन्न हुए और गणेश देवताओं में प्रथम मान लिए गये।

अतः कोंच की बड़ी माता के मन्दिर के प्रवेश द्वार पर सर्व प्रथम ये गणेश प्रतिमायें इन्ही

1. शुक्ल रामसजीवन, कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक पृ0 20
2. कल्याण, गणेश अंक – पृ0 211
3. वही, पृ0 212
4. 'गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये।
   वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेबाग्रपूजितम्।। 44/94, वी, पृ0 219
5. धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि पूर्वपूज्यो भवाधुना।।' 18/8
'......मम सर्वगणाध्यक्षः सम्पूज्यस्त्वं भवाधुना।' 18/31 वही, पृ0 228

पौराणिक–उपाख्यानों को आधार लेकर बनाई गई। जिनमें से एक प्रतिमा संगमरमर की बनी हुई है,[1] फिट ऊँची चतुर्भुजी गणेश की यह विशालतम् प्रतिमा दीवाल से टिका कर स्थापित की गयी हैं इसी प्रतिमा के वाम भाग में पत्थर की बनी हुई गणेश की एक 1x10 के आकार की एक लघु प्रतिमा भी प्रदर्शित है। प्रथम प्रतिमा अष्टदल कमल पर और दूसरी अपने वाहन मूषक पर पद्मासन में आसीन है। इसी गणेश कक्ष के फर्श पर संगमरमर के पट्ट पर एक अभिलेख अंकित मिलता है जिसमें इस गणेश कक्ष के निर्माण के विषय में लिखा है कि इसे स्व. श्री जगन अग्रवाल के पुत्र, स्व0 श्री छदामीलाल के पुत्र श्री छुटई एवं मुन्नालाल अग्रवाल 'हलवाई' कोंच ने सं 2019 वि0 (1963 ई0) में निर्माण कराया[2]। झाँसी के दुर्ग में उत्तर दिशा की ओर बनें एक विशाल प्रवेश–द्वार के सामने ही गणेशजी की भव्य व विशाल काय प्रतिमा एक मंदिर में प्रतिष्ठापित है। ठीक इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों के मंदिरों के प्रवेश द्वारों पर भी गणेश को वही स्थान मिला, है जो उनके प्रथम पूज्य होने की महिमा वर्णित करते हैं। कालिंजर का प्रसिद्ध चंदेलकालीन शैव मंदिर 'नीलकंठ मंदिर' तक पहुँचने के जो सात द्वार है उनमें से दूसरे द्वार का नाम ही 'गणेश द्वार' है। उत्तर प्रदेश के गणेश स्थलों में केदारनाथ के मंदिर में मुख्य द्वार पर पहले श्रीगणेशजी का पूजन होता है और इसके बाद यात्री मन्दिर के अन्दर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त कोंच के नारायणपुरी मन्दिर, ब्रजेश्वर महादेव सिंह वाहिनी और पसरट के हनुमान मन्दिर[3] में अन्य अनेक देवी–देवताओं के मध्य श्रीगणेश के विग्रह भी प्राप्त हुये है। नारायण पुरी मन्दिर जो कोंच के मार्कण्डेय तिराहे से पंचानन होते हुये जाने पर लगभग साढ़े तीन कि0मी0 दूरी पर स्थित हे, इसी मन्दिर के बरामदे में संतोषी माता, महाकाली माँ, भैरव बाबा और अनुमान जी की प्रतिमाओं के साथ ही दाहिने ओर उत्तराभिमुख श्रीगणेश की द्विभुजी प्रतिमा स्थापित है। आभा मण्डल से युक्त श्रीगणेश देव अपने वाहन चूहा के साथ प्रदर्शित हैं। इस मन्दिर की ईंटे तीन शताब्दी से भी पूर्व की आंकी गई, जिससे इस मूर्ति की प्राचीनता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। अतः इसी मन्दिर में मुगल शासक औरंगजेब का आगमन इसकी प्रमाणिकता को सिद्ध करता है असहिष्णु सम्राट औरंगजेब ने इस मन्दिर की चमत्कारिक शक्तियों से प्रभावित होकर इस मन्दिर के दैनिक खर्च हेतु 1400 बीघे की मालगुजारी से मुक्त जमीन लगा दी थी।

मार्कण्डेय तिराहे पर ही बनी बृजेश्वरी कॉलौनी में स्थित बृजेश्वर महादेव के मन्दिर में

1. सर्वेक्षण के दौरान शिलापट् से प्राप्त जानकारी के अनुसार, बड़ी माता मन्दिर कोंच
2. शुक्ल रामसजीवन, कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक पृ0 15–37

बने सात आलों में से एक आले में चतुर्भुजी गणेश की 1x8 की एक प्रतिमा है, शेष अय आलों में नारायणपुरी मन्दिर की ही भाँति देवियों, हनुमान और भेरव की प्रतिमा स्थापित है।

सिंहवाहिनी मन्दिर, रेलवे लाइन से लगभग 300 मीटर की दूरी पर स्थानीय वैकुण्ठधाम से पहले ही स्थित है, इस मन्दिर के प्रांगण में प्रवेश करते ही मुख्य दरवाजे पर गणेश की प्रतिमा लैन्टर पर बनी हुई हे जो उनके प्रथम–पूज्य होने के प्रमाण को दर्शाती है। इसके साथ ही इस मन्दिर के स्तम्भों पर भी श्रीगणेश चित्र बनाये गये हैं।

लाजपत नगर में जगदीश नारायण शुक्ला के बाड़े में बना लगभग दो सौ–ढाई सौ वर्ष पुराना पसरट के हनुमान का मन्दिर स्थित है। इसी मन्दिर के बाड़े में एक पीपल के वृक्ष के नीचे शिव परिवार से सम्बन्धित कुछ खण्डित मूर्तियाँ रखी थी जिनमें शिवलिंग माता पार्वती, गणेश व नन्दी के विग्रह थे। इन मूर्तियों को 2000 वर्ष पूर्व जगदीश नारायण शुक्ल ने खण्डित होने के कारण कालपी की यमुना नदी में प्रवाहित कर दी थी।

कालपी से प्राप्त गणपति प्रतिमाये–

वीर–भूमि बुन्देलखण्ड के उत्तरी अंचल में यमुना के दक्षिणी तट पर स्थित व्यास–भूमि कालपी एक ऐसा ही गौरवमय नगर हे जो हमारे पुराण इतिहास एवं साहित्यिक–ग्रन्थों में उल्लिखित होकर विविध सांस्कृतिक पक्षों की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत करता है[1]। प्रणाम विलास में नगर कालपी की स्थिति गुरूह्रद से उत्तर की ओर बतलाई गई है [2] –

गुरू ह्रद ते दिग उत्तर तीरा। ऊखल काल सुना मुनि धीरा।।
रवि तनया तट नगर सुहावन। जोंधरनदी महा अति पावन।।
मिली कालिन्दी महँ सोधाई। व्यास जन्म लीन्ही जहँ आई।।
चार वेद जिन कियो विभागा। शास्त्र पुराण सहित अनुरागा।।
व्यास नदी कालिन्दी संगम। प्रीति सहित मंजहि जो जंगम।।
मंजन करत तुरत ऋषिराई। सकल कली अधि ओध नसाई।।

बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार ऐतिहासिक नगरी कालपी मध्य रेलवे के झाँसी कानपुर शाखा में झाँसी से लगभग 147 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है। सुरेन्द्र विक्रम वैद्य के अनुसार[3]Kalpi city is situated

1. Shukl, Ramesh Chandra 'Rural India ' Kalpi Special' P-149
2. Vaidhya, Surendra Vikram 'Editor of Rural India P-133
3. Vaidhya, Surendra Vikram 'Editor of Rural India P-133

on the railway line between Jhansi and kanpur. It is 66 kilometer from Kanpur in south direction and 144 kilometer from Jhansi in north direction यह शहर 26.8 अक्षांश उत्तर 79.45 देशान्तर पूर्व में स्थित है। जालौन गजेटियर के अनुसार– " कालपी जनपद–जालौन का एक परगना है"। पुराणों में कालपी की व्याख्या इस प्रकार की है[1]–

कालाद्धिपाति कालेशो यत्र स्वेन महौजसा।
तस्मात्सम्प्रोच्यते सद्भिः कालपीति शुभस्थली।

कालपी के नामकरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने मत अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत किये हैं– व्यास क्षेत्र में कालप्य देव का टीला है। कालप्य देव की इसी टीले पर समाधि है। इन्हीं के नाम पर इस नगर का नाम कालपी पड़ा। इसे 'काम्पिल्लक" भी कहा जाता था[2]। अतः काव्यमीमांसा और प्रणाम–विलास में कालपी का नाम क्रमशः कालप्रिया और काल दिया गया है[3]। जालौन गजेटियर के अनुसार कालिब या कल्प नाम के ऋषि से इसका यह नामकरण हुआ। इतिहासकार फरिस्ता ने लिखा है कि कालपी को कन्नौज के राजा वासुदेव ने बसाया था।

प्राचीन काल में कालपी ऋषियों –महर्षियों की तपोभूमि रही है। जिस समय पुरातन आर्य संस्कृति यहाँ के अँचलों में विकसित हो रही थी उस समय यह नगरी महाभारत के अमर गाथाकार वेदव्यास की जन्म स्थली के रूप में चर्चित थी। यह क्षेत्र राजा शान्तनु की रानी सत्यवती (मत्स्यंगन्धा) का मायका था। पुराणों के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र शाम्ब ने अपने कुष्ट रोग निवारणार्थ यहाँ भव्य सूर्य मन्दिर का निर्माण कराया था[4]। प्रसिद्ध ज्योतिषाचार्य बराह मिहिर ने कालप्रियनाथ के मन्दिर क्षेत्र में जगप्रसिद्ध सूर्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था।

श्री कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास महर्षि कहे जाते हैं परन्तु पुराणों में उन्हें भगवान के रूप में पूजा गया वे उन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं[5]।

30 जनवरी 1953 को उत्तर–प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री कन्हैयालाल माणिक

---

1. ब्रह्माण्ड पुराण– अध्याय -- 1 श्लोक –16
2. जगनिक के 'आल्हाखण्ड' में उल्लिखित
3. वैद्य सुरेन्द्र विक्रम Rural India Kalpi Sepecial July - au.2002 पृ0 134 Raj Sekhar in his mimansa gave name the of kalpi as Kalpriy - Inpranav-vilas the name of city is given as kal'
4. भविष्यपुराण, पद्म पुराण
5. श्री हरिवंश पुराण – अध्याय – 41 श्लोक सं0 161
   नवमे द्वपारे विष्णुरष्टाविंशे पुराभवत्।
   वेद व्यासस्तथा जज्ञो जातूकर्ण्यपुरस्सः।।

लाल मुंशी ने वेद व्यास स्मारक के शिलान्यास के समय कालपी में कहा था कि मैं भगवान व्यास जी की जन्म भूमि कालपी में आकर भाव विह्वल हो गया हूं। भगवान व्यास आर्यत्व की मूर्ति थे। आर्यत्व के एक आदि संस्थापक के पौत्र माली मात्र के दौहिज वे भारतीय जातियों के मिश्रण के प्रतीक थे। छिन्न–भिन्न हुये वेदों को उन्होंने एकत्र किया, संस्कृति के अव्यक्त मूल्यों को व्यक्त किया अपनी संस्कृति को सातत्य दिया।.....उन्होंने अनुभव के साथ सिखलाया कि मनुष्य मात्र में दैवी अंश है। श्री वेदव्यास जी के जन्म स्थान की रज अपने सिर पर चढ़ाकर मैं कृतार्थ होता हूं और फिर मैं अपनी अंजलि देता हूं –

अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहु परोहरिः।
अभाल लोचनः शर्म्भुभगवान् बादरायणः।।
व्यासाय विष्णु व्यास रूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्म ह्दये वसिष्ठाय नमो नमः।।

इस व्यास क्षेत्र में भगवान श्री कृष्ण वेद व्यास जी के दो मन्दिर हैं। एक मन्दिर पुराना है जिसमें ऋषि वेदव्यास जी की पद्मासन मुद्रा में मूर्ति प्रतिष्ठित है। दूसरा मंदिर इसी के समीप अभी नया निर्मित हुआ है। इसे बाल वेदव्यास मन्दिर के नाम से जाना जाता है[1]। यह मन्दिर दक्षिण शैली की स्थापत्य कला पर आधारित है।

दशवीं शताब्दी में कालपी पर चन्देलों का अधिकार हुआ। चनदेलशासक मदन वर्मा व परमार देव के काल में नगर का चहुँमुखी विकास हुआ। स्थापत्य और मूर्तिकला को नये आयाम मिले। पुरातत्वविद् के0डी0 वाजपेयी के अनुसार नगर के इस स्वर्णयुग में किले का निर्माण, मन्दिरों का जीर्णोद्धार विभिन्न यमुना घाटों का निर्माण व कालप्रियनाथ के भव्य मन्दिर का निर्माण हुआ। व्यास के सम्बन्ध में एक कथा यह भी प्रचलित है कि व्यास जी ने जब महाभारत ग्रन्थ की रचना का विचार बना लिया तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि इतना विशाल साहित्य किससे लिखवाया जाए, तब उन्होंने ब्रह्माजी के परामर्श पर गणेशजी को इसका दायित्व सौंपा। इस प्रकार सम्पूर्ण साहित्य को गणेशजी ने लिपिबद्ध कर दिया[2]। कालपी व्यास की जन्मस्थली रही है इसी कारण यह क्षेत्र गणेश के विभिन्न विग्रहों से अछूता न रह सका। इनमें बिहारी का मन्दिर पातालेश्वर मन्दिर तथा पाहूलाल देवालय में गणेश की सुन्दर प्रतिमायें स्थापित हैं और मराठाकालीन गणेश मन्दिर

---

1. जिला विकास पुस्तिका, 2001–2002 पृ0 15–16 सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ0 प्र0 जनपद–जालौन।
2. बदरीनाथ से 3 कि0मी0 की दूरी पर भाणा–ग्राम के निकट व्यासगुफा के समीप ही गणेश गुफा है, जनरुति के अनुसार– 'यहीं व्यासद्वार वर्णित पुराणों को श्रीगणेश ने लिपिबद्ध किया था। 'कल्याण' गणेश अंक–पृ0 442

जिसका बालाजी बाजीराव पेशवा द्वारा जीर्णोद्धार करवाया गया था, आदि मन्दिरों के कारण जहाँ कालपी को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, वही चन्देल दुर्ग के अवशेष, रोपण, गुरू की समाधि मदरसा, पाराशन मन्दिर, शहीद स्मारक, हरचन्द्रपुर, मुगलकालीन टकसाल, बड़ा बाजार श्री दरवाजा, रंगमहल, मनोरम किलाघाट, लंका मीनार और हर्ष कालीन लक्ष्मी–नारायण मन्दिर, मृगदाव, राजमार्ग आदि दर्शनीय स्थलों से कालपी का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व भी परिलक्षित होता है।

कालपी के कुछ प्रमुख मन्दिरों में स्थापित गणपति–प्रतिमाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

कालपी के गोपाल मंदिर का निर्माण संवत् 1802 में श्री पाहूलाल जी ने करवाया था जिसे अब पाहूलाल मंदिर के नाम से जाना जाता है। यह भारतीय वास्तु शैली की प्रतिनिधि मूर्तियों का संग्रहालय है। यहाँ गणेश की सुन्दर प्रतिमायें प्रदर्शित हैं, यद्यपि इस मन्दिर का नाम ही गोपाल मन्दिर है इसलिये इस मन्दिर के मुख्य गर्भगृह में राधाकृष्ण की श्वेत एवं श्याम रंग की मनोहर विशाल प्रतिमा विराजमान हैं। कृष्ण के मन्दिर में श्रीगणेश की प्रतिमा होना स्वाभाविक ही है क्योंकि पुराण गणेश को श्रीकृष्ण का ही अवतार मानते हैं[1]। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक देवी–देवताओं की कलात्मक मूर्तियाँ वहाँ स्थापित है। इन्हीं देवी–देवताओं में प्रथम पूजय होने के कारण आराध्य श्रीगणेश की लाल पत्थर और संगमरमर की सुन्दर मूर्तियाँ वहाँ देखने को मिली हैं।

किलाघाट कालपी में भी बिहारी जी के मन्दिर में आराध्य श्री गणेश की बहुत सुन्दर प्रतिमा विराजमान है जो कि वक्रतुण्ड रूप में है उनका पेट लम्बोदर रूप में प्रदर्शित किया गया है वे गदा को धारण किये हुये हैं। गणेश की ये प्रतिमा काले पत्थर द्वारा निर्मित है। विहारी जी का यह मंदिर लगभग 500 वर्ष पुराना है।

श्रीगणेश जी के नाम पर बसा गणेशगंज मुहल्ला कालपी में एक गणेश मन्दिर स्थित है। ललितपुर से लगभग 50 कि0मी0 की दूरी पर स्थित बानपुर में भी गणेश के नाम पर एक मंदिर है। कालपी का यह गणेश मंदिर 17वीं शताब्दी में मराठा शासक बालाजी बाजीराव पेशवा द्वारा

---

1. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में श्रीकृष्ण और गणेश की एकता के साक्ष्य मिलते हैं –'श्रीकृष्णः कल्पे कल्पे गणेशरूपः तवात्मजः।' गणपतिखण्ड – 12/28 श्रीगणपति की एक प्रतिमा इस मन्दिर के पूर्वी द्वार पर स्थापित है।

जीर्णोद्धारित करवाया गया था। सर्व प्रथम बाजीराव पेशवा प्रथम ने महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में पंचरसी धातु की द्वादश भुजी गणेश की प्रतिमा सतारा के गणेश मंदिर में स्थापित करायी। इसके बाद बाजीराव पेशवा द्वितीय ने कानपुर के पास बिठुर के कलवारी घाट स्थित गणेश मन्दिर में दशभुजी गणेश की प्रतिमा सन् 1820 ई0 में स्थापित करायी थी। लेकिन कालपी के गणेश मन्दिर की गणेश–प्रतिमा पेशवाओं द्वारा निर्मित न होकर समर्थगुरू रामदास के गुरू देव द्वारा गढ़ी हुयी है। यह द्विभुजी प्रतिमा लाल बलुआ पत्थर द्वारा निर्मित है जो नागछत्र धारण किये हुये हैं। इसकी ऊंचाई 12 इंच व चौड़ाई 8 इंच है। यह मूर्ति मन्दिर के आँगन में प्रतिष्ति हैं[1]।

इसी गणेश मन्दिर के गर्भग्रह में एक ही सिंहासन पर दो संगमरमर की चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमायें स्थापित है। पहली प्रतिमा पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा निर्मित है और दूसरी प्रतिमा महारानी लक्ष्मीबाईने प्रतिष्ठित कराई थी। पेशवा बाजीराव ने सन् 1794 ई0 में इस मन्दिर के जीर्णोद्धार के समय गणेश प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा करायी थी।

कालपी नगर में यमुना नदी के दक्षिणी किनारे पर कालपी किले के पश्चिमी भाग पर पातालेश्वर मन्दिर स्थित है[2] यह मन्दिर पातालेश्वर शिंवलिंग के लिये अधिक प्रसिद्ध है, यहीं पर 19वीं शताब्दी की चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। वज्रासन मुद्रा में अंकित यह प्रतिमा संगमरमर पत्थर से बनी है। इसका आकार 27X14 से0मी0 है। निर्माण शैली के कारण यह मंदिर मराठाकालीन प्रतीत होता है, लेकिन यहाँ की भौगोलिक स्थिति के अनुसार यह मन्दिर चन्देलकालीन कालपी किले के बचे ध्वंसावशेषों के निकट होने के कारण, इसी काल का माना जाना चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां की गणेश मूर्ति पर मराठी और चन्देली दोनों शैलियों का प्रभाव था।

मारवाड़ी कुइया के हनुमान जी, जो टरननगंज में कदौरा फाटक के आगे स्थित है[3] इसी के पश्चिम में एक गर्भगृह में उत्तरी दीवाल पर बालू पत्थर से निर्मित लगभग सवा फुट ऊँची गणेश जी की मूर्ति है। यह गणेश प्रतिमा बड़ी ही आकर्षक दिखती है। इसमें गणेशजी आराम की मुद्रा में बैठे हुए हैं।

कालपी के ढोढेश्वर शिव मन्दिर में भी श्रीगणेश के विग्रह प्राप्त हुये हैं। यह मन्दिर कालपी रेलवे स्टेशन के निकट स्थित मुहल्ला तरीबुल्दा में स्थित है[4]। मन्दिर के गर्भगृह तथा

---

1. पुरवार, हरीमोहन 'गौरवशाली कालपी' पृ0 27
2. पुरवार, हरीमोहन 'गौरवशाली कालपी' पृ0 63
3. वही – 54
4. वही पृ0 65–66

सुराही के मध्य गर्भगृह के अष्ट पहलुओं में समस्त देवताओं के साथ गणेश जी की भी मूर्ति बनी हुई है, अन्य देवता शिव पार्वती, ब्रह्मा जी, सीताराम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघन, हनुमान जी और राधा कृष्ण है। इसी प्रकार गर्भगृह की उत्तरी और पूर्वी दीवाल पर क्रमशः अष्टभुजी सिंहवाहिनी और चतुर्भुजी विष्णु है, तो पश्चिमी दीवाल पर श्रीगणेश जी की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

जालौन से प्राप्त गणपति प्रतिमायें –

जालौन अपने अतीत के साये में अनेकों धार्मिक गाथाएं समेटे हुए हैं। यह 26.8 उत्तरी अक्षांश एवं 79.21 पूर्वी देशानतर के मध्य[1] स्थित है। जालौन सन् 1957 ई0 तक बुन्देलखण्ड के प्रमुख राज्यों में से एक था। ऐसा विवरण मिलता है कि अंग्रेजी शासन में हदबन्दी होने पर कालपी को जनपद के रूप में रखा। लेकिन जब 1730 ई0 के लगभग बुन्देलखण्ड पर मराठों का शासन हुआ तो उन्होंने कालपी को तहसील बना दिया। अतः तभी से जालौन को जनपद का दर्जा प्राप्त है।

यद्यपि जालौन के सम्बन्ध में गजेटियर प्रायः मौन है, तथापि, जालौन क्षेत्र के नामकरण के सन्दर्भ में अनेक किंवदन्तियां व जनश्रुतियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि जालौन को जालिम नाम के ऋषि ब्राह्मण ने बसाया था। एक जनश्रुति के अनुसार–जालौन को जन्जाल अथवा जालवन ऋषि ने अपनी तपोभूमि बनाया था, जिससे इसका नाम जालवन पड़ा और अब जालौन हो गयां एक अन्य किंवदन्ती के अनुसार यहाँ पर जलाक नाम से एक बहुत बड़ा जंगल था इसलिए इसका नाम जलावन और अब जालौन हो गया।

जालौन के प्राचीन इतिहास के संदर्भ में कोई अधिकृत पुस्तक इत्यादि नहीं है जिसके आधार पर प्राचीन इतिहास का अवलोकन किया जा सके। लेकिन किसी भी देश की संस्कृति की प्राचीनता के प्रतीक वहाँ के अवशेष स्तूप, मठ, मन्दिर आदि होते हैं। अतः भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक चेतना का आधार इस जालौन में यहाँ के धार्मिक मन्दिर हैं जिनके द्वारा जालौन की सांस्कृतिक परम्परा का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

जालौन के अंचल में अनेक मन्दिर और दर्शनीय स्थलों की भरमार है। जालौन क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों में ताई–बाई महल मरहठा कालीन वापियाँ और पाताल तोड़ कुएं प्रसिद्ध इस कुएं के विषय में कहा जाता है कि 'विक्रमी संवत से 1000 वर्ष पूर्व इस क्षेत्र के पश्चिमी किनारे पर स्थित

1. जनपद–जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन' पृ0 70

गोपालपुरा ग्राम का प्राचीन नाम गोपालगिरि था यहां पर सघन वन के मध्य गोपाल बाबा का आश्रम भी था। उनहीं के प्रताप से इस स्थान पर जल हेतु 'रामकूप' नामक कुआँ यहाँ के निवासियों की जलापूर्ति करता था[1]।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर बम्बई बाबा मन्दिर, पंचमुखी शिवमन्दिर (जालौन), भैरो मन्दिर (रामपुरा) पार्श्वनाथ मन्दिर (जैन मंदिर) तथा खेरा मन्दिर, (जालौन, पंचनदा संगम) जगम्मनपुरा आदि दर्शनीय स्थलों के कारण जालौन क्षेत्र अपना धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व बनाये हुये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि 1100 ई0 में जालौन क्षेत्र में राजपूतों का राज्य था। पंचनदा के किनारे पर स्थित जगम्मनपुर राजघराने का मूल प्रासाद यमुना नदी की ऊँची कगार पर कनारखेड़ा ग्राम में स्थित था। पूर्व में इसे कनर खेड़ा कहते थे। यह दुर्ग क्षतिग्रस्त था। इसका निर्माण 1100 ई0 में सेंगर राजपूतों ने कराया था। कनार खेड़ा के नाम पर जगम्मनपुर के राजाओं को कनार का राजा भी कहते हैं। इस क्षेत्र के उत्खनन से इतिहास के दबे हुए पृष्ठ उजागर हो सकते हैं[2]।

जालौन में हिदेरशाह (छत्रसाल के पुत्र) के नाम पर एक मुहल्ले का नाम आज भी हिदेरशाह है तथा इसके नाम पर एक चबूतरा भी इस मुहल्ले में है। यहाँ एक किला भी है जिसके चारों ओर एक खाई भी बनावाई गई थी जिसके चिन्ह आज भी दिखलाई पड़ते हैं। गोविन्देश्वर मन्दिर, लक्ष्मीनारायण मन्दिर, बड़ी बावड़ी, छोटी बावड़ी भी बनवायी गयी थी। इन मंदिरों में गणेश के विग्रह भी स्थापित हैं। गोविन्देश्वर मन्दिर जो कि मुहल्ला गोविन्देश्वर में स्थित है, में गणेश की 17वीं और 19वीं सदी की सुन्दर प्रतिमायें विद्यमान है। ये सभी प्रतिमायें पत्थर की बनी हुई है। इसके अतिरिक्त जालौन में गणेश मन्दिर के नाम पर ही गणेश का एक लघु मन्दिर स्थापित है। इस मन्दिर में गणेश रिद्धि–सिद्धि के साथ प्रदर्शित है। गणेश की यह प्रतिमा संगमरमर की बनी हुई है।

इसके अतिरिक्त जालौन के मुहल्ला काशीनाथ से भी श्रीगणेश की प्रतिमायें प्राप्त हुई है। ये गणेश प्रतिमायें जालौन के ही निवासी श्री गोपालराव बाकणकर एडवोकेट के निजी संग्रह में संरक्षित है। ये गणेश प्रतिमा 18 वीं और 17 वीं शताब्दी की है।

---

1. जिला विकास पुस्तिका 2001–2002 पृ0 7, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0 प्र0 जनपद–जालौन।
1. जिला विकास पुस्तिका 2001–2002 पृ0 44, सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग उ0 प्र0 जनपद–जालौन।

श्रीगणेश की अनेक प्रतिमायें विविध मुद्राओं में जनपद–जालौन के आस–पास के गांवों में भी प्राप्त हुई है। इनमें अकबरपुर, इटोरा, माधौगढ़[1] बहवलपुरा, सिमिरिया मौखरी (उरई) और दिरावटी (कोंच)[2] आदि प्रमुख है।

उपर्युक्त मन्दिरों के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनपद–जालौन के इन मन्दिरों में गणेश को विशिष्ट स्थान दिया गया है। इन मन्दिरों में स्थापित गणेश प्रतिमाएं प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है।

जनपद–जालौन के संग्रहालयों में संग्रहीत गणपति प्रतिमायें

जनपद – जालौन के महात्मा गांधी संग्रहालय, कालपी और बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में 12 वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी तक की श्रीगणेश प्रतिमाओं के विविध स्वरूप दर्शनीय हैं। बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के निर्देशक डा0 हरीमोहन पुरवार के निजी संग्रहालय में बहुमूल्य पत्थरों धातुओं और टैराकोटा से निर्मित श्रीगणेश की प्रतिमाओं का अनुपम भण्डार है। आमतौर पर यह प्रतिमायें द्विभुजी, चतुर्भुजी और आसनस्थ मुद्रा में हैं[3]। इस संग्रहालय की प्रतिमायें जनपद–जालौन के विभिन्न क्षेत्रों उरई, कोंच, कालपी, माधौगढ़ अकबरपुर इटौरा, मौखरी (उरई) के अलावा अन्य क्षेत्रों ओरक्षा और जयपुर आदि स्थानों से भी प्राप्त हुई है।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय की सबसे प्राचीन प्रतिमा श्रीगणेश की टैराकोटा की है जोकि गुप्तकालीन है[4]। उरई से प्राप्त प्रतिमाओं में सबसे प्राचीन गणेश प्रतिमा 11वीं शताब्दी की है, यह चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा बालू पत्थर से निर्मित है और हुलकी माता मन्दिर से प्राप्त हुई है। इसमें गणेश मूषक के साथ चित्रित हैं। लखनऊ संग्रहालय में भी 11वीं और 12वीं शताब्दी में निर्मित प्रतिमा के पादपीठ पर मूषक चित्रित है। इन्दौर संग्रहालय की एक चतुर्भुज गणपति–प्रतिमा के पदापीठ पर भी मूषक बना हुआ है[5]। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में ही पत्थर द्वारा निर्मित एक चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा 12वीं शताब्दी की है, जो कोंच से प्राप्त हुई है[6]। इसके अतिरिक्ति 18 वीं शताब्दी की प्रतिमाओं में पंचानन स्वरूप की गणेश प्रतिमा, मूषकासीन द्विभुजी नृत्य प्रतिमा कलश

---

1. श्री गणेश के विविध स्वरूप पृ0 25–26
2. कोंच के मंदिर सरोवर एवं स्मारक, पृ0 33
3. आसनस्थ और द्विभुजी गणेश की मूर्तियां उदयपुर और इन्दौर में भी देखी जा सकती हैं' गणपति विशेषांक 'सोलहवां पुष्प', पृ0 101
4. पुरवार, हरीमोहन, श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 25
5. गणपति विशेषांक 'सोलहवां पुष्प 1995, पृ0 100–101
6. कोंच में बड़ी माता मन्दिर परिसर, सिंहवाहिनी मन्दिर और गढ़ी पर स्थित गणेश मन्दिर तथा भारत माता मन्दिर के परिसर में श्रीगणेश प्रतिमाएं संकलित हैं –

पर उत्कीर्ण चतुर्भुजी गणेश और 19 वीं शताब्दी की लोककला शैली में निर्मित चतुभुजी गणेश प्रतिमायें भी विशिष्टता को ही दर्शाती हैं। आधुनिक प्रतिमाओं में लोककला युक्त चतुर्भुजी गणेश, छाताधारी द्विभुजी गणेश, कमलासीन चतुर्भुजी गणेश और लेखन मुद्रा की गणेश प्रतिमायें उरई से ही प्राप्त हुई है। ये सभी पीतल और गिलट धातुओं द्वारा निर्मित है। इनमें से कुछ प्रतिमायें डॉ. हरीमोहन पुरवार के निजी स्वामित्व में भी हैं।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में कालपी से प्राप्त प्रतिमाओं में 16वीं शताब्दी की पाषाण फलक पर उत्कीर्ण मूषकासीन चतुर्भुजी गणेश, 19 वीं शताब्दी की भूरा गौरा पत्थर की द्विभुजी तांत्रिक गणेश और आधुनिक प्रतिमा में पीतल की वज्रासन युक्त चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा विद्यमान है।

इस संग्रहालय में विभिन्न धातुओं से निर्मित गजानन प्रतिमाएं जहां एवं और बुन्देलखण्ड और समीपवर्ती क्षेत्रों में गणपति पूजा का संकेत देती है वहीं दूसरी ओर वे सन्दर्भित धातुओं की विविधता का भी उद्घोष करती हैं कतिपय मूर्तिया बहुमूल्य पत्थर, मूंगा, पन्ना, माणिक, गौमेद, स्फटिक और मोती[1] पर उत्कीर्ण की गयी हैं ये गणेश मूर्तियाँ जहाँ बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उ़रई को समृद्ध बनाती हैं वहीं अकीक पर प्रकृति द्वारा निर्मित नृत्य मुद्रा विनायकों में से एक विनायक की अनुकृति के रूप में उपलब्धता संग्रह को दुर्लभ बनाती हैं। यहाँ संकलित नृत्य मुद्रा की प्रतिमा 16वीं शताब्दी की है और ओरछा से प्राप्त हुई है। गणपति की नृत्य–मुद्रा की प्रतिमायें झांसी संग्रहालय ओर कलकत्ता संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं जो क्रमशः सीरोनखुर्द (ललितपुर, उ0प्र0) और नेपाल से प्राप्त हुई है फलतः इनके लक्षण और लांनों में भिन्नता पाई जाती है। इन दोनों स्थानों से प्राप्त प्रतिमायें क्रमशः 10वीं और 9 वीं शताब्दी की है[2]।

इसके अतिरिक्त अकबरपुर इटौरा और माधौगढ़ हैं जो क्रमशः 6 वीं और 9 वीं शताब्दी की है। एक प्रतिमा में भगवान शंकर के स्वरूप के ऊपरी भाग पर प्रभामण्डल पर स्थित स्थानक मुद्रा में अंकित श्री गणेश द्वै का अंकन मूर्ति वैभव की दृष्टि से अत्यन्त दुर्लभ एवं विरल है।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में टैराकोटा से निर्मित गणेश की 75 लघु प्रतिमायें भी संगृहीत हैं जिनका आकार अधिकांशतः "3-50x2-50" है। इनमें एक आसनस्थ प्रतिमा का आकार 8"X5-50 है जो सबसे बड़ी प्रतिमा है। इन प्रतिमाओं में विभिन्न रूपों में उनका ओंकार बालरूप, कलशयुक्त, वाद्ययन्त्र और मुखाकृति रूप शुण्डाकृति, आसनस्थ मुद्रा और स्थानक गणेश का रूप ही प्रदर्शित है।

1. पुरवार हरीमोहन–जनपद–जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप' पृ0 15
2. पुरवार हरीमोहन–जनपद–जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप' पृ0 15

इसी प्रकार कालपी के महात्मा गाँधी संग्रहालय में भी श्री गणेश देव के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। महात्मा गांधी संग्रहालय, हिन्दी भवन कालपी में सुरक्षित हाथी दांत पर चतुर्भुजी गणेशप की उकेरी गई[1] प्रतिमा द्रष्टव्य जिसके दोनों ओर चँवर डुलाती सेविकायें अंकित हैं।

इसी प्रकार प्रणिक हीलिंग (प्राण–शक्ति द्वारा उपचार) विभाग विवेकानन्द पालीक्लीनिक लखनऊ में कार्यरत डॉ0 चद्रासुब्रमण्यम के निजी संकलन में पाँच सौ से अधिक विविध–स्वरूपों की गणेश प्रतिमायें संग्रहीत हैं[2]। डा0 चन्द्रा द्वारा संग्रहीत प्रतिमाओं में से कुछ तो बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई की पाषाण–गणपति प्रतिमाओं में से कुछ तो बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई की पाषाण–गणपति प्रतिमाओं से साम्य रखती हैं। कुछ प्रतिमायें ऐसी भी हैं जो भिन्नता लिये हुये हैं जेसे पार्वती की गोद में गणेश, षडानन के साथ गणेश, शिव–पार्वती की परिक्रमा करते हुये गणेश चन्दन और बाँस की लकड़ी पर निर्मित गणेश, नागछत्रधारी गणेश और प्रभामण्डल पर स्थित गणेश आदि।

जनपद–जालौन में श्रीगणपति के चित्र

चित्र मानवीय भावनाओं की सहज एवं सशक्त अभिव्यक्ति का सुन्दर आधार है। यही कारण है कि मानव इतिहास के साथ ही चित्रकला का विकास अविछिन्न रहा है। चित्रकार रेखा और रंग के सहारे किसी आधारभूत सतह पर अंतर्जगत तथा बाह्य जगत के उद्भूत भावों को साकार करता है। शिल्पशास्त्रों में चित्रकला को अन्य कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की दात्री है[3]। चित्र के छः अंग बतलाये गये है– रूपभेद, प्रमाण, भाव, लावण्य–योजना, सादृश्य तथा वर्णिकाभंग[4]। सुन्दर चित्र के दर्शन मात्र से मानव के अन्तर्जगत में छिपी सौंदर्यानुभूति की तरंगे उद्वेलित होने लगती हैं। इन चित्रों को देशकाल की परिस्थितियों ने सतत् प्रभावित किया है। साँस्कृतिक उन्नयन के विभिन्न सोपानों के परिप्रेक्ष्य में ही क्षेत्र विशेष की चित्रकला का अध्ययन करना समीचीन होगा।

बुन्देलखण्ड में जहाँ मूर्तिकला, स्थापत्य कला जैसी अनेक कला विधाओं का बहुमुखी विकास हुआ वहीं चित्रकला के क्षेत्र में भी यहाँ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दुर्भाग्य से इस क्षेत्र

---

1. मेरा सर्वेक्षण दिनांक 25–26 अक्टूबर 2007,
2. हिन्दुस्तान 5–9.2005
3. कलानां प्रवरं चित्रं धर्म कामार्थमोक्षदम्। विष्णु धर्मोत्तर पुराण,
4. चित्रसूत्रम, 43–38

का व्यापक सर्वेक्षण नहीं हुआ है। जिससे उसका सही क्रमिक विकास ज्ञात हो सके। तथापि संयुक्त की पूर्व मध्यकालीन चित्रकला के प्रचुर प्रमाण इस क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। इस क्षेत्र में जो चित्रकारी के नमूने मिले हैं वे मुख्यतः भित्ति तथा कागज पर बने हुए हैं। इन दोनों प्रकार के चित्रों में कौन सी विधा पहले प्रचलित थी अथवा समानान्तर रूप से दोंनो का विकास साथ–साथ हुआ निश्चय–पूर्वक कुछ कहना कठिन है। जनपद–जालौन के सर्वेक्षण के दौरान अधिकांश चित्र यहाँ कागज पर ही चित्रित मिले हैं बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानों की तरह यहाँ प्रायः भित्ति चित्रों का अभाव ही रहा है केवल स्थानीय लोक चित्र कला में ही भित्ति चित्र देखने को मिलते हैं जिनका चित्रांकन हर्बल रंगों द्वारा किया जाता है। जालौन के आधुनिक चित्रकार चांदी ओर सोने की वर्क, भोज पत्र और काँच और हस्त निर्मित कागज पर वाटर कलर के माध्यम से चित्र बनाते हैं। उनके चित्रों के विषय आखेट, पशु–पक्षी तथा दैनिक दिनचर्या की अपेक्षा हिन्दू देवी–देवताओं के विभिन्न रूपों से सम्बन्धित होते हैं इन चित्रकारों ने प्रथम पूज्य आराध्य श्री गणेश के रूपों के चित्रण को विशेष महत्व प्रदान किया है। हिन्दू धर्म में गणेश बुद्धि के अधिदेवता तथा मंगलकारी माने जाते हैं। विवाहादि प्रत्येक मांगलिक कार्यों के प्रारम्भ में विघ्नों को दूर करने के लिए गणेश की पूजा की जाती है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इन्हें 'बुद्धिरासि– सुभ–गुन–सदन' सिद्धि –सदन, गजवदन, विनायक तथा विद्या–वारिधि, बुद्धि विधाता कहा है।

जनपद–जालौन में पाषाण और धातुओं की गणपति प्रतिमाओं के अतिरिकत अनेक ऐसे चित्र भी प्राप्त हुये हैं जो इस विश्वास को मूर्त रूप प्रदान करते हैं कि गणेश की पूजा से विघ्नों की शान्ति और सिद्धि की प्राप्ति होती है। इस बात की पुष्टि बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में संग्रहीत उन गणपति चित्रांकनों से कर सकते हैं जो मांगलिक कार्यक्रमों के प्रतीक पत्रों, कार्डों, बहियों, कलैण्डरों, पांडुलिपियों, जन्म–कुण्डलियों एवं पोथियों में अंकित हैं। इन समस्त संग्रहों में गणेश चित्रांकन के जो भी स्वरूप अंकित हैं वे सभी पौराणिक आख्यानों तथा गणेश–प्रकरणों से सम्बन्धित विभिन्न ग्रन्थों के आधार पर ही गढ़े गये हैं। गणेश चित्रांकनों में किसी भी प्रकार की कल्पना नहीं की गयी है, प्रत्युत वास्तविक स्वरूप प्रदान किया गया है।

उत्सव सूचक–पत्रादि में गणेश के विभिन्न रूपों के चित्रण के साथ ही उनकी विविध लीलाओं, अर्चना या उपासना की विधि–विधान व नैवद्य के प्रकार, गणेश मन्दिर निर्माण के नियम से सम्बन्धित चित्र भी अंकित मिलते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कार्डों पर भारत के प्रसिद्ध मन्दिरों में स्थापित गणपतिशिल्प के चित्रों के साथ बाह्य देश के गणपति–शिल्प के चित्र भी अंकित मिले हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि गणेशपूजन की प्रथा इस देश में नहीं अपितु भारत

के बाहर भी बहुत से देशों में प्रचलन में है। चीन, जापान, नेपाल, तिब्बत, वर्मा स्याम, कम्बोडिया जावा, बोर्नियों, अमेरिका आदि देशों में विभिन्न रूपों में श्री गणेश की पूजा होती है। कुछ चित्रांकनों में बौद्ध और जैन धर्म में भी श्रीगणेश की उपस्थिति के साक्ष्य मिलते हैं। इसका कारण शायद यह रहा होगा कि प्राचीन काल में भारत के बाहर जहाँ–जहाँ भारतीय संस्कृति का प्रभाव था, वहाँ–वहाँ श्रीगणेश की आराधना पहुँचती गई।

श्रीगणेश को विघ्नेश्वर, परशुपाणि, गजानन एकदन्त द्वैमातुर, लम्बोदर आदि नामों से समबोधित किया जाता है, जो इनके गुण एवं स्वरूप को प्रकट करते हैं। गणेश जी के उक्त स्वरूप को रूपायित करने वाले अनेक चित्र भी बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में ही उपलब्ध हैं जिनमें से कुछ का संदर्भ इस शोध ग्रन्थ में प्रस्तुत किया जाता है।

जन्म–कुण्डलियों एवं पोथियों में गणेश का चित्रांकन :–

बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में जन्म कुण्डलियों पर अंकित गणेश के कई चित्र उपलब्ध हैं। जन्म कुण्डलियों पर ज्योतिषयों द्वारा प्रथम पूज्य गणेश जी महाराज का चित्रांकन हल्दी चूना के संयोग से बने रक्तिम रंग से किया हुआ पाया जाता है। कहीं–कहीं यह चित्रांकन आलता के गुलाबी रंग में भी मिलता है। पोथियों के प्रथम पृष्ठ पर काली स्याही व पत्थर रंगों की संयोजना से उकेरे गये गणपति बप्पा अनायास ही मन मोह लेते हैं। बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध जन्म–कुण्डलियों के चित्र हल्दी, रोली तथा काली स्याही से निर्मित किये गये हैं जो सौ वर्ष प्राचीन है। इसमें चतुर्भुजी गणेश जी का अंकन है, जो एक पीठिका पर आसीन दिखाये गये हैं। इस चित्र में इनका आकार 26x17 से0मी0 है[1]।

पाण्डुलिपि–चित्र

उक्त संग्रहालय में 'रामचरित मानस' की एक ऐसी पाण्डुलिपि है, जिसमें सुन्दरकाण्ड के प्रथम–पृष्ठ पर चतुर्भुजी गणेश जी का चित्र अंकित है[2]। इस चित्र में आसनारूढ़ गणेशजी के दायें–बायें दो परिचारिकाएँ चँवर डुला रही हैं। इनको गणेशजी की पत्नी ऋद्धि और सिद्धि कहा जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो गणेश के स्मरण मात्र से ही समस्त सिद्धियों की प्राप्ति की बात कही है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरितमानस' और विनय पत्रिका' में सर्व

1. जनपद – जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 34
2. कोंच के रामलला मन्दिर में गणेश पुराण की पाण्डुलिपी प्राप्त हुई है देखिये–कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक' पृ0 –81

प्रथम गणेश का ही स्मरण किया है उन्होंने उन्हें "सिद्धि–सदन" मुद–मंगलदाता, विद्या–वारिधि और बुद्धि विधाता कहा है।" महाकवि चन्द्रबरदाई ने भी अपने ग्रन्थ 'पृथ्वीराजरासो' में श्रीगणेशस्तवन कर उन्हें काव्य की रचना में सहायक बनाया था[1]। इस प्रकार बुन्देलखण्ड संग्रहालय का पाण्डुलिपि–चित्र गणेश के बुद्धिमान और प्रथमपूज्य होने के साक्ष्य को दर्शाता है जो कि लगभग दो सौ वर्ष प्राचीन है। इस चित्रांकन में पत्थर के रंगो तथा स्वर्ण का प्रयोग किया गया है। यह चित्र मथुरा प्रसाद कायस्थ द्वारा निर्मित है जो कालपी के रहने वाले थे[2]।

कागज, चांदी वर्क आदि पर कलर के माध्यम से निर्मित चित्रों को संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

श्री गणेश जी व सरस्वती जी

श्री गणेश व सरस्वती जी का चित्र महात्मा गांधी संग्रहालय से प्राप्त हुआ है जो वर्तमान समय में हिन्दी भवन कालपी में सुरक्षित हैं। यह चित्र 18 वीं शताब्दी का है। इसका आकार 21.5x13-5 से.मी. है। यह चित्र कागज पर बना हुआ है।

मूषक पकड़े चतुर्भुजी गणेश–

मूषक पकड़े चतुर्भुजी गणेश का यह चित्र कोंच से प्राप्त हुआ है जा बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में प्रदर्शित है। इस चित्र का आकार 19-5x15 से.मी. है। यह कागज पर चित्रित है। लगभग 18वीं शताब्दी का यह चित्र है।

वज्रासन मुद्रा में चतुर्भुजी गणेश–

वज्रासन मुद्रा में चतुर्भुजी गणेश का यह चित्र भी कोंच से प्राप्त हुआ है यह भी कागज का बना है। इसका आकार 15.7x8.8 से.मी. है और ये 18 वीं शताब्दी का है।

चँवर डुलाती सेविकाओं सहित चतुर्भुजी गणेश–

हिन्दी भवन, कालपी में हाथी दांत पर चतुर्भुजी गणेश चित्रित है। इस चित्र में वज्रासन में बैठे हुये गणेश के दोनों तरफ सेविकायें चँवर डुलाती हुई प्रदर्शित है। इस चित्र का आकार 8.5x5.5 से.मी. है। यह चित्र भी 18वीं शताब्दी का है।

---

1. सोऽयं पातु गणेससेस सफलं प्रिथराज काव्यं कृते।' चन्द्रबरदाई कृत 'पृथ्वीराजरासो' –1/14
2. कालपी में लंकाकिनारे के निर्माणकर्ता श्री मथुराप्रसाद कायस्थ ही थे। वेतत्कालीन रामलीला में रावण का अभिनय करते थे।

पद्मासीन चतुर्भुजी गणेश –

यह चित्र कागज पर बना हुआ है।19वीं शताब्दी का यह चित्र कोंच से प्राप्त हुआ है। इस चित्र का आकार 13x10 से.मी. है। इसके अतिरिक्त रोली से निर्मित एक अन्य गणेश का चित्र कोंच से प्राप्त हुआ है। यह 18वीं शताब्दी का है।

द्विभुजी त्रिशूलधारी गणेश –

रीना अग्रवाल द्वार निर्मित इस चित्र में गणेश त्रिशूल को धारण किये हुये हैं। यह चित्र चांदी की वर्क पर बना हुआ है। इसका आकार 27.5.x19.5 से.मी. है। यह चित्र रीना अग्रवाल द्वारा बुन्देलखण्ड संग्रहालय के निर्देशक डॉ0 हरीमोहन पुरवार को भेंट स्वरूप दिया गया था।

आसनारूढ़ चतुर्भुजी गणेश –

18वीं शताब्दी की चतुर्भुजी गणेश का यह चित्र वर्तमान में उरई में ही विद्यमान है। इस चित्र का आकार 19.5x14.5 से.मी. है।

कलश पर उत्कीर्ण चतुर्भुजी गणेश–

तांबे के कलश पर उत्कीर्ण चतुर्भुजी गणेश का यह चित्र बहुत ही सुन्दर है। इस चित्र का आकार 14x13 से.मी. है। यह बुन्देलखण्ड संग्रहालय में प्रदर्शित है।

रिद्धि–सिद्धि सहित चतुर्भुजी गणेश–

एक चित्र कांच से प्राप्त हुआ है जिसमें गणेश जी का मस्तिष्क अलंकृत है। चित्र में गणेश जी की दोनों पत्नियाँ सिद्धि और बुद्धि उनकी दोनों जंघाओं पर विराजमान है। इस चित्र में उनकी दोनों जंघाओं पर विराजमान है। इस चित्र में उनकी पत्नियों का जो वस्त्रालंकरण हैं, वह मराठा शैली का है। यह चित्र कांच पर बना हुआ है और इसका आकार 36x26 से.मी. है। यह बुन्देलखड संग्रहालय में उपलब्ध है।

चतुर्भुजी श्री लम्बोदर –

औरंगाबाद (महाराष्ट्र) से प्राप्त गणेश का यह अद्भुत चित्र आधुनिक काल में बुन्देलखण्ड संग्रहालय में उपलब्ध है। इस चित्र में चतुर्भुजी श्री गणेश का लम्बोदर रूप चित्रित किया गया है। यह चित्र कागज पर निर्मित है, इसका आकार 74x50 से.मी. है।

उत्सवसूचक व अन्य पत्रादिकों पर श्रीगणेश के चित्रांकन का विवरण इस प्रकार है :–

बुन्देलखण्ड संग्रहालय के संस्थापक डॉ0 हरीमोहन पुरवार के निजी संग्रह में लगभग 2000 या इससे भी अधिक शादी के कार्डों, कलैण्डरों और अनेक ऐसे चित्र उपलब्ध हैं जिनमें श्रीगणेश जी के अंकन उनके उस मांगलिक स्वरूप को प्रकट करते हैं जो पुराणादि ग्रंथों में उल्लिखित है और इसी कारण किसी भी मांगलिक कार्यक्रम के प्रारम्भ में उनका आवाहन और पूजन, किसी भी ग्रंथ की रचना में सर्वप्रथम उनका स्तवन और भवनों के प्रवेशद्वारों के ऊपर गणेश की मांगलिक प्रतिष्ठा और विवाह के निमंत्रण पत्र गणेश–वन्दना के बिना अधूरे ही समझे जाते हैं।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के संग्रहीत पत्रादिकों में सर्वाधिक चित्रांकन बैठी हुई मुद्रा के गणपति की है इसके बाद क्रमशः संगीतमय व नृत्यरत गणेश, स्थानक मुद्रा, लक्ष्मी–सरस्वती संग, गजमस्तक गणेश, ओंकार आकृति में, शुण्डाकृति में लेखक के रूप में, बालरूप में, शंकर पार्वती संग, नारियल युक्त, कलश युक्त व लेटी मुद्रा में, सिद्धगणपति, मूषकासीन और धावक गणपति का चित्रांकन विशेष रूप से मिलता हैं।

गणेशजी के जो कुछ भी शास्त्रोक्त प्रधान लक्षण और चिन्ह् हैं, वह सब इस बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में संग्रहीत गणपति–चित्रांकनों वाले शादी के कार्डों, कलैण्डरों और अन्य पत्रादिकों में सम्यक् रूप से अंकित हैं। इनमें से कुछ विशिष्ट –विशेषताओं वाले कार्डों का यहाँ पर अनुलेखन किया जा रहा है –

'सर्वमंगलकार्येषु भवान् पूज्यौ जनै सदा'[1]– इस उक्ति के अनुसार सनातन परम्परा से हिन्दू धर्म में सभी शुभ कार्यों के आरम्भ में मंगलमूर्ति विघ्नेश का वन्दन किया जाता है। अतः बुन्देलखण्ड संग्रहालय के कार्डों पर भी प्रथम पृष्ठ के सबसे ऊपर सर्वप्रथम श्रीगणेश को नमस्कार किया गया है। इन कार्डों पर विशेषतया श्री गणेशाय नमः, ऊँ शिव नंदनाय नमः, ऊँ एकदन्ताय नमः, ऊँ गं गणपतये नमः,[2] ऊँ आकारः, श्री गणेश प्रसन्न, ऊँ श्री गणेशाय नमः, रिद्धि–सिद्धि, शुभ–लाभ आदि विविध मंत्रों द्वारा उनका ध्यान किया गया है।

गणेश–नाम नमन् के इस क्रम में वैदिक मन्त्रों, गणेश सम्बन्धी कई, पुराणों और अन्य

---

1. सत्योपाख्यान पू0 अध्याय 23
2. 'गणेशजी का सर्वश्रेष्ठ बीज मन्त्र माना गया है।' गणपत्यथर्वशीर्ष 7

तत्सम्बन्धी साहित्यों से लिये गये श्लोकों के कुछ अंशों का अवलम्बन इन कार्डो पर गणेश वन्दन के रूप में लिया गया हैं गणेश के ये वन्दित श्लोक इन शादी के कार्डों के प्रथम–पृष्ठ पर ही गणपति चित्रांकन के ठीक नीचे या अगल–बगल में लिखे होते हैं। इन श्लोकों से श्रीगणेश, परब्रह्मस्वरूप, गणाध्यक्ष (आध्यात्म, अधिदैवत, अधिभूत गणों के) परम मंगल रूप, ज्ञानानन्दस्वरूप, स्वानन्द लोकवासी, ब्राह्मणों को भी ज्ञान प्रदान करने वाले, सभी विघ्नों के हर्ता, सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाले इत्यादि वचनों द्वारा वन्दित हुये हैं।

1. ऊँ नमस्ते गणपतयें।।................त्वमेव सर्व खल्विदं ब्रहासि।।[1]
2. गजाननं भूतगणादि.........।।
3. ऊँ गणानां त्वा गणपतये हवामहे।।[2]
4. आदिपूज्यं गणाध्यक्ष........मंगल परम रूपम्
5. चिदानन्दरूपं.............धरानन्दलोका दिवासप्रियं.........[3]
6. गणाधिप नमस्तुम्भं सर्वविघ्न प्रशान्दित।..................[4]
7. ब्रह्ममभ्यो ब्रह्मदात्रेच...........आदिपूज्याय ज्येष्ठाय..............[5]
8. नमस्ते गणनाथाय...........भक्ति प्रियाय देवेश......[6]
9. सर्व विघ्नहरं...........सर्वसिद्धि प्रदातरं वन्देहं गणनायकम्।

इसके अतिरिक्त कुछ मंत्रों में उनकी विविध नामों द्वारा भी वन्दना मिलती है।

1. वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभः[7]।
2. एकदन्तं महाकायं तप्तकाञ्चसन्निभम्। लम्बोदरं विशालाक्ष वन्देऽहं गणनायकम्।
3. लम्बोदरं पंचमं च षष्ठ विकटमेव च।[8]
4. सप्तमं विन्घराजेन्द्रं धूम्रवर्ण तथाष्टमम्।।
5. नमो व्रातपतये नमो गणपतये नमः प्रथमपतये नमस्ते अस्तु।
6. लंबोदरायैकदंताय विन्घनाशिने शिबसुताय वरदमूर्तये नमः।।[9]

---

1. गणपत्यथर्वशीर्ष – (1)
2. ऋग्वेद– 2/23/1
3. आदिकवि वाल्मीकि द्वारा श्रीगणेश का स्तवन 'काव्यष्टक' //7//
4. पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड – 61, 26,28,29
5. श्रीशक्तिशिवकृत गणाधीशस्तोत्र //5//
6. वही –1
7. मंगल पाठ
8. नारदपुराण 'संकष्टनाशन' नामक गणेश–स्तोत्र
9. गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद –10

कुछ कार्डों में तो गणेश के चित्रांकनों में उनके रूप के अनुरूप क्रमशः नाम दिये गये हैं – महाकाय, भालचन्द्र गजानन, सिंघु वर्ण, एकदन्त, कृष्णपिंगाक्ष (नीले और पीले रंग का मिश्रण) लंबोदर (उदर में ही ब्रह्माण्ड समाया हुआ चित्रित), चतुर्भुज, मंगलमूर्ति आदि। इसके अतिरिक्त एक कार्ड पर आठ नामों से अपने रूप को प्राप्त–गणेश, ऊँ लम्बोदर, गजानन, गणपति, वक्रतुण्ड, एकदन्त, मोरया आदि। केवल ऊँ और श्री से भी वे गज रूप को प्राप्त हैं एक कार्ड पर तो 118 ओंकार एकाक्षर से सम्पूर्ण रूप में चित्रित है। स्वास्तिक में भी गणेश देखे गये (कार्ड के पीछे बाँस की लकड़ी धागा से पिरोयी हुयी चिपकी है।)

तपोनिष्ठ पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य के अनुसार– गणेश की प्रतिमा की स्वस्तिक चिन्ह के साथ संगति बैठ जाती है। गणपति की सूँड, हाथ, पैर, सिर आदि को इस तरह चित्रित किया जा सकता है, जिसमें स्वस्तिक की चार भुजाओं का ठीक तरह समन्वय हो जाए। ऊँ को स्वास्तिक के रूप में लिया जा सकता हैं लिपि विज्ञान के आरम्भिक काल में गोलाई के अक्षर नहीं थे, रेखा के आधार पर उनकी रचना हुई थी। ऊँ को लिपिबद्ध करने के आरंभिक प्रयास में उसका स्वरूप स्वस्तिक जैसा बना था[1]। अतः जब 'ऊँ' (शब्द–ब्रह्मरूप) का आविर्भाव हुआ, तो उससे गणपति की मूर्ति की रचना की गयी, जो इस प्रकार है – प्रथम भाग– उदर, मध्य–शुण्डाकार–दण्ड, ऊपर अर्द्धचन्द्र–दन्त, अनुस्वार–मोदक। इसी कारण इन कार्डों पर भी गणेश ऊँ और स्वस्तिक रूप में देखे गये। दक्षिण – भारत के किसी भी गणपति देव की आकृति शत–प्रतिशत ओंकार के चित्र से मिलती जुलती है [2]।

इसके अतिरिक्त गणेश सम्बन्धी पूजा–पद्धतियों व अन्य वस्तुओं द्वारा भी उनके रूप उकेरे गये हैं जैसे–शंख आकृति में, पान के पत्तों से बने, रोरी और हल्दी मिले हुये चावल से निर्मित, एक कार्ड पर मुख नारियल का, शुण्ड फूलों (गेंदा) की और कर्ण पान सुपारी द्वारा निर्मित है। दाल, राजमा, चावल, मटर से बने गणेश अत्यधिक सुन्दर दिखते हैं। एक न्यूज पेपर की कटिंग जिसमें शीतल पेय की बोतलों से भगवान गणेश की प्रतिमा को अंतिम रूप देता कलाकार चित्रित है[3]।

इसके अलावा इन गणेश के चित्रांकनों में एकदन्त हाथी का मुख लंबा उदर, टेढ़ी और नाटी देह और नागयज्ञोपवीत धारी रूप सार्वभौम रूप से मिलते हैं। उनके आयुध और आभूषण भी

1. दैनिक जागरण 'ऊर्जा' पृ0 8 सार्वभौम संस्कृति का प्रतीक चिन्ह स्वस्तिक'
2. कल्याण, गणेश अंक पृष्ठ – 105
3. इस प्रतिमा को चेन्नई के गोविंदप्पा नेकन स्ट्रट में दर्शनार्थ रख गया था।

प्रायः वही हैं जो भारतीय मूर्तिकला में परिलक्षित हुये हैं। वे अपने हाथों में फरसा, त्रिशूल, टूटा हुआ दाँत लिये हुये दर्शाये गये हैं। पद्मपुराण के अनुसार–बाणासुर से युद्ध के समय बलराम की गदा से और ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के अनुसार 'परशुराम से युद्ध करते समय उनका एक दाँत टूट गया था।' इसी कारण भारतीय मूर्तिकला में उनका टूटा दन्त हाथ में आयुध के रूप में दिखाई देता है। हाथों के अन्य लक्षणों में कमल, छतरी, मोदक आदि पाये गये हैं।

इनका ध्यान द्विभुजी से लेकर दशभुजी तक मिलता है। ध्यानों में वे विभिन्न मुद्राओं में चित्रित हुये हैं– शिव हाथ में डमरू लिये, उस पर गणेश नृत्यमुद्रा में,[1] बाँसुरी बजाते हुये नृत्यमुद्रा में, नृत्यमुद्रा में राम की भक्ति,[2] एक में नृत्य गणेश के आस–पास ढोलक बजाती नृत्य करती गणिकायें,[3] शेषनाग के ऊपर कृष्ण रूप में त्रिभंग मुद्रा में नृत्य करते गणेश (दक्षिण भारतीय शैली) आदि। वैसे तो इन कार्डों पर वे अपने वाहन मूषक के साथ ही है लेकिन कुछ पर वे सिंह को भी अपना वाहन बनाये हुये हैं। गणेश की सिंहवाहन वाली प्रतिमा व चित्र अधिकतर दक्षिणदेश में पाये जाते हैं। इन्हें हेरम्ब–गणपति कहा गया है और ये पंच–गजवदनयुक्त दर्शाये गये हैं[4]। वैसे तो इन कार्डों पर गणेश का चित्रांकन व्यापकरूप से एकमुखी ही मिलती है लेकिन कहीं–कहीं त्रिमुखी (कमलासीन) और पंचमुखी (दशभुजी) भी हैं। गणेश की पंचमुखी मूर्ति मुंशीगंज, ढाका और काशी मं ढुण्ढिराज गणेश के पास मिली है। नेपाल की पंचमुखी गणपति प्रतिमा भी हेरम्ब–गणपति के नाम से प्रचलित है। गणपत्यऽथर्वशीर्ष के 'त्वं ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं रूद्रस्त्वं' श्लोक को ध्यान में रखकर ही गणेश को बाल शंकर रूप, बालकृष्णरूप, शेषनाग शैया पर लेटे हुए, शिवलिंग रूप[5] मत्स्य रूप, अर्द्ध शरीर हनुमान का और अर्द्ध गणेश के रूप में इन कार्डों या पत्रों पर चरितार्थ, किया गया हैं यही बात श्रीराधवचैतन्यकृत 'महागणपति–स्तोत्र' के इस श्लोक 'इत्थं विष्णुशिवादितत्वतनवे....' में व्यक्त की गई है जिसमें यह बात अच्छी तरह से स्पष्ट की गई है कि गणेश व अन्य किसी देवता में कोई भेद नहीं है। इसके अलावा एक चित्रण में उनकी शुण्ड मत्स्य आकृति में उभरी हैं नारलाई (पाली, राजस्थान) से प्राप्त जैनी मंदिर सुपारपूवनाथ के कम्पाउण्ड में

---

1. दश–रूपक के इस श्लोक में शिव और गणेश के संयुक्त नृत्य का सुन्दर उदाहरण देखने को मिलता है – नमस्तस्मै गणेशाय यत्कण्ढः पुष्करायते। मदाभोगघनध्वानो नीलकण्ठस्य ताण्डवे (1/1) कल्याण, गणेश अंक 116
2. भगवान श्रीगणेश की रामभक्ति भावना ' रामचरितमानस' के इस श्लोक से स्पष्ट होती है – 'महिमा जासु जान गनाराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ।।' 1/18/2
3. खजुराहो के एक मन्दिर में इस प्रकार की गणेश की मूर्ति प्राप्त हुई है।
4. पूर्व–वंक के रामपाल के ध्वंसावशेषों में 'हेरम्ब गणपति' के प्रस्तर मूर्ति का विवरण और चित्र स्वर्गीय डॉ0 नलिनीकान्त भट्टशाली ने अपनी (Cata logue of Buddhist and Brahamanical Sculptures in the Dacca of Museum) पुस्तक में प्रकाशित किया है' (ढाका म्यूजियम के क्यूरेटर (Curator) कल्याण, गणेश अंक – पृ0 420
5. हालैण्ड में गणेश के शिवलिंग रूप के दर्शन होते हैं जिसमें योनि के बीच में शिवलिंग के स्थान पर गणेश जी बने हुये है। 'सम्पूर्णानन्द'

एक सी गणेश मूर्ति है जिसमें मत्स्य उनके वाहन के रूप में वर्णित है[1]।

बालगणपति रूप में घुटनों के बल चलते हुए व बांऐ हाथ में लड्डू–प्रदर्शित (श्वेत वर्ण), झूले पर झूलते हुए दाहिने हाथ में लड्डू, शिवलिंग से लिपटे हुये व हाथ में शिवलिंग लिये हुये हैं। विवेकानन्द पाली क्लीनिक लखनऊ के प्राणिक हीलिंग चिकित्सा विभाग की चिकित्सक डॉ0 चन्द्रा सुव्रण्यम के आवास में संग्रहीत गणेश प्रतिमाओं में बालगणपति दौड़ते हुये खेलते हुये व पार्वती की गोद में आदि रूपों में प्राप्त हुये हैं[2]। श्रीरायकृष्णदासजी के अनुसार–कहीं–कही पार्वती की गोद में गणेश शिशुरूप में भी मिलते हैं[3]।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में एकत्र किये गये इन कार्डों में कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें न केवल भारत अपितु वाह्य देखों में प्राप्त गणपति प्रतिमाओं के चित्रांकन दिये गये हैं। एक काले कार्ड पर गणेश की मुखाकृति रेखांकित है सम्भवतः मथुरा में से इस तरह के गणेश–विग्रह तैयार किये जाते हैं[4]। इसी इसी तरह कृष्ण पेपर वाले कार्ड पर भारत व वाह्य देशों के सम्मिलित गणपति विग्रह प्राप्त हुये हैं जिनकी संख्या पाँच हैं।

1. कापालिक गणपतिचे शिल्प, जावा
2. गणपति शिल्प, खजुराहो (बाएं जंघा पर शक्ति को बैठाये हुये)
3. नृत्यमग्न स्थानक गणेश, ब्रॉझ, नेपाल
4. महाशणपतीची पाषाण प्रतिमा, बिहार (सिद्धि के साथ)
5. हस्तिदंती केवलगणपती, त्रिवेंद्रम।

इसके अतिरिक्त जावा की ही बोरा–बिलर नामक स्थान की एक विलक्षण गणपति–मूर्ति जहां देखने को मिली है जो खण्ड में सफेद व काले रंग व तरासकर बनाई गई है[5]। एक अन्यत्र कार्ड में जावा की मूर्ति के चित्रण के साथ ही यह लेख लिखा है कि जावा की मूर्ति शैलेन्द्र शैली के पत्थर में बनी अव्यवहारिक गणेश मूर्ति है और इनकी सजावट में कपालों का प्रयोग किया गया है। इनमें से जावा की सिंगसरी नामक स्थान से मिली एक प्रतिमा योरोप की लीडेन संग्रहालय में है। इस प्रतिमा में सुखासन में बैठे चतुर्भुज गणेश के हाथों में बीजपूरक, परशु (?) मोदक पात्र और

---

1. रत्नेश 'प्राचीन जैन परम्परा एवं कला में गणेश' 1995 गणपति विशेषांक 'श्रीपथरचही रामलीला कमेटी, प्रयाग'' 16 वां पुष्प पृ0 226 देखिए Modern Art from the Art Treasure of IFFCO.
2. हिन्दुस्तान, 5–9–2005 (पूर्वोद्धत)
3. कल्याण, गणेश अंक – पृ0 101
4. इसी कार्ड पर ये लाइन लिखी हुई है । paper made of the god ganesh made in Mathura, Uttar Pradesh.
5. इस कार्ड पर इस प्रतिमा के बारे में English में Foot note दिया गया है – "A beautiful - Piece is presented here of a peculiar idol of shri Ganesh found at Bara, Bilter in the island of Java. Here is a black and white reproduction of the multicoloured art - piece, done in colour - clipping style by a young city artist shri Resesh Satpute (Rasa)

माला है। गणेश के विभिन्न अंग मुकुट समेत आभूषणों से अलंकृत है। सर्वयज्ञोपवीत धारी गणेश की इस प्रतिमा की विशिष्टता यह है कि गणेश के मुकुट की मध्यमणि तथा दोनों वक्ष–कुचों पर कपाल बने हुए हैं और वे जिस आसन पर बैठे हैं वह भी कपाल–पंक्ति से सजाया गया हैं ऐसे ही कापालिक गणेश की दूसरी प्रतिमा जो जावा के बोरा नामक स्थान की है वह दोनों ओर से उकेर कर बनाई गई है। इस चतुर्भुजी प्रतिमा के अग्रभाग पर गणेश पालथी भरकर कपाल पंक्ति वाले आसन पर बैठे हैं और पृष्ठ भाग पर विशाल कीर्तिमुख उत्कीर्ण है। दानों प्रतिमाओं के बाएँ हाथ में मोदकपात्र है जिस पर गणेश की सूँड़ टिकी है। पहली प्रतिमा में आयताकर किन्तु दूसरी में गोलाकार प्रभामण्डल है[1]। गणेश की ऐसी मूर्तियाँ भारत में स्वतंत्र रूप से तो नहीं थी लेकिन भारतीय कला में उकेरी अवश्य गई है। सामान्यतः ये प्रतिमायें भारतीय प्रतिमाओं के ही सदृश है परन्तु कुछ विशेषताएँ भी होती है। भारत में गणेशजी प्रायः पद्मासन, स्वस्तिकासन या अर्धासन में बैठे मिलते हैं। इन आसनों में पाँव, एक–दूसरे के ऊपर–नीचे रहते है। जावा आदि की मूर्तियों में गणेश जी इस प्रकार पालथी मारकर बैठे हैं कि दोनों पाँव भूमि पर सम पड़े हैं और उनके तलवे मिलते हैं। भारत में सूँड प्रायः बीच में ही बाएँ को धूम जाती है, भारत के बाहर प्रायः सीधी जाकर सिरे पर धूमती है[2]।

एक कार्ड पर श्वेत हाथी के मुख पर श्रीगणेश और प्रज्वलित दीपकों की लड़ियों से बनी आभा के मध्य कमलासीन स्थानक गणेश का चित्रांकन बौद्ध धर्म में गणेश की उपस्थिति को दर्शाते हैं। अतः बौद्धों में श्वेत हस्ती बहुत पवित्र और पूजनीय माना जाता है क्योंकि यह बुद्ध के जन्म का प्रतीक है। यही कारण है कि कई स्थानों की अशोक की धर्मलिपियों में श्वेतहस्ती की मूर्ति को स्थान दिया गया है जिनमें से कालसीवाले प्रज्ञापन की मूर्ति में नीचे 'गजतमो' (सर्व श्रेष्ठ गज) धौली लिपि के छठें प्रज्ञापन के अन्त में सेतो (श्वेतः) और गिरनारवाली धर्म–लिपि में तेरहवे प्रज्ञापन के नीचे 'श्वतो हसती सर्वलोक सुखाहारी नाम' अर्थात् सब लोकों को सुख देने वाला श्वेत हस्ती ये शब्द खुदे हैं। इसके सिवा उनकी धर्म–लिपियों के चौथे प्रज्ञापन में यह भी दिया है कि जनता को धार्मिक भाव से हाथियों का दर्शन कराया जाता था। गणेश की गजाकृति की चर्चा हम बौद्ध धर्म की उक्त हस्ति–पूजा में पाते हैं। यह बात इस तौर पर और दृढ़ होती है कि बुद्ध के नाम भी 'विनायक' और 'गजश्रेष्ठ' हैं[3]।

---

1. श्रीवास्तव, ए0एल0 'भारतीय मूर्तिकला में गजानन गणेश' गणपति विशेषांक ' पथरचट्टी रामलीला कमेटी प्रयाग' 16 वां पुष्प– 1995 – पृ0 – 103–4
2. वही, पृ0 220
3. कल्याण, गणेश अंक – पृ0 101

आज पूर्वीय पीपपुंज और स्याम, कम्बोडिया के निवासी बौद्ध मतावलम्बी हैं परंतु अब तक उनमें भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के संस्कार अवशिष्ट रह गये हैं। यही कारण है कि यहाँ की संस्कृति का प्रभाव बौद्धों पर पड़ा। बाली के जमबरन स्थान की एक गणपति मूर्ति के सिंहासन के चारों ओर अग्निशिखाएं बनी हुई हैं। इनके दाहिने हाथ में मशाल है। अतः इस प्रकार के चित्रांकन के बारे में कुछ पाश्चात्य विद्वानों का अनुमान है कि ये ऐसा संकेत करते हैं कि गणेश जी अतिवाहिक पुरूष माने जाते थे अर्थात प्रेतात्मा को पितृलोक और स्वर्गलोक में मार्ग दिखलाते थे[1]।

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड संग्रहालय में कुछ अदभुत चित्रण भी देखने को मिले हैं। एक चित्रांकन में समुद्रों की लहर रूपी चौकी के ऊपर शंख व शंख के ऊपर श्री गजानन गणेश बैठे हुए हैं। वह वज्रासन मुद्रा मे बैठे हैंइसी कारण उपासना में '....क्षीराब्धौ रत्नदीपैः सुखरतिलकं रत्नसिंहासनस्थं।......' इस मन्त्र द्वारा गणेशजी का ध्यान बताया गया है[2]। गणेशपुराण में एक इक्षुसागर का विवरण मिलता है जिसे गणेशलोक कहा गया है और जो पांच हजार योजन है। इस इक्षु– सागर में एक विशेष प्रकार का सहस्त्रदल कमल है। उसके ऊपर एक सुन्दर मंच हैं[3]। ऐसे मंचशायी भगवान् का वर्णन प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय कवि ने किया है –

क्षीर सागरी नारायण, तैसा इक्षु सागर गजकर्ण[4]।

इसी तरह इन कार्डों में गणेश के आयुध, आभूषण, उनकी पूजा पद्धतियों व यहाँ तक कि गणेश मन्दिर निर्माण नियम आदि शास्त्रोंचित् ही चिन्हित किये गये हैं। आयुधों में उनके हाथ फरसा टूटा दांत, मोदक, कमल, वरदमुद्रा, त्रिशूल, छतरी, कमण्डल आदि से युक्त है। आभूषणों में नागयज्ञोपवीतधारी, मस्तक पर रत्न जड़ित मुकुट के अलावा मोर पंख की आभा, पगड़ी बांधे हुये चन्द्रमौलिक व ऊँ स्वास्तिक और गुड्हल का फूल आदि से सुसज्जित है।

हाथ द्वारा पेन्ट किये गये एक पत्र पर गणेश का मन्दिर बना है जिसमें गणेश की अर्चना में एक आदमी दो स्त्रियां और एक बालिका खड़ी हुई है जो क्रमशः ढोलक, एक दीप का थाल व एक ढपली और मंजीरा बजाते हुये गणेश की स्तुति में रत है। मन्दिर में गणेश की मूर्ति पश्चिम दिशा की ओर मुख किये हुये हैं अतः पुराणों में भी वर्णित है कि गणपति का मन्दिर घर

---

1. डॉ0 सम्पूर्णानन्द 'वृहत्तर भारत में गणेश' गणपति विशेषांक 'श्रीपथरचही रामलीला कमेटी प्रयाग' 16 वां पुष्प – 1995, पृ0 220
2. गणपति विशेषांक, 'श्रीपथरचट्टी रामलीला कमेटी, प्रयाग' 16 वां पुष्प 1995–पृ0 127
3. '......तदुत्तरे भाति पर इक्षुसागर एव तु।।...' गणेश पुराण 2/50/52–53
4. ब्रह्मलीन कवि श्रीविनायक महादेव नातू 'गणेश प्रताप, क्रीडाखण्ड, अध्याय 12/23/32 कल्याण, गणेश अंक – पृ0 423

ईशानकोण में और प्रतिमा पश्चिमामुखी होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त दाहिने तरफ केला का पेड़ प्रदर्शित है। केला का गणेश को भोग लगाया जाता है। नारियल, सेव, लड्डू, मिसरी आदि भी अनेक पदार्थ नैवेध के थाल में रखे हुये हैं। अन्य पूजा सामग्रियों में कलश, हवनकुण्ड, पदचिन्ह दीपक, पान, फूल (गेंदा, गुड़हल) पान के पत्ते के ऊपर रोरी, सुपारी, हल्दी, चावल आदि चित्रित मिलते हैं।

गणेश की मूर्ति के साथ ही अन्य देवी–देवताओं की मूर्ति भी भारतीय कला में उकेरी जाती है। अतः बुन्देलखण्ड संग्रहालय के संग्रहीत पत्रादिकों के मध्य में कमलासीन गणेश व पश्चिम और पूर्व की ओर क्रमशः शिव, पार्वती, एक कार्ड में तीन चौखानों में सबसे ऊपर स्वास्तिक, सूर्य और गजमुख, एक अन्य पत्र जो लोककला में निर्मित है उसमें इष्टदेव (गणेश) के बाएं–दाएं क्रमशः कृष्ण और शिव, बीच में चण्डी का मुख बना हुआ है। अतः शास्त्रों में भी कहा गया है कि सभी कार्यों में सिद्धि प्राप्ति के लिए श्रीगणपति के साथ श्री सूर्य, श्री दुर्गा, श्री शिव और श्री विष्णु की पूजा का विधान हैं[1]। केवल एक देवता की मूर्ति की पूजा का निषेध है। अतएव जो व्यक्ति अपनी कामनाओं की सफलता चाहता हो, उसे अनेक देवताओं की पूजा करनी चाहिये।

उपर्युक्त पत्रों में या अन्यत्र मूर्तिकला में श्रीगणेश के साथ अन्य देवी–देवताओं की जो स्थिति मिलती है, उसके अनुसार साधारण हिन्दू पंचदेवोपासक कहलाता हैं उसको विष्णु, शिव,
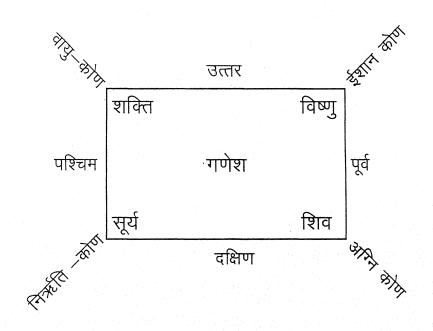
1. भारद्वाज, श्रीकृष्णदत्तजी, शास्त्री,
आदित्यं गणनाथं च देवी रूद्रं च केशवम्।
पंचदैवतमित्मुक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।। कल्याण गणेश अंक – पृ0 91

शक्ति, गणेश और सूर्य की पूजा करनी चाहिये[1]। यदि साधक के इष्ट देवता श्रीगणपति है, तो बीच में अपने इष्टदेव और चारों कोनों में शेष चारों देवों की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए। जो कि इस प्रकार है[2]।

यदि साधक पंचदेवों में समान रूप से आस्था रखता हो, तो सर्वप्रथम श्रीसूर्य की तत्पश्चात् क्रम से गणपति, दुर्गा, शंकर और विष्णु की पूजा करनी चाहिये।

पंचायतन देवों के अलावा आसनस्थ गणेश के एक अंकन के दाएं तरफ लक्ष्मी व बांए तरफ सरस्वती विराजित हैं। सिद्धि से लक्ष्मी और बुद्धि द्वारा सरस्वती अर्थात् ज्ञान प्राप्त होता हैं सिद्धि ओर बुद्धि ये दोनों गणेश की पत्नियाँ है और गणेश–मन्दिर में ये उनके क्रमशः दाएं और बाएं ही रखी जाती हैं।

जनपद– जालौन में वर्तमान समय में श्रीगणेश के चित्रांकन में संलग्न लोग एवं उनके कार्य –

जब मैंने जनपद के तहसील मुख्यालयों में प्रथम–पूज्य विनायक के विभिन्न स्वरूपों के दर्शनार्थ हेतु भ्रमण प्रारम्भ किया, तब मुझे यहाँ पर विघ्न विनाशक आदि देव श्री गणेश के विविध स्वरूपों के चित्रों का अन्वेषण करने वाले लोगों से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्तमान समय के इन चित्रकारों ने कागजों पर जल रंगों द्वारा गणेश के अनेक रूपों के चित्रों का निर्माण किया हैं चित्रों का रंग विधान सीधा सादा होते हुये– भी प्रभावपूर्ण हैं भाव मुद्राओं एवं तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा रेखा–सौष्ठव की दृष्टि से इनके चित्रों में बड़ी ही सजीवता है। जनपद जालौन में ही नहीं, बल्कि भारत के अधिकांश क्षेत्रों में ऐसे चित्रकार हैं, जो गणेश के स्वरूप को अपनी चित्रकारी का मुख्य आधार बनाये हुये हैं बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट्स' शैली चित्रकला पर चित्रकार सुहृद मुखोपाध्याय द्वारा दूरदर्शन चैनल पर एक वार्ता प्रसारित की गयी[3] इस वार्ता का संचालन कर रहे थे अशोक श्रीवास्तव। कलाकार सुहृद मुखोपाध्याय ने उड़ीसा चित्रशैली के आधार पर सैकड़ों गणेश–प्रति माओं का निर्माण किया है।

लगभग पाँच मिनट की बातचीत में चित्रकार मुखोपाध्याय ने बताया कि उन्होंने गणेश को वंशी बजाते हुए, तबला बजाते हुये, नाचते हुए और खेलते हुए आदि मुद्राओं में निर्मित किया हैं उनके अनुसार मूषक पर सवार गणेश की विभिन्न आकृतियाँ सर्वत्र निर्मित हैं। उनका कथन है

1. 'एका मूर्तिर्न पूज्यैव गृहिणा स्वेष्टमिच्छता। अनेकमूर्तिसम्पन्नः सर्वान् कामानवाप्नुयात।।' कल्याण, गणेश अंक – पृ0 91
2. हेरम्वं तु यदा मध्यें ऐशान्यामच्युतं यजेत्। आग्नेय्यां पंचवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत्। वायत्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः।। भारद्वाज श्रीकृष्णदत्तजी कल्याण, गणेश अंक पृ0 91
3. दिनांक 7.3.2006 को प्रातः 7.30 बजे 'नया सवेरा' कार्यक्रम के अर्न्तगत दूरदर्शन के डी0डी0 न्यूज चैनल पर प्रसारित'

कि गणेश एक महान चरित्र है उन्हें विभिन्न रूपों में दर्शाया जा सकता है। बातचीत करते हुए अशोक श्रीवास्तव ने प्रश्न किया कि पुराने चित्रकारों और वर्तमान आधुनिक चित्रकारों में क्या अन्तर है इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि केवल दृष्टिकोण में अन्तर है। चित्रकार का विषय तो एक ही है परन्तु दृष्टिकोण में अन्तर रहता है।

जब बातचीत को आगे बढ़ाते हुए सहकर्मी संचालिका महिला ने वर्तमान में चित्रों की बेतहाशा बढ़ती हुयी माँग और कीमत की बात उठायी तो उन्होंने उत्तर दिया कि कीमतें मूर्ति की गुणवत्ता के अनुसार आँकी जाती है। जब क्रेता की रूचि के अनुकूल चित्र उपलब्ध होता है, तो वे बड़ी से बड़ी कीमत दे सकते हैं। चित्रकला में भाव और मर्म पर भी चर्चा की गयी।

जनपद–जालौन के चित्रकारों से मेरी भेंट के दौरान उनसे साक्षात्कार में पूंछे गये कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तरों का विवरण इस प्रकार है –

श्रीमती रीना अग्रवाल, कालपी–

कालपी निवासी श्रीमती रीना अग्रवाल से जब मैंने प्रश्न किया कि आप गणेश जी से क्यों प्रभावित है, तब उन्होंने कहा कि– श्रीगणेश का आकार और उनकी मुद्राओं ने मुझे प्रारम्भ से ही आकर्षित किया है। श्रीगणेश के स्वरूप के। जिस रूप में भी बनाना चाहो बनाया जा सकता हैं गणेशजी की प्रतिमा में मुझे रिदिम दिखाई देता है।

मेरे दूसरे प्रश्न में, कि आप कब से श्रीगणेश के चित्र बना रही है, और आपको गणेश अंकन की प्रेरणा कैसे मिली इस पर उन्होंने कहा – सन् 1992 ई0 से मैं गणेश चित्र बना रही हूँ। लब्ध प्रतिभावान एवं चित्रपटल पर प्रतिष्ठित मेरी बड़ी बहन श्रीमती सरला चन्द्रा राष्ट्रीय स्तर की चित्रकार है, जो कि दिल्ली निवासी है, से प्रभावित होकर एवं उनके निर्देशन में मैंने चित्र बनाना प्रारम्भ किया। आगे उन्होंने कहा कि जब से मैने गणेश चित्र बनाना प्रारम्भ किया, हमेशा मुझे चित्रकला में सफलता मिली और धीरे–धीरे आस्था बढ़ती चली गई।

गणेश के चित्र बनाते समय अपने अनुभवों के विषय में आदरणीया रीना जी ने कहा कि अनुभव अच्छा ही रहा है इसीलिये दस सालों से गणेश के चित्र बना रही हूँ। जब से गणेश चित्रों को बनाना आरम्भ किया, तब से हमारे घर में सुख–सम्पत्ति का बराबर विकास हो रहा हैं।

श्री गणेश के बारे में अपनी धारणा व्यक्त करते हुये आदरणीया रीना जी ने बतलाया कि – श्रीगणेश मेरे आराध्य देव हैं और मैं पूरे भक्ति–भाव से इनके चित्रों को बनाती हूँ। गणेश

जी के चित्र के साथ ही वह अन्य अनेक देवी–देवताओं के चित्र भी बनाती हैं। गणेश जी का एक चित्र बनाने में आदरणीय रीना जी को लगभग 6–7 दिनों का समय लगता है।

श्री गणेश के चित्रों को बनाते समय आदरणीया रीना जी निम्न वस्तुयें उपयोग में लाती हैं –

1. सोने और चांदी का वर्क
2. वाटर कलर (जलरंग)
3. भोजपत्र और हस्त निर्मित कागज आदि।

डॉ0 हरीमोहन पुरवार, उरई –

बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई के निर्देशक डॉ0 हरीमोहन पुरवार मूलतः एक व्यवसायी हैं। उन्होंने बुन्देलखण्ड संग्रहालय में गणेश के अनेक चित्रों के संग्रह के साथ ही गणेश–चित्रों का अंकन भी किया है। कपड़े के रेशों व कई निष्प्रयोज्य वस्तुओं की लुगदी से बने रंग–बिरंगे हस्तनिर्मित कागजों[1] को काटकर बनाई गई विघ्न विनाशक की आकृति आकर्षक दिखती हैं। डॉ0 पुरवार बताते हैं कि कागज पर पहले आकृति बनाकर उसे कुंदन–गोटे आदि से सजाया जाता है। उससे मन स्वतः उस रूप के समक्ष नतमस्तक हो जाता है। डॉ0 पुरवार द्वारा निर्मित इन कागजों के चित्रों की संख्या लगभग तीन सौ या चार सौ है, जिनमें छोटे–बड़े दोंनों प्रकार के चित्र सम्मिलित हैं। इनके द्वारा कुछ चित्र स्कैज व वाटर कॉलर से भी बनाये गये हैं, ऐसे चित्रों की संख्या लगभग 100 के आस–पास है। उन्होंने उड़िया दक्षिण, मराठा, बुन्देली और राजपूताना शैली में श्रीगणेश के चित्र बनाये हैं। इसके अतिरिक्त बाह्य देशों जापान और कम्बोडिया में प्राप्त गणेश–प्रतिमाओं के आधार पर भी कुछ चित्र निर्मित किये हैं।

साक्षात्कार के दौरान उनसे हुई व़ार्तालाप के कुछ प्रमुख अंश इस प्रकार हैं –

मेरे द्वारा पूछे जाने पर कि आपको गणेश–चित्रों को बनाने की प्रेरणा कैसे मिली–इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा दस वर्ष पूर्व हमारी धर्मपत्नी संध्या देवी ने सर्व प्रथम गणेश के चित्र बनाना प्रारम्भ किया, तत्पश्चात् मैं भी गणेश चित्रों के प्रति प्रेरित हुआ।

श्रीगणेश जी से प्रभावित होने के संबंध में उन्होंने कहा कि मैं श्री गणेश जी से इसलिये प्रभावित हूं क्योंकि गणेश की मूर्ति हमें सामाजिक दायित्वों के निर्वाह हेतु प्रेरित करती है। उनका

1. :कालपी नगरी वर्तमान में हस्तनिर्मित कागज के निर्माण के लिये जानी जाती है' 'हस्तनिर्मित कागज पर विघ्नविनाशक' दैनिक जागरण, कानपुर, 12 सितम्बर 2006 पृ0 –3

कहना है कि श्रीगणेश का निर्माण माँ पार्वती ने अपने शरीर के मैल से किया था। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर की त्याज्य वस्तु मैल से भी ऊर्जा उत्पन्न हो सकती हैं गोबर से गैस एवं मल का उर्वरक के रूप में प्रयोग इसका उदाहरण है[1]।

श्री गणेश चित्रों की अपनी दस वर्ष की साधना के सम्बन्ध में वह कहते हैं कि जब भी मैं श्रीगणेश जी के चित्रों को बनाता हूं, तब मैं सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त हो जाता हूं और आराध्य देव के चित्रों में ही तन्मय हो जाता हूँ। साथ ही साथ आसपास के दूषित बातावरण से मुक्त हो जाते हैं। आपने गणेश चित्रों की प्रदर्शनी निम्न स्थानों पर लगाई –

सर्व प्रथम अभिनन्दन गेस्ट हाउस, उरई में अपने गणेश चित्रों की प्रदर्शनी लगाई तत्पश्चात उरई क्लब, वेदिका आदि अनेक स्थानों पर चित्रों की प्रदर्शनी लगाई।

अनेक देवी–देवताओं में से श्री गणेश को चुनने का कारण आपने बतलाया कि – प्रथम पूज्य आराध्य श्री गणेश सबसे सरल और सहज है और उनके अंगो को चित्रांकन करते समय यह अनुपात नहीं आता है कि प्रतिमा गलत हो जायेगी, बल्कि गणेश का सुन्दर रूप ही सामने आता है। यदि चित्रांकन करते समय उनका पेट लम्बा हो जाता है, तो उनका लम्बोदर रूप सार्थक हो जाता है और यदि शुण्ड टेढ़ी हो जाती है तो वक्रतुण्ड की आकृति उभरकर सामने आ जती है।

श्री पद्मकान्त पुरवार, कालपी –

कालपी निवासी श्री पदम्कान्त पुरवार जी श्री गणेश के चित्रों को बनाने के साथ ही गणेश चित्रों का संग्रह भी किया करते हैं। जब मैं सर्वेक्षण के दौरान श्री पद्मकान्त पुरवार जी के निज निवास में गणपति चित्र संग्रह को देखने गई, तब साक्षात्कार में उन्होंने बतलाया –

स्टेट बैंक कालपी के कैशियर के पद पर कार्यरत मिस्टर गदरे जो कि महाराष्ट्रियन थे, गणेश जी के परम भक्त थे। घनिष्ठ मित्र होने के कारण मैं प्रायः उनसे भेंट करने जाता था, तो वे मुझे गणेश की आकृतियों के बारे में बतलाया करते थे। एक बार उन्होंने बतलाया कि वे गणेश के चित्रों का संग्रह करना प्रारम्भ किया। गणेश जी का स्वरूप मुझे इतना सुन्दर लगने लगा कि उनके अनेक स्वरूप मेरे पास संग्रहीत होते गए। इस प्रकार श्री पद्मकान्त पुरवार जी स्वान्तः सुखाय गणेश के चित्रों का संग्रह किया करते हैं।

गणेश चित्रों के संग्रह करते समय अपने अनुभव के विषय में श्री पद्मकान्त पुरवार जी ने कहा– बहुत ही अच्छा लगा जैसे ही मैं गणेश चित्रों के संग्रह के क्षेत्र में आगे बढ़ता गया। मेरा

1. दैनिक जागरण, कानपुर ' हस्तनिर्मित कागज पर विघ्नविनाशक 12 सितम्बर 2006 पृ0 –3

अनुभव भी उसके प्रति अच्छा ही रहा और आत्म संतोष बढ़ता गया।

श्री गणेश देव को चुनने का कारण उन्होंने बतलाया कि श्री गणेश प्रथम पूज्य हैं, बुद्धि के प्रदाता हैं, सामाजिक दायित्व का निर्वाह हो और सद्‌बुद्धि बनी रहे इसी लिये मैंने श्री गणेश देव को ही समस्त श्रेयों का प्रदाता मान कर उनके विग्रहों का संकलन करने लगा। श्री पदम्‌कान्त पुरवार जी ने निम्न प्रकार के गणेश चित्रों का संग्रह किया है –

1. रत्नों के ऊपर गणेश का संग्रह जैसे–पन्ना, स्फटिक, क्रस्टल आदि तथा फाइवर, टैराकोटा, काष्ठ, प्लास्टर आफ पेरिस और सिन्थैटिक फाइवर आदि का संग्रह किया।
2. आमंत्रण पन्नों के ऊपर जो गणेश के चित्र होते हैं वे सभी प्रकार के पत्रों का संग्रह।
3. कुछ पोस्टर्स गणेश चित्रों का भी संग्रह है और हस्त निर्मित पोस्टर्स के चित्रों का भी संग्रह आपने किया है।

आप चित्रकार भी हैं जब से आपने गणपति संग्रह करना प्रारम्भ किया था तभी से आपने गणेश के चित्र भी बनाना प्रारम्भ किया। आप वाटर कॉलर (जलरंग) के माध्यम से चित्र बनाते हैं।

रोहित श्रीवास्तव, उरई –

उरई निवासी रोहित श्रीवास्तव कानुपर विश्वविद्यालय से एम.ए. फाइनल आर्ट में कर चुके हैं और विनायक अर्थात् गणेश जी की चित्रकारी पर शोध करना चाहते हैं। उन्होंने अल्प आयु से ही श्रीगणेश के चित्रों को बनाना प्रारम्भ कर दिया था। उनके पास सैंकड़ो की संख्या में गणेश जी के स्वयं बनाए गए कलेक्शन हैं। उन्होंने श्रीगणेश के ये चित्र विशेषतया शादी के कार्डों से देखकर बनाना शुरू किये और इस कार्य में उन्हें श्री अयोध्या प्रसाद गुप्त ने प्रोत्साहित किया। साढ़े पांच हजार लोगों के हस्ताक्षर से गणेश आकृति बना चुके इस चित्रकार का कहना है कि वह लिम्का बुक में नाम दर्ज कराना चाहते हैं[1]। इनकी चित्रकारी में भारतीय चित्रकला व माडर्न आर्ट दोंनों का ही प्रभाव परिलक्षित होता हैं श्रीगणेश के चित्रों में उनकी अभिरूचि के सम्बन्ध में हुई बातचीत के प्रमुख अंश यहाँ प्रस्तुत हैं :–

श्री गणेश के चित्रों में रूचि लेने का कारण बताते हुये उन्होंने कहा कि मेरा जन्म माघ कृष्ण चौथ को हुआ था, इस दिन गणेश चौथ मनाया जाता है। यह पर्वोत्सव संकट के टालने वाले

---

1. दैनिक जागरण, कानपुर, 11 सितम्बर 2006 पृ0 3
लिम्काबुक में नाम दर्ज कराने में जुटा चित्रकार (उरई जागरण रोहित)

देव श्री गणेश का है अतः यह भी एक कारण है जिससे मैं श्री गणेश चित्रों से जुड़ा। श्री गणेश में ऐसा आकर्षण है, जो किसी को भी सहज अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। श्रीगणेश का प्रतिरूप गुणों को दर्शाने वाला रूप है। इस प्रकार वह स्वतः प्रेरणा से ही 10 वर्षों से श्रीगणेश के चित्र बना रहे हैं।

रोहित श्रीवास्तव जी ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी भी देश के विभिन्न स्थानों पर लगाई है और पूर्व राज्यपाल उ0 प्र0 विष्णु कान्त शास्त्री (अव स्वर्गीय) द्वारा वे पुरस्कृत हैं। समाचार पत्र दैनिक जागरण के अपने साक्षात्कार में वह कहते हैं कि युवा वर्ग को अपनी संस्कृति व विरासत की रक्षा करने की पहल करनी चाहिए।

डा0 चन्द्रा सुव्रमण्यम–

इस वैयक्तिक संग्रह में मूषक गणेश, लड्डू गणेश, लक्ष्मी के साथ गणेश पार्वती के साथ गणेश शिव के साथ गणेश, शिवपार्वती के साथ गणेश, शिव जी की परिक्रमा करते हुए गणेश, ढोलक बजाते हुए गणेश, ऋद्धि सिद्धि के साथ गणेश, नृत्य गणेश स्थानक गणेश बादक गणेश, गायक गणेश एकल गणेश, युगल गणेश तथा अन्यान्य मुद्राओं में गणेश की प्रतिमाएं संग्रहीत की न केवल व्यक्तिगत अभिरूचिों का प्रतिनिधित्व करती हैं प्रत्युत गणेश प्रतिमा पर शोध हेतु, शोधार्थियों को प्रचुर सामग्री भी प्रदान करती हैं। जब शोधकर्मी ने संग्रहकर्मी डा0 चन्द्रसुव्रमण्यम[1] से इस प्रतिमाओं के संग्रह का हेतु पूंछा तो उन्होंने बताया कि यह मेरी व्यक्तिगत अभिरूचि हैं जब मैंने उनसे पुनः प्रश्न किया कि आप ने अन्य देव प्रतिमाओं का संग्रह करने के बजाय श्री गणेश को ही क्यों चुना तो उन्होने बताया कि श्रीगणेश हमारे लिए शुभ देव हैं। इन प्रतिमाओं के संग्रह स्थलों के विषय में पूँछे जाने पर उन्होंने बताया कि कतिपय मूर्तियाँ विदेशी भी हैं डा0 चन्द्र सुव्रमण्यम के अनुसार जब वे विदेश जाती हैं तो वहां पर वे गणेश प्रतिमाएं तलाशती हैं और उन्हें अपने संग्रह हेतु क्रय करक लेती हैं। डा.चन्द्रा का पूरा आवास लान, पोर्च छज्जा बरामदा तथा आंगन इन्हीं प्रतिमाओं से अटापड़ा हैं वस्तुतः अव यह एक लघु संग्रहालय बन गया हैं जब मैंने इन प्रतिमाओं के समचार पत्रों में प्रकाशन का उद्देश्य पूंछा तो उन्होंने कहा कि समाचार–पत्र वालों ने मुझ से पूंछे विना अनायास ही छाप दिया। मेरे पास समय ही कहां है कि इन प्रतिमाओं के विषय में में आगन्तुकों को सविस्तार बता सकूं।

---

1 मेरी (शीधकर्मी) भेंट वार्ता दिनांक 15.9.2005

लोक चित्रकला में श्रीगणेश :–

लोककलाएं प्राचीन काल से ही हस्तशिल्प और हस्तकलाओं का आधार रही है जो हमारी संस्कृति को निरन्तर प्रभावित करती है। चित्रकला को जब लोक जीवन द्वारा अंगीकार किया गया, तब वह लोक भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर 'लोकचित्रकला' के रूप में प्रतिष्ठित हुई। लोकचित्रकला का उद्‌भव प्रागैतिहासिक काल से ही स्वीकार किया गया है। अतः प्राक् ऐतिहासिक काल में गुफाओं और चट्‌टानों में उकेरे चित्रों से इस लोकचित्रकला की यात्रा प्रारम्भ हुई और आज भी तमाम धाराओं को अपने में समाहित करते हुये अनेक क्षेत्रीय परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हुये स्थानीय चित्रकला के नाम से प्रसिद्ध बुन्देलखण्ड के जन–मानस में रची बसी यही चित्रकला बुन्देली लोक चित्रकला बनी जिसमें बुन्देलखण्ड के सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक आयामों की छटा दृष्टिगोचर होती है।

बुन्देली लोकचित्रकला में जनपद–जालौन के उत्सवों पर जो भूमि और भित्ति आलेखन होता है उसमें श्री गणेश के चित्र का अंकन बहुधा होता हैं ब्रत–उपवास, अनुष्ठान लोकोत्सव, कथा कहानियां, व्रत धारक के आस्था और विश्वास को संतुष्टि प्रदान करती है लेकिन मनुष्य जिस ईश्वर की पूजा करता है वह उसके साकार रूप का दर्शन करना चाहता हैं इस भावना में सहायक होती है लोगों की कलात्मक अभिरूचि जो निराकार ब्रह्म को साकार रूप प्रदान करती है। ईश्वर किस प्रकार हमारे जीवन को प्रभावित करता है यह भाव परम्परागत रूप में चित्रित करना लोक–चित्रण का सबल पक्ष है। अतः श्रीगणेश मंगलकार देव हैं इसी भाव के साथ भारत की सभी स्त्रियां प्रत्येक मांगलिक अवसर पर चाहे वह धार्मिक उत्सव पूजन या सामाजिक समारोह ही क्यों न हो, श्रीगणेश के चित्रांकन द्वारा सामाजिक समारोह ही क्यों न हो, श्रीगणेश के चित्रांकन द्वारा अपनी मंगलकामना को प्रकट करती हैं।

श्रीगणेश के ये चित्र विशेष अवसरों पर भूमि या भित्ति धरातल पर निर्मित किये जाते हैं। पौराणिक आख्यानों धार्मिक कथाओं, लोक कथाओं और किंवदन्तियों पर आधारित श्रीगणेश के चित्र के साथ अनेक चिन्ह या प्रतीक भी अंकित किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध सौंदर्य और लोक मंगल से है। शास्त्रों के अनुसार ये सभी प्रतीक श्रीगणेश के ही विभिन्न रूप हैं।

प्रतीकों में प्रमुख मंगलकारी विघ्न विनाशक गणेश हैं। विवाहादि शुभ अवसरों पर गृहद्वार की दीवाल पर श्रीगणेश का अंकन किया जाता है[1]। विवाह के अवसर पर गृह सज्जा का

1. 'बुन्देलखण्ड में इस लोक–चित्रकला को चितैरी कला कहते हैं जो राजस्थान की कला से अभिप्रेरित है इस कला को चित्रित करने वाला 'चितैरे' कहें जाते हैं।' श्रीवास्तव, मधु, 'बुन्देलखण्ड की लोकचित्रकला' पृ0–96

यह सुन्दर पक्ष है। यहां की लोककला के नाम पर विवाहोत्सव के समय कन्यापक्ष या वरपक्ष के गृहद्वार पर श्रीगणेश और उनकी पत्नी सदृश दो शक्तियां रिद्धि और सिद्ध भी अंकित की जाती हैं, और उनका वाहन मूषक मुख्य द्वार की चौखट के ऊपर चित्रित किया जात है। श्रीगणेश विघ्नहरण देवता हैं। वे शुभ कार्यों को बिना विघ्न बाधा के सम्पन्न करायें तथा परिवार में रिद्धि–सिद्धि व्याप्त रहे, इसी भाव से यह चित्रण अवश्य कराया जाता है जो कि प्राचीन काल से चला आ रहा है[1]। इसके अतिरिक्त लोक कला के दर्शन दीपावली पर घर–घर की दीवारों पर बने गणेश–लक्ष्मी जी के चित्रों से होते हैं। गृहणियों द्वारा दीपावली पर बने पन्नों (सादे कागज) में प्रदर्शित भित्ति चित्र है जिनमें गृहणियों के मस्तिष्क की कल्पना एवं उनकी विवेकशीलता के साथ–साथ उनकी कला, अभिरूचि का पता चलता है।

इन उत्सवों के अतिरिक्त ब्रतोत्सव में भी महिलायें गणेश के चित्र का अंकन दीवालों पर कर उनका पूजन करती हैं। माघ की कृष्ण चौथ[2] तीजा (हरितालिका) और करवा चौथ ब्रतोत्सवों में श्रीगणेश का अंकन किया जता है। अतः इन ब्रतोत्सवों पर या पट्ट पर एक सुन्दर आयताकार आलेखन् के बीच श्रीगणेश के साथ सुख एवं समृद्धि के एवं मांगलिक प्रतीकों के चित्रांकन भी देखने को मिलते हैं इनमें सर्व प्रथम श्री और सूर्य चन्द्र के साथ–साथ ओंकार, कलश, स्वास्तिक, चक्रकार सांतियां, अग्नि, विष्णु पद हाथी और कमल पुष्प का अंकन जनपद–जालौन में सर्वदा चित्रित मिलते है। ये सभी प्रतीक शास्त्रों के अनुसार श्रीगणेश स्वरूप से ही सम्बन्धित है और यह सभी चिन्ह सामाजिक महत्व भी रखते हैं। श्रीगणेश उदयकालीन सूर्य के समान लाल रंग की अंगकान्ति के कारण सूर्य प्रतीक में चिन्हित है[3] तो मस्तक पर सुशोभित होने के कारण चन्द्ररूप में। ये दोनों ही जीवन को शाश्वतता प्रदान करते है[4]। शास्त्रों के अनुसार कलश पर रखा हुआ नारियल साक्षात् गणेश स्वरूप होता हैं विवाहादि उत्सवों की दीवाल पर हाथी का अंकन श्रीगणेश के गजमुख होने के कारण है अतः इसी कारण उनके गजानन, गजास्य आदि नाम भी पड़े। इसी कारण हाथी ऐश्वर्य शक्ति और दृढ़ता का भी प्रतीक बन गया। कमल का अंकन द्वार पर होता है जो भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण प्रतीक है, और श्रीगणेश के आसन के रूप में भी चित्रित किया जात है। वेदों और शास्त्रों में ऊँ और स्वास्तिक द्वारा श्रीगणेश्या स्वरूप का आविर्भाव बतलाया गया

---

1. 'अवध की स्त्रियां भी ज्यूत आलेखन में कोहबर (उस कक्ष को कहते हैं जिसमें शादी में देवताओं की स्थापना की जाती है) की एक दीवार पर सर्वप्रथम मांगलिक चिन्ह और गणेश को ही अंकित करती है तत्पश्चात् अन्य देवी–देवताओं को' 'भारतीय कला के विविध आयाम' पृ0 95
2. पश्चिमी और दक्षिण अवध में कार्तिक कृष्ण–पक्ष की अहोई अष्टमी के लोक चित्रांकन में अन्य देवों के साथ श्रीगणेश भी लिखे जाते हैं। (यह त्यौहार जनपद–जालौन में भी मनाया जाता है) वही, पृ0 96
3. आगम पुराण में उनकी अंगकान्ति उदित सूर्य के समान बतलाई गई – 'उद्यद्वि नेश्वररूचि –'3। (गणेश अंक 'कल्याण' पृ0 –74
4.. 'हर लोकचित्र में ऊपर दायीं ओर सूर्य और बायीं ओर चन्द्र की स्थिति अनिवार्य बतलायी गयी है। औपनिषदिक दर्शन में वे पुरूष और स्त्री के प्रतीक हैं जिससे सृष्टि चलती हैं। 'लोक कला के विविध आयाम' पृ057

है। ऊँ को ही स्वास्तिक रूप में लिया गया क्योंकि लिपि विज्ञान के आरम्भ में गोलाई के अक्षर नहीं थे। ऊँ नारदत्व से सर्वप्रथम बिन्दु और फिर आड़ी, खड़ी रेखाओं द्वारा स्वास्तिक प्रतीक बना[1], जो कि चतुर्भुज ओंकार के रूप में परिणित हुआ, ये गणेश। जी के ही चार हाथ हैं। यजुर्वेद के अनुसार–सूर्य मण्डल के चार विद्युत केन्द्र हैं जिनमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में क्रमशः इन्द्र, पूषा, अरिष्टनेमि और वृहस्पति देव विराजमान हैं। उन चारों को ऊपर से नीचे और दायें से बाऐं रेखा रूप में खीच दिया जाए, तो स्वास्तिक बन जाता है। अतः स्वस्तिक के चारों ओर ऊपर पूषा, अरिष्टनेमि और वृहस्पति देव विराजमान हैं उन चारों को ऊपर से नीचे और दायें से बाऐं रेखा रूप में खीच दिया जाए, तो स्वास्तिक बन जाता है। अतः स्वातिक के चारों ओर अगर ठीक से ध्यान दिया जाए तो उसमें गणपति का बीजम् 'ग' विराजमान दिखलाई देता हैं अतः देवों में उपर्युक्त चारों देवों में से किसी का भी मन्त्र आया, उसमें गणेश 'स्वास्तिक' का ही बोध होता है।

इसी कारण जनपद जालौन में चौक पूरते समय सबसे पहले बिन्दु जो कि सृष्टि रचना का आरम्भ बतलाया गया है फिर बिन्दु केन्द्र से स्वास्तिक और दो–दो रेखाओं से बना चतुष्कोण उसे घेर लेता है। चतुर्भुज की आठों दिशाओं को घेर कर पूर्ण कुम्भ बनाये गये हैं जो सुख–समृद्धि और जीवन की पूर्णता के प्रतीक हैं। इसे अष्टदल कमल का चौक भी कहा जाता हैं हठयोग में अष्टकमल मूलाधार से मस्तिष्क तक के अष्ट चक्रों के प्रतीक हैं जो मानव शरीर में विद्यमान है। इनमें मनुष्य शरीर में रीढ़ की हड्डी के मूल में, गुदा से दो अंगुल ऊपर सर्वप्रथम मूलाधार चक्र है। यह चक्र चार दलों वाला है जिसके मध्य में चतुष्कोण आधारपीठ है। इस पर श्रीगणेश विराजमान हैं[2]। इसी कारण भारतीय लोक संस्कृति में स्वास्तिक सम्बन्धित सभी चौक श्रीगणेश की आस्था स्वरूप ही चिन्हित किये जाते हैं।

जनपद–जालौन में प्रत्येक शुभ–अवसर पर श्रीगणेश प्रतीक के रूप में चौक भूमि पर चित्रित किये जाते हैं। ये आटे या सूखे रंगों द्वारा बनाये जाते हैं सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में चौके स्त्रियों द्वारा ही पूरे जाते हैं। अतः शुभ–अवसरों पर गृहणियां कुंवारी कन्याएं इन चित्रों के द्वारा अपनी मंगल कामना प्रकट करती हैं। लोक–चित्रकला में भूमि और भित्ति पर श्रीगणेश को चित्रित करने के साधन सरल ही हुआ करते हैं। सबसे पहले भूमि और भित्ति के धरातल को मिट्टी या गोबर से लीपकर पृष्ठभूमि तैयार की जाती है फिर प्राकृतिक रंगों जैसे–चूना, गेरू, गोबर मिट्टी व चूने

1. कल्याण, गणेश अंक में कालिदास की 'चिग्दगन–चन्द्रिका' में ऊँ से श्रीगणेश उत्पत्ति का वृतान्त वर्णित है –
चिद्वयोम स्फारनादं रूचिविसरलसद्बिनदुवक्रोर्मिमालम्।
आद्यस्पन्दस्वरूपः प्रथयति सकृर्दोकारशुण्डः क्रियादृग्
दन्त्यास्याऽयं हठाद्वः शमयतु दुरितं शक्तिजन्मा गणेशः –1/1 पृ0 53
2. गणपत्यथर्वशीर्ष –6

के रंग, घर में प्राप्त वस्तुयें जैसे–हल्दी, चावल आटा, सिंदूर, रोली, महावर, चंदन, काजल, नील आदि रंग का प्रयोग लोकचित्रकला में किया जाता हैं यह सब साधारण जीवन में प्रस्तुत होने वाली सुलभ सामग्रियां हैं। अतः मांगलिक देव श्रीगणेश के चित्रांकन में इनके प्रयोग का भाव भी मानव की श्रीगणेश देव की आस्था के प्रति समर्पण को परिभाषित करता है।

लोकाचार में श्रीगणपति–

जिस प्रकार सनातन वैदिक हिंदू–धर्म के उपास्य देवताओं में श्रीगणेश देव का महत्व सर्वोपरि है, उसी प्रकार साधारण लोकजीवन में भी वह सर्वपूज्य है। भारत का शायद ही ऐसा कोई हिन्दु परिवार होगा जहाँ श्रीगणेश की पूजा न होती हो।

लोक–जीवन प्रकृति का प्रतिरूप है। जटिल से जटिल तथ्यों और गूढ़ से गूढ़ तत्वों को भी जन–मानस के लिए सरल, सुबोध, सुग्राह्य ही नहीं सरस भी कर देना लोक–जीवन की अपनी विशेषता है। यदि हम लोक को जानना चाहते हैं तो हमें लोक चेतना लोकभावना और सामान्य जन के आचार व्यवहार का अध्ययन कर सत्यता की परखा करनी होगी तभी हम 'लोक' शब्द की व्याख्या करने में सफल होंगे। महर्षि व्यास जी का कथन है "प्रत्यक्ष दर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेनरः" अर्थात् " लोक को प्रत्यक्ष देखने वाला ही सर्वदर्शी होता है।" ये सभी तत्व लोकमन और लोकजीवन में होते हैं जिनकी आधारशिला पारंपरिक लोकसंस्कृति रही है और इनमें भी लोक पर्वो, व्रतों और त्यौहारों की महती भूमिका रही है। ये सभी धार्मिक लोकविश्वास है। अतः सनातन धर्मी इनके माध्यम से वर्ष भर विभिन्न देवी–देवताओं की पूजा इच्छा पूर्ति हेतु करते हैं। ऐसा लोकविश्वास है कि शुभ अवसरों पर देवताओं की पूजा और निमंत्रण देने से कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं। सभी सम्प्रदायों और सभी धर्मों में श्रीगणेश पूजनीय माने गये हैं। इसी कारण भारतीय जनमानस अपने प्रत्येक कार्य के आरम्भ में सर्व प्रथम श्रीगणेश का नमन, स्तवन और वन्दन करते हैं बुन्देलखण्ड के जनपद–जालौन के लोकाचार, व्यवहार एवं रीतिरिवाजों के सर्वेक्षण से इसकी पुष्टि सहज ही हो जाती है। यहां की इस परम्परा में वही मंगल का भाव और लोक रंजन का भाव देखने को मिला, जो अनन्त काल से चला आ रहा हैं यह भाव गीत, कथाओं चित्रों अनुष्ठानों और विविध लोकचारों में श्रीगणेश की महत्ता के साथ निरन्तर व्यक्त हुआ है।

शुभारम्भ का पर्याय 'श्रीगणेश'एक मुहावरा बन गया हैं इसी कारण यहाँ का भी प्रत्येक व्यक्ति किसी भी कार्य का आरम्भ यह कहकर करता है कि 'श्रीगणेश कीजिये। किसी महत्वपूर्ण कार्य के लिये बाहर जाते समय प्रायः श्रीगणेश का ही स्मरण किया जाता है। जिससे यात्रा शुभ व आनन्ददायक हों। यात्रा से पूर्व गणेश के स्मरण की बात तुलसीदास जी ने स्वयं अपने ग्रंथ

श्रीरामचरितमानस में कही है। जिसमें राजा दशरथ राम विवाह हेतु जनकपुरी जाते समय श्रीगणेश जी का स्मरण करते हैं[1]। यहां का व्यापारी वर्ग और कृषक अपने–अपने क्षेत्र में लाभांश बनाये रखने के लिए श्रीगणेश को याद करना नहीं भूलता हैं व्यावसायिक वही–खातों के या पुस्तकों के प्रथम पृष्ठ पर 'श्रीगणेशाय नमः' मागंलिक वाक्य सर्वप्रथम अवश्य लिखा जाता हैं इन मंगल कामनाओं के साथ नवनिर्मित मकानों और मन्दिरों में भी सर्वप्रथम श्रीगणपति को स्थापित किया जाता है। ताकि सभी संकट व विघ्नबाधायें दूर हो जायें यहाँ के लोग घरों के मुख्य द्वार पर मिट्टी, प्लास्टिक व कहीं–कहीं पत्थर की गणेश मूर्ति छोटे से चौखटे में मंढवाकर लगवाते हैं। पुराने व नवनिर्मित मन्दिरों के मुख्य द्वार के बिल्कुल ऊपर या अलग–बगल गणेशजी की पत्थर की प्रतिमायें देखने को मिल जाती हैं जिनमें कोंच स्थित बड़ी माता मन्दिर, सिंहवाहिनी मन्दिर और उरई स्थित लक्ष्मीनारायण का मन्दिर, मन्सिल माता, कालपी के गोपाल मंदिरों के द्वार पर स्थापित प्रतिमा प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों–झाँसी के किले के उत्तरी प्रवेश द्वार और दतिया के वीरसिंह देव महल के द्वार पर बनी गणेश प्रतिमायें भी इसका उत्तम उदाहरण है।

इसी प्रकार लोकाचार के रीति–रिवाजों में शुभ संस्कारों में तथा तिथि–त्योहारों में विघ्न विनाशक गणेशजी की स्थापना के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता। मंगल–उत्सव आदि आनन्दप्रद समारोहों के भोज आयोजन का आरम्भ भी श्रीगणेश स्मरण के साथ ही किया जाता है। अतः भोज की कढ़ाई चढ़ाने से पूर्व एक कलश के ऊपर मिट्टी या गोबर की गणेश प्रतिमा बना कर चूल्हे के बगल में रख दी जाती है। कढ़ाई में भी सर्व प्रथम एक पूड़ी तलकर गणेश के भोग के नाम पर निकाल दी जाती है। ताकि सहभोज सफलता के साथ पूर्ण हो और भोजन में कमी न पड़े।

हिंदु धर्म में तैंतीस कोटि देवता हैं, किंतु प्रत्येक देवता की पूजा में अग्रस्थान श्रीगणेश देवता का ही है, इसी कारण. देश के अन्य क्षेत्रों की ही भांति जालौन क्षेत्र–विशेष में भी सभी शुभ संस्कारों यज्ञोपवीत, विद्यारम्भ, विवाह, नामकरण और मुण्डन आदि कोई भी संसकार हो, सभी का प्रारम्भ और मुण्डन आदि कोई भी संस्कार हो सभी का प्रारम्भ 'श्रीगणेशाय नमः[2] से ही किया जाता है। गणेशजी विद्यादाता भी माने गये हैं। माता–पिता इसी उद्देश्य से अपने बच्चों का विद्यारम्भ गणेश–पूजन से करवाते हैं जिससे भविष्य में बच्चा पढ़े, इच्छानुकूल विद्या प्राप्त करे, परीक्षा में

1. तुलसीदास कृत रामचरितमानस, (बालकाण्ड) –301
.....सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु।
देखिए तथा 'जेहि सुमिरत सिधि होय, गणनायक करिवरवदन।
करहु अनुग्रह सोय, बुद्धि राशि शुभ गुन सदन।
2. पंजाव में गणेश मंत्रों में 'ऊँ श्रीगणेशाय नमः' के स्थान पर 'सिरी गणेशय नमः' का उच्चारण किया जाता है।

उत्तीर्ण हो और वह श्रेष्ठ विद्वान बने। विवाह के लिये भी वर व कन्या के मनभावन साथी और जीवन की खुशहाली के लिये गणेशजी पग–पग पर स्मरण किये जाते हैं। विवाह के समय वर और वधु के हाथों में जो कंकण पहनाया जाता है, वह कलावा (मौली) का बना रहता है। उसमें लोहे के एक छल्ले और कौड़ी के साथ सुपारी भी पिरोयी जाती है। कंकण में सुपारी का होना गणेशजी के अंग–संग रहने का प्रतीक है। प्रायः सभी हिंदू घरों में यही देखने को मिला है कि सभी संस्कारों व त्यौहारों के पूजन से पहले पण्डितजी का यही आदेश होता है कि माताजी या बहन जी सुपारी जरूर ले आनां पूजा की प्रत्येक प्रक्रिया में सुपारी पर रोली लगाकर गणेशजी का ध्यान करने के लिये कहते हैं और निम्न मंत्रों का उच्चारण करते जाते हैं।

'ऊँ गणानां त्वा गणपति वं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति वं हवामहे।
निधीनां त्वा निधिपति वं हवामहे वसो मम्।। इसी प्रकार–
'वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभः। निर्विघ्नं कुरूमेदेव सर्वकार्येुष सर्वदा।।'

इसी प्रकार लाल कपड़े में सुपारी लपेटकर और कलावा से कपड़े को बाँधकर बढई के निवेदन पर नव निर्मित मकान की चौखट या लोहे के गार्ड पर लटका दिया जताा है। यह गणेश पूजा का ही प्रतीक है।

इसके अतिरिक्त जालौन में दीपावली जैसा बड़ा त्यौहार तब तक नहीं मनाया जाता, जब तक गणेश–लक्ष्मी की युग मूर्ति बाजार से घर न ले आये। ये मूर्तियां अधिकांशतः विभिन्न धातुओं और मिट्‌टी द्वारा निर्मित की जाती हैं। दीपावली पर्व लक्ष्मी आगमन का पर्व है लेकिन शुभ और लाभ के पिता तो श्रीगणेश ही हैं इसी कारण लक्ष्मी के साथ गणेशजी को अवश्य प्रतिष्ठित किया जाता है।लक्ष्मीजी गणेशजी के दाहिने तरफ विराजमान रहती हैं। 'विजयादशमी' (दशहरा) के पूजन से पहले सभी गृहस्थ व्यापारी और नौकरी पेशे वाले हर वर्ष हिसाब किताब हेतु मंगवायी गयी कापी और रजिस्टर में सबसे पहले 'ऊँ श्री गणेशाय नमः' लिखते हैं।

कुछ त्यौहार ऐसे भी हैं जो गणेश जन्म और गणेश की संकट–निवारण–शक्ति से सम्बन्धित हैं। ये त्यौहार गणेश चतुर्थी के नाम से जाने जाते हैं, जिन्हें बुन्देली लोग गनेश चौथ कहते हैं। पौराणिक साहित्यों में जहाँ शिवपुराण में भाद्र मास की कृष्णपक्ष की चतुर्थी को मंगलमूर्ति गणेश की अवतरण तिथि बताई गई है वह गणेशपुराण के अनुसार गणेशावतार भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी को हुआ। 'शिवधर्म' के अनुसार 'सर्वदेवमयः साक्षात् सर्वमंगलदायकः। माघ–कृष्ण चतुर्थ्यानतु प्रादुर्भूतो गणाधिपः।। पूर्वांचल के लोग इसी सिद्धांत का अनुसरण कर माघ–कृष्ण–चतुर्थी को गणेशावतार तिथि समझते हैं। जालौन क्षेत्र में भाद्रपद कृष्ण–चतुर्थी का विशेष महत्व है जिसे

बहुला चौथ' या बहुरा' चौथ भी कहते हैं। ये त्यौहारिक तिथियां जालौन क्षेत्र में गीत, व्रत कथा, पूजन, अनुष्ठान और उत्सवों सहित मनायी जाती हैं। प्रत्येक तिथि के व्रत की अपनी अलग–अलग कथा होती है जिनमें से कुछ पोराणिक कथाओं पर आधारित होती है तो कुछ सर्वथा लौकिक होती है। माघ की गणेश चौथ को तो लौकिक कथायें ही कहीं जाती हैं जिनहें जालौन में कहानियां कहते हैं।

जालौन क्षेत्र की गणेश चतुर्थी व्रत से सम्बन्धित पूजन विधि, कहानियों और उत्सव, गीतों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है जिनमें कि गणेश–महिमा बड़े ही सुन्दर ढंग से दिखलाई गई है–

अतः बहुला चौथ[1] का व्रत पुत्रवती स्त्रियां अपने पुत्रों की कुशलता हेतु करती है। इस व्रत को करने वाली महिलाएं मिट्टी की गाय और बछड़े की मूर्ति बनाकर सर्वप्रथम उनको पूजती हैं फिर गणेश की गन्ध, पुष्प, माला और दूर्वा आदि के द्वारा यत्नपूर्वक पूजा कर परिक्रमा करती है। इस व्रत के दिन महिलाएं गाय का दूध और उससे निर्मित कोई पदार्थ ग्रहण नहीं करती है। क्योंकि इस तिथि में गाय के दूध पर केवल उसके बछड़े का अधिकार होता है। गेहूं और चावल का भी निषेध रहता है। इस व्रत में दिन भर उपवास रखने के बाद सायंकाल बछड़े सहित गौ की पूजा करनी चाहिए क्योंकि इस चतुर्थी के गणेश चन्द्रमा के उदय होने पर उत्पन्न हुये हैं[2]। इसके बाद दोने में बेसन की पपड़ी और लड्डू रखकर गाय को भोग लगाया जाता है, बाद में स्त्रियां उसी को प्रसाद के रूप में ग्रहण करती हैं।

गौ–पूजन के बाद इस व्रत की कथा सुनी जाती है। वह संक्षेप में यह है– किसी ब्राह्मण के घर में बहुला नामक एक अति सुन्दर गाय थी[3]। उसका एक प्यारा सा बछड़ा था। जब कभी बहुला को आने में थोड़ी सी भी देर हो जाती, तब वह बछड़ा बहुत बेचैन हो उठता ह। एक दिन बहुला घास चरते समय अपने झुण्ड से भटक कर घने जंगल में पहुंच गई। वहां उसे एक भयानक सिंह मिला। जो उसे देखते ही खाने के लिए झपटा। बहुला ने उससे अनुरोध किया– है हे वनराज। मैंने अपने बछड़े को अभी दूध नहीं पिलाया हैं वह मेरी प्रतिक्षा कर रहा होगा। कृपया मुझे जाने दो। मैं उसे दूध पिलाकर तुम्हारे पास वापस आ जाऊँगी। सिंह को उसकी बातों में सत्यता की झलक मिलती है। तब उसने बछड़े को दूध पिलाया और उसे प्यार से सूंधा और चाटा। इसके बाद वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये सिंह के पास वापस आ गई। यह देखकर सिंह उसके

1. पूर्वांचल ने यह त्योहार अविवाहित बहनें अपने भाइयों के लोकमंगल हेतु उपवास के द्वारा मनाती हैं।
2. चतुर्थ्यां त्वं समुत्पन्नों भाद्रे मासि गणेश्वर। असिते च तथा पक्षे चन्द्रस्योदयने शुभे।। शिवपुराण, रूद्रसंहित, कुमारिका खण्ड – 18/35
3. एक धर्मग्रंथ में लिखा है कि बहुला कामधेनु के अंश से द्वापरयुग में उत्पन्न हुई थी और वह नंदबाबा की गोशाला में थी। भगवान श्रीकृष्ण ने ही सिंह बनकर उसके सत्यप्रतिज्ञ होने की परीक्षा ली थी। ' दैनिक जागरण' मंगलवार 28 अगस्त, 2007 ''ऊर्जा'' पृ0–12

सत्य और वचन पालन से प्रभावित होकर उसे छोड़ देता है।

बहुला चौथ के व्रत से हमें यह प्रेरणा मिलती है कि हर कीमत पर अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह करना चाहिए। सत्य का सदा पालन करना चाहिए। धर्माचरण करने वाले की धर्म सदैव रक्षा करता है – धर्मो रक्षति रक्षितः इस व्रत का यह भी सार है कि माँ की तपस्या से बच्चों पर आने वाले सभी संकट दूर हो जाते हैं। इसी कारण माताएं इस प्रकार की कथाएं कहते हुये अपने पुत्र की कल्याण कामना करती है।

जालौन में भाद्रपद– शुक्ल– चतुर्थी का भी अत्यन्त महत्व है। इस तिथि के दिन गणेश जी मध्याह् में प्रकट हुये थे[1]। अतः उस दिन मध्याह् में गणेश की मृत्तिका मूर्ति बनाकर श्रद्धाभक्ति पूर्वक पूजा की जाती है। इस व्रत में गणेश के स्मरण, चिन्तन और नाम जप का अमित महत्व बतलाया गया है। पूजन के समय पांच लड्डुओं का भोग लगाकर तथा हरित दूर्वा के दूवर अंकुर लेकर उनके इक्कीस नामों के साथ समर्पित करते हैं –

सुमुखाय नमः

गणाधीशाय नमः,

उमापुत्राय नमः,

गजमुखाय नमः

लम्बोदराय नमः,

हरसूनवे नमः

शूर्पकर्णाय नमः,

वक्रतुण्डाय नमः,

गुहाग्रजाय नमः,

एकदन्ताय नमः,

हेरम्बाय नमः',

चतुर्होत्रे नमः

सर्वेश्वराय नमः,

विकटाय नमः,

हेमतुण्डाय नमः

विनायकाय नमः,

---

1. इस चतुर्थी को 'वरदा तिथि' भी कहते हैं। जिसका विवरण मुग्दलपुराण में मिलता है –
'चतफर्थ्या मध्यगे भानौ देहधरी समागतः। सा तिथि परमा तस्य प्रीतिदा सम्बभूव वै।। – 4/1/20

कपिलाय नमः,

वटवें नमः,

भालचन्द्राय नमः,

सुराग्रजाय नमः,

सिद्धिविनायकाय नमः

आदि नामों के साथ समर्पित करें।

इस व्रत के दिन शिवपुराण में वर्णित गणेश की पुर्नजिवित होने की जन्म'कथा कहीं जाती है जब कि इस तिथि की कहानी गणेशपुराण में भिन्न बतलाई गई है[1]।

श्रीगणेशपुराण के मतानुसार ही दक्षिण–भारत में विशेषकर महाराष्ट्र–समाज में भाद्र–पद –शुक्ल चतुर्थी को गणेश उत्सव का आयोजन किया जाता है। देश के अधिकांश भाग में इसी मान्यता के अनुरूप गणेश जयंती मनायी जाती है जिनमें जालौन क्षेत्र भी सम्मिलित है। जालौन के कोंच क्षेत्र में गणेश–उत्सव बड़ी धूम धाम से श्रीगणेश के जन्म से लेकर एकादशी के दिन जलविहार और प्रतिमायें विसर्जन करने तक मनावे हैं। इस आठ दिन की अवधि में इन स्थानों पर अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रम, धार्मिक प्रवचन, कवि सम्मेलन आदि भी होते हैं। बीते दो दशक से यह प्रचलन काफी कम हो गया है। इस क्षेत्र का गणेश–उत्सव मराठा शासन आने के बाद अधिक प्रचलित था। सम्प्रति में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में शारदीय नवरात्र के अन्तर्गत दुर्गापूजा विशेष प्रचलित है। इसी कारण यह गणेशमेला मराठों की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विख्यात था, जिसका विस्तृत विवरण अध्याय......में पृष्ठ......पर किया गया है।

माघ कृष्ण चतुर्थी का यहाँ के लोक जीवन में विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में शास्त्रों के अनुसार इस तिथि को 'संकट चौथ' भी कहते हैं। पुत्रवती माताएं पुत्र और पति की सुख–समृद्धि के लिए यह व्रत करती है। इस दिन प्रातः काल स्नान करके दिन भर व्रत करके श्रीगाणेश की प्रसन्नता के लिये संयमपूर्वक इस मंत्र द्वारा संकल्प लें–

मम सर्वविध सौभाग्य सिद्धयर्थ
संकष्ट चतुर्थीव्रतमहं करिष्ये।

इसके बाद चन्द्रोदय होने पर एक पटे पर चौक पूर कर उसके ऊपर गणेश की मिट्टी की मूर्ति स्थापित कर के उक्त मंत्र द्वारा श्रीगणेश जी का ध्यान मिया जाता है।

1. इन ग्रंथों में वर्णित श्रीगणेश जन्म की कथा का विस्तृत विवरण अध्याय....में देखें।

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्यकोटि समप्रभः।
निर्विघ्नं कुरूमेदेव सर्वकार्येषु सर्वदा।।

तत्पश्चात भक्ति पूर्वक षोडश्योपचार द्वारा विधिपूर्वक उनका पूजन करना। सर्व प्रथम पंचामृत से स्नान करायें फिर उनके अलग–अलग नामों से दूर्वा और तिल चढ़ावें –

'उमापुत्राय नमः,

एकदंताय नमः,

इभवक्त्राय नमः,

मूषकवाहनाय नमः,

विनाकाय नमः,

ईशपुत्राय नमः

विघ्न विनाशनाय नमः

गणाध्यक्षाय नमः।

इसके बाद विघ्नविनाशक की प्रार्थना करें।

संसारपीडाव्यथितं भर्यातं क्लेशान्वितं मां सुमुखः प्रसीद।
त्रायस्य मां दुःखदारिद्यनाशनः।
नमो नमो विघ्नविनाशनाय।।

प्रार्थना करके गुड़ में बने हुऐ तिल के लड्डूओं को नैवेद्य के रूप में गणेशजी को अर्पित करें। दिन भर उपवास रखने के उपरान्त रात्रि में चंद्रोदय के पश्चात् निम्नलिखित मंत्रों द्वारा क्रमशः चन्द्रमा गणेश ओर चतुर्थी को अर्ध्य प्रदान करें –

ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं नमस्ते ज्योतिषां पते।
नमस्ते रोहिणीकांत गृहाणार्ध्य नमोऽस्तु ते।।

गजानन नमस्तुभ्यं सर्वसिद्धि प्रदायक।
गृहाणार्ध्य मया दन्तं संकष्टं नाशयाशु में।।

तिथिनामुत्तमें देवि गणेश प्रियवल्लभे।
सर्वसम्पत्प्रदे देवि गृहाणार्ध्य नमोऽस्तु ते।।

तदुपरान्त लवण रहित भोजन करें। 'गणेशकोश के अनुसार–'शुक्ल चतुर्थी में तीन बार

और कृष्ण–चतुर्थी में तेरह बार अर्घ्य देने का विधान है[1]।

इस प्रकार इस परम कल्याणकारी 'संकष्टी चतुर्थी'[2] के फलस्वरूप व्रती धन–धान्य से सम्पन्न हो जाता है और उसके सामने संकट उपस्थित नहीं होते हैं। अतः प्रत्येक भक्त को कृष्णपक्षीय संकष्टी व्रत वर्षा पर्यन्त विधि–विधान से रहना चाहिये, जिससे उनकी सभी मनोकामनायें पूर्ण हों।

माघ–कृष्ण–चतुर्थी व्रत का पूजन विधिपूर्वक करने के बाद कतिपय लोक कथायें भी कहीं जाती हैं[3], जिनका अभिप्राय है कि 'सज्जनों पर कोई भी कष्ट न आये। गणेशजी आकर उनकी रक्षा करते हैं, किन्तु दर्जनों को या बनावटी संकट दिखाने वाले को दण्ड ही मिलता है। अतः व्रत–कथा के अन्त में नियम पूर्वक कहा जाता है 'हे गणेशजी बब्बा जिस प्रकार आप इस कथा के पात्र पर प्रसन्न हुये उसी प्रकार हम सब पर भी प्रसन्न होईये। इस अन्तिम वाक्य व्रत–कथाओं का महात्म्य प्रकट होता है जिससे सहज ही लोक हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

भाद्रपद मास और माघ मास की चतुर्थी के अतिरिक्त वर्षभर प्रतिमाह पड़ने वाली गणेश

---

1. कल्याण, गणेश अंक पृष्ठ – 493 (यह प्रथा महाराष्ट्र में अधिक देखने को मिलती है।)
2. स्कन्दपुराण में प्रत्येक मास की 'संकष्टी चतुर्थी' के व्रत की कथा और महिमा का अत्यन्त विस्तार से वर्णन मिलता है। 'दैनिक जागरण, मंगलवार 10, अक्टूबर, 2006 पृ0 'ऊर्जा'
3. यह एक देवरानी और जेठानी की कहानी है देवरानी बहुत गरीब थी। वह अपनी जेठानी के घर काम करके अपना पेट पालती थी। गणेश चतुर्थी आने पर देवरानी अपनी जेठानी के पास गई और गणेश प्रसाद हेतु कुछ चावल मांगने लगी। इस पर जेठानी ने उसे चावल का कोंडा (चावल की छानन) दे दिया। दिनभर व्रत रखकर रात्रि में उसने उसी कोंडे के प्रेमपूर्वक लड्डू बनाये और गणेशजी को भोग लगाते हुये बोली 'हे गणेश बब्बा' मेरे लड्डुओं का भोग लगाओ। गणेशजी उसकी सच्ची भक्ति देख साक्षात प्रकट होकर उसके सारे लड्डू खा गये। फिर गणेशजी ने दीर्घाशंका हेतु स्थान पूंछा, तो उस देवरानी ने बाहर लोकलाज के भय से अन्दर ही अपने घर के एक कोने में ही दीर्धशंका हेतु गणेशजी से बैठने को कहा। इस प्रकार गणेश बब्बा एक कोने के बाद दूसरे कोने और दूसरे के बाद तीसरे, चौथे और फिर बीच में भी दीर्घशंका करते गये, जो सभी हीरे–जवाहरात और अशर्फियां बन गये। वह देवरानी यह सब देखकर हैरान रह गई। दूसरे दिन वह अपनी जेठानी के पास गई और काम के लिये मना करते हुये एक तखरी (तराजू) मांगी। जेठानी ने सोचा कल तक तो इसके पास खाने को नहीं था और आज काम के लिये मना कर रही है। यह सोचते हुए उसने तखरी के नीचे गोंद चिपका दी। घर जाकर देवरानी ने सारे जवाहरत तौलकर जब वापस करने आई तो जेठानी ने तखरी उल्ट–पटलकर देखी। उसे नीचे एक अशर्फी चिपकी हुई दिख गई। जेठानी ने उससे कहा तूने किस की चोरी की। इस पर वह बोली ये सब मैं नहीं जानती। मेरे गणेश बब्बा जाने और सारा वृतान्त सुनाया। जेठानी ने भी लोभवश वैसा ही किया। लेकिन गणेश बब्बा तो अन्तर्यामी हैं वो तो जान ही गये थे कि वह तो गरीब थी विवश थी। लेकिन जेठानी ने तो अमीर होते हुये भी ऐसा किया। अतः गणेश बब्बा ने जेठानी के पूरे घर में दीर्घशंका करके गंदगी फैला दी।

उनके महिमा की एक लोककथा इस प्रकार भी है – एक बार गणेशजी बालक रूप धारण कर चम्मच भर दूध और चुटकी भर चावल लिये हुए नगर की गलियों में घूम रहे थे और पुकार–पुकार कर कह रहे थे– कोई मेरे लिये खीर बना दो, परन्तु इतने थोड़े से दूध तथा चावल से खीर किस प्रकार बन सकती है। अतः कोइ भी उस बालक का काम कर देने के लिये तैयार नहीं हुआ। अन्त में बालक गणेश एक बुढ़िया के घर के सामने पहुंचे तो उसने स्नेहवश उनकी बात स्वीकार कर ली और बर्तन में उसका दूध चावल भरकर आग पर चढ़ा दिया। बालक स्नान करने के लिये बाहर चला गया और इधर बुढिया का बर्तन खीर से भर गया। पहले उसने एक थाली भरकर बालक के लिये अलग रख दी और फिर अपने लिये थाली खीर से भर ली तथा आराम से उसे खा लिया और मुहल्ले में सभी को खिलाई। इसके बाद बालक स्नान करके आया और उसने खीर मांगी तो बुढ़िया ने उसके सामने खीर की थाली रख दी थाली देखते ही कहा कि 'यह तो जूठी' है। इस पर बुढ़िया ने सारी बात प्रकट कर दी। बालक गणेश बुढ़िया के सत्य वचन पर परम प्रसन्न हुए और उसे सब प्रकार से सुखी बना दिया।

चतुर्थी की पूजा भी करनी चाहिए। वर्षभर के चतुर्थी–व्रतों की संक्षिप्त विधि 'कल्याण' के 'नारद–विष्णु पुराण अंक के आधार पर इस प्रकार है–[1]

चैत्र मास में 'वासुदेव' रूपी गणेश जी की उपासना करके स्वर्ण दक्षिणा देनी चाहिए[2]। वैशाख मास में 'संकर्षण' रूपी गणेश की उपासना करके शंख दान देना चाहिए। ज्येष्ठ मास में गणेश की पूजा 'प्रदुम्न' नाम से करके फल–फूल दान करना चाहिए। इस मास में क्योंकि उनकी अर्चना 'सतीव्रत' के नाम पर की जाती है इसलिए सच्चा साधक माता पार्वती का लोक प्राप्त कर लेता है। इस मास में सन्यासियों को तूंबी–पात्र का दान करना चाहिए। आषाढ़ मास में गणपति की अर्चना से देवदुर्लभ फल मिलता हैं श्रावण मास 'दुर्वागणपति' का व्रत बताया गया है[3]। भाद्रपद मास का विवरण ऊपर दे चुके हैं। आश्विन मास में 'कपर्दीश' गणेश की पूजा होती है। कार्तिक मास में 'करक चतुर्थी' व्रत करने का विधान है। इस व्रत को सौभाग्यशाली स्त्रियां मिट्टी के दस करवों द्वारा पूजन करतीं हैं। इसी कारण इस व्रत को करवा चौथ नाम से भी जानते हैं[4]। मार्गशीर्ष मास में चार संवत्सर पर्यन्त पालनीय व्रत की विधि है। पौष मास में 'विघ्न विनाशक' गणेश की पूजा की जाती हैं माघ मास की चतुर्थी को गणेश पूजन विधि पृष्ठ – पर दी गयी है। फाल्गुन मास में 'दुण्डिराज' व्रत करने का विधान हैं इस मास के व्रत को 'मत्स्यपुराण के अनुसार 'मनोरथ–चतुर्थी' और अग्निपुराण में 'अविघ्ना–चतुर्थी की संज्ञा दी गयी है[5]।

यदि रविवार या मंगलवार से युक्त चतुर्थी हो, तो वह विशेष फलदायी होती हैं इसे 'अंगारक चतुर्थी' कहते हैं[6]। इस चतुर्थी का सविधि व्रत कर लेने पर साल भर की चतुर्थियों का फल मिल जाता हैं

अतः इन व्रतोत्सवों में और अन्य अवसरों पर श्रीगणेश पूजन में कुछ विशिष्ट बातों का ध्यान अत्यन्त आवश्यक है–

गणपति की पूजा में तुलसीपत्र का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध है। ''ब्रह्मवैवर्त्तपुराण' में तुलसी का निषेध वर्णित है लेकिन नारदपुराण और व्रतराज में क्रमशः गणेश के 'शूर्पकर्ण' और 'गजवक्त्र'

---

1. कल्याण, गणेश अंक पृ0 494, 'विस्तृत पूजा विधि तथा माहात्म्य जानने के लिये देखिए 'ब्रतराज'।
2. अग्निपुराण के अनुसार चैत्र–मास की चुतर्थी को 'दमनक–पत्रों (दौनो के पत्तों) से गणेश का पूजन करके मनुष्य सुख–भोग प्राप्त करता है,
   कल्याण, गणेश अंक
3. सौरपुराण –
4. धर्मग्रन्थों में वर्णित कृष्णपक्ष की चतुर्थी (संकष्टी चतुर्थी) के व्रत में चन्द्रोदय के समय श्रीगणेश की पूजा के साथ चन्द्रदेव की अर्चना तथा उन्हें अर्घ्य देने का विधान लिखा गया है। इसी कारण कार्तिक –कृष्ण – चतुर्थी को होने वाले 'करवा चौथ ' के व्रतोत्सव में महिलाएं रात में चन्द्रमा के दिखाई देने पर अर्घ्य देकर पूजा करती हैं। – दैनिक जागरण' ऊर्जा मंगलवार, 10 अक्टूबर, 2006 पृ0 11
5. कल्याण, गणेश अंक पृ0 –494
6. गणेशपुराण 'उपासनाखण्ड' – अध्याय –60

स्वरूप के लिये तुलसी अर्पण का विधान वर्णित है[1]।

गणपति को दूर्वादल अत्यंत प्रिय है यजुर्वेद संहिता में दूर्वा का महत्व दिया गया है।
'ऊँ काण्डात्काण्डात् प्ररोहनती परूषाः परूषस्परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्त्रेण शतेन चं।। (13/20) ऊँ सिद्धिबुद्धि सहिताय महागणपतये नमः, दूर्वाकुंरान् समर्पयामि।[2]
श्री गणेशाय के अर्ध्यपात्र में जल के अतिरिक्त अन्य आठ वस्तुएं होनी आवश्यक हैं दही, दूर्वा कुशाग्र, पुष्प, अक्षत, कुमकुम, पीली सरसों और सुपारी[3]। कीड़ो से दूषित, बासी हो, जमीन पर गिरे, अधखिले फूल किसी देवता पर चढ़े पुष्प न चढाये। पहनी हुई धोती के पल्ले में लाया अथवा जल से धोया पुष्प भी त्याज्य माना जाता हैं देवता पर अधोमुख पुष्प चढ़ाने का भी निषेध है। फूल स्नान से पूर्व लेकिन तुलसीदल स्नान के बाद तोड़ना ही उचित होता हैं कुश या दूर्वा, से देवता पर जल छिड़कना पाप माना जाता है।

उपर्युक्त पूजन सामग्रियों के साथ एक पीठ या चौकी पर कमल की भावना करके उसकी कर्णिका में गणपति प्रतिमा स्थापित कर[4] स्वयं आसन पर पूर्वाभिमुख होकर बैठे।

श्रीगणेश के पूजनोंपरान्त, कुछ महत्वपूर्ण श्लोक या मन्त्र पढ़कर और श्रीगणेश आरती गाकर उनसे प्रार्थना की जाती है।

(क) गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफल चारू भक्षणम्।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपाद पकंजम।।

इस छोटे से मन्त्र से ही दयालु देव प्रसन्न हो जाया करते हैं। सभी संकटों के निवारणार्थ निम्नलिखित स्त्रोत का पाठ किया जता है –

प्रणम्य शिरसा देवं गौरी पुत्रं विनायकम्।
भक्तावासं स्मरेन्नित्यमायुः कामार्थ सिद्धये।।

प्रथमं वक्रतुण्डं च एकदन्तं द्वितीयकम्।
तृतीयं कृष्णपिङ्गक्षम् गजववत्रं चतुर्थकम्।।

---

1. कल्याण, गणेश अंक पृ0 491
2. वही पृ0 503
3. "दधिदूर्वाकुशाग्रैश्च कुसुमाक्षतकुडुंमैः।
सिद्धार्थो दकपूगैश्च अष्टांगः ह्यर्ध्यमुच्यते।। (आह्निक–सूत्रावली देखिए कल्याण का गणेश अंक – पृ0 496
4. गणेश प्रतिमा के अभाव में एक पात्र में चावल भरकर, उसके ऊपर मौली (कलावा) लिपटी हुई सुपारी स्थापित करके उसी में गणपति देव की भावना कर सकते हैं।

लम्बोदरं पंचमं च षष्ठं विकटमेव च
सप्तमं विघ्नराजेन्द्रं धूम्रवर्णं तथाष्टमम्।।

नवमं भालचन्द्रं च दशमं तु विनायकम्।
एकादशं गणपतिं द्वादशं तु गजाननम्।।

द्वादशैतानि नामानि त्रिसंध्यम्ः यः पठेन्नरः।
न च विघ्नभयं तस्य सर्वसिद्धिकरं परम्।।

वक्रतुण्ड से लेकर गजानन तक के बारह नामों का जो तीन संध्याओं के समय पाठ करते हैं, उन्हें विघ्न का भय नहीं होता और सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

बैसे तो श्रीगणेश देव स्मरण मात्र से ही प्रसन्न हो जाया करते हैं लेकिन किसी अभीष्ट की सिद्धि के लिये निम्न मंत्र के जाप का भी विधान है – ॐ गं गणपतये नमः[1] इस छोटे से मन्त्र की प्रतिदिन सुविधानुसार 11,31,55 और 108 माला का जप करने से सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं और श्रीगणेश की कृपा भी प्राप्त होती है।

बुन्देलखण्ड सहित सम्पूर्ण भारत में श्रीगणेश की प्रार्थना में जो आरती सर्वाधिक प्रसिद्ध है वह इस प्रकार है :–

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।
माता जाकी पार्वती, पिता महादेवा।
पान चढ़े फूल चढ़े और चढ़े मेवा।
लड्डुअन को भोग लगे, सन्त करें सेवा।। जय।।

एक दन्त, दयावन्त, चार भुजा धारी
मस्तक सिन्दूर सोये, मूषे की सवारी।। जय।।

अन्धन को आँख देत, कोढ़िन को काया।
बाँझन को पुत्र देत, निर्धन को माया।। जय।।

---

1. इस मन्त्र की जप विधि प0 अवधेशनारायणजी मिश्र ने कल्याण के गणेश अंक में संक्षिप्त रूप से इस प्रकार बताई है कि प्रातःकाल स्नान के बाद श्रीगणेश प्रतिमा या चित्रपट के सामने आसन पर उत्तराभिमुख होकर बैठे। चन्दन, धूप, पुश्प, दीप नैवेद्य से पूजन कर संकल्प लें। जप की पूर्ण अवधि तक शुद्ध घी का दीपक जिसके नीचे अक्षत हों, प्रज्वलित रहें। कल्याण, गणेश अंक पृ0 507

सूरदास शरण आये, सफल कीजे सेवा।।
जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा।

जनपद–जालौन में श्रीगणेश सम्बन्धित अनेक लोकगीत श्री प्रचलित है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण गीत इस प्रकार है।

1. महाराज गजानन आये, बस देवन ने फूल बरसाये।
देवा कौन तुम्हारी माता है, और कोना के लाल कहलायें।। महाराज।।
देवा पार्वती मेरी माता है, और शिव शंकर के लाल कहायें।।। महाराज।।
देवा कौन तुम्हारी पूजा है और काहे के भोग लागाये।। महाराज।।
देवा धूप, दूब मोरी पूजा है और लडुअन के भोग लगायें।। महाराज।।

2. भाई रे सुमरौ ए गनपत
सुमरौ गनेश, दाता विधन विदारनहार हो स्वामी
बड़े–बड़े पैर गनपत राजा सोहेंगे
शक्ति माई के खम्भा बनेंगे हो स्वामी
लंबी–लंबी पीठ गनपत राजा सोहेंगे
शक्ति माई पंखा बनेंगे हो स्वामी
छोटे–छोटे नैनवा गनपत राजा सोहेंगे,
शक्ति माई दियलग जरेंगे हो स्वामी
बड़े–बड़े दांत गनपत राजा सोहेंगे
शति माई चुरियां बनेंगी हो स्वामी
बड़ी–बड़ी सूंड, गनपत राजा सोहेंगे
शति माई झूला बनेंगी हो स्वामी।

3. इसके अतिरिक्त –
लम्बे पेट वाले देव शूँड़ से उठाय लेव,
पीठ पे विठाय भव सागर उतार दे।
विघ्न को हटाय सारे कार्य को सफल कर,
जीवन में भक्ति भर भेद को मिटाय दे।
तूने देव भक्तों के बड़े–बड़े काज किये,
मूस पर सवारी कीन्हीं हाथी घोड़ा छोड़ के।

जीती प्रतियोगिता बिना ही रथ मेरे नाथ
धर्मस्थ साधों किशारे चन्द्र शेखर के[1]।

(क्रोंच रश्मि, 2004)

हे हे हेरम्ब देव हरिये हिये के क्लेश,
भाव भक्ति मन में भवानी के लाल भरिये।
प्रथम पूजित होकर देते तत्काल फल,
विघ्नहर्ता नाम है विघ्न हर लीजिये।
कवियों के कवि आप दीजिये कवित्व शक्ति
बुद्धि के साथ–साथ ऋद्धि–सिद्धि दीजिये।
मोदक को भोग लगत क्षणभर में मुदित होत।
जिन्दगी मेरी शुभ लाभ से भर दीजिये।

ऋद्धि सिद्धि दाता तुम दया के आगार हो,
गौरा के छैया शंकर जी के लाल हो।।

देवों में अग्रगण्य नाम है तुम्हारा।
ऋद्धि सिद्धि सम्पत्ति और बुद्धि के आगारा।
प्रथम पूज्य गणपति तुम भक्तों के प्रतिपाल हो।। गौरा।।

जो भी तुम्हें प्रथम पूजे निर्विघ्न काम बने।
कृपादृष्टि आपकी हो संकट क्षण में टलें।
सभी काम पूर्ण होवें तुम्ही पूर्ण काम हो।। गौरा।।

निर्विघ्न काम बने ऐसी प्रभु कृपा करो।
शुद्ध बुद्धि हरदम हो दयासिंधु दया करो।
मंगल के कर्ता सुमंगल जहाँ में हो।। गौरा।।[2] (भजन)

जनपद – जालौन में गणेशोत्सव मराठों की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में

बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक विवरण के क्रम में यह उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड के

1. शुक्ल रामसजीवन, अक्षरा 6 अप्रैल, 2006
2. श्रीमती सुशीला अग्रवाल की भजनमाला से उदधृत

स्वातन्त्रय युद्ध में मराठों का योगदान महत्वपूर्ण एवं सराहनीय रहा है[1]। ठीक इसी प्रकार सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में भी मराठों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। बुन्देलखण्ड में जनपद–जालौन क्षेत्र का गणेश महोत्सव मराठी संस्कृति और सभ्यता का ही देन है।

हिन्दू धर्म में शैव–वैष्णव जैसे कई उपासना पंथ हैं। इनमें गणपति की उपासना करने वाले को 'गाणपत्य' कहा जाता है। उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में यह उपासना अधिक प्रचलित है। महाराष्ट्र में गणपति के उपासक अधिक है। पेशवा–शासक महाराष्ट्रीय होने के कारण स्वयं गणेशजी के अंध भक्त थे, इसी कारण उनके राजत्व काल में गणेशोत्सव बड़ी धूम–धाम से मनाया जाता था। श्रीमन सवाई माधवराव के शासनकाल में तो पूना के प्रसिद्ध शनिवारावाड़ा–नामक राजमहल में प्रत्येक भाद्र पद–शुक्ल चतुर्थी को भव्य गणेशोत्सव मनाया जाता था। माधवराव ने इसी बाड़े की परिधि में एक गणेश जी का मन्दिर बनवाया था, जिसमें दाहिने सूँड की दशभुजी गणेश प्रतिमा स्थापित कराई थी[2]। सबसे पहले बाजीराव पेशवा प्रथम द्वारा महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले में पंचरसी धातु की द्वादश भुजी गणेश की प्रतिमा सतारा के गणेश मन्दिर में स्थापित करायी थी। इसी क्रम में काशी के छप्पन विनायकों में वाराणसी के बड़े गणेश और कानपुर के बिठूर के कलवारी घाट स्थित गणेश मंदिर में दशभुजी गणेश प्रतिमा स्थापित कराई थी। बिठूर की प्रतिमा बाजीराव द्वितीय ने सन् 1820 ई0 में स्थापित करवायी थी[3]। सन् 1857 ई0 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में पेशवाओं का शासन तो समाप्त हो गया था और साथ में उनकी सांस्कृति धरोहरों का भी अंग्रेजों ने जमकर विनाश किया, जिसमें गणेश मूर्तियां भी खण्डित हो गयी थी। लेकिन गणेशोत्सव की परम्परा बनी ही रही क्योंकि लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजों से अपने अपने सुराज्य और स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु इस उत्सव को सार्वजनिक राष्ट्रीय महोत्सव के रूप में प्रसारित किया[4]। वह जानते थे कि धार्मिक उत्सव होने के कारण अंग्रेज इसमें दखल नहीं दे सकेंगे। इस प्रकार मजूमदार पटवर्धन, दीक्षित आदि सरदारों के परिवारों में गणेशोत्सव धूमधाम से मनाया जाता रहा[5]।

जब हम जनपद–जालौन के इस अनोखे गणेश महोत्सव के अतीत पर प्रकाश डालते

1. त्रिपाठी, मोतीलाल 'बुन्देलखण्ड दर्शन' पृ0 52
2. 'आज' कानपुर – 25 सितम्बर 2006 'श्रद्धा' पृ0 12
3. वही, ' सन् 1819 ई0 में पुणे के अपदस्थ पेशवा को अंग्रेजो ने जब माफी में बिठूर व रमेल की जागीर प्रदान की तो पेशवा अपने 15000 साथियों के साथ बिठूर आ गये।'
4. पूना में राष्ट्रीय महोतसव के रूप में गणेशोत्सव की नींव 1893 ई0 में पड़ी और यहीं पर इस उत्सव के साठ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में सन् 1953 ई0 में गणेशोत्सव का हीरक–महोत्सव मनाया गया सन् 1952 ई0 में ही 26 जनवरी को भारत गणराज्य घोषित हुआ। और वैदिक मंत्रों में 'गणनां त्वा गणपतिंग्वं हवामहे' इस गणराज्य को दिलाने वाले ईश गणपति कहे गये हैं।' सोमण, काशीनाथ जी, कल्याण गणेश अंक पृ0 470
5. वही

हैं, तो दिखाई पड़ता है कि मराठा शासकों ने तीन शताब्दी पूर्व जालौन में गणेश उत्सव की नीव डाली थी, जो उनके यहाँ से जाने के बाद भी निरनतर चलता रहा। बीते दो दशक से यहाँ इस प्राचीन परम्परा का ह्रास हो गया है। अब मात्र औपचारिकतायें ही शेष रह गई हैं। जैसा कि विदित है कि छात्रसाल बुन्देला और मुहम्मद खां बंगरा (मुगल बादश्शाह मुहम्मद शाह के द्वारा इलाहाबाद के सूबेदार के पद पर नियुक्त) के मध्य जब पहले युद्ध में छत्रसाल को जैतपुर के किले में घेरे जाने पर अंत में अपने को आत्म समर्पण करना पड़ा, उस समय आत्म ग्लानि से भरे छत्रसाल ने तत्कालीन पूना के पेशवा बाजीराव को अपनी सहायता के लिये अनुरोध संदेश भेजा[1]। अतः महाराज छत्रसाल ने मुगलों के विरूद्ध मराठा बाजीराव पेशवा से सहयोग की प्रार्थना की और सौ दोहों का एक पत्र लिखा जिसकी दो पंक्तियां आज भी बुन्देलखण्ड में प्रख्यात हैं'[1]–

जो गति ग्राह गजेन्द्र की, सो गति भई है आज।
बाजी जात बुन्देल की, राखौ बाजी लाज।।

पेशवा को छत्रसाल का संदेश मिलते ही उसने सहायता करने का निश्चय कर लिया। बाजीराव को यह संदेश वरदान जैसा लगा क्योंकि वह स्वयं नर्मदा के उत्तर में मरठों के साम्राज्य –विसतार के लिए लालायित था। इसलिए उसने ऐसा अवसर हाथ में से न केवल निकल पाये, यह सोचकर, फिर वह एक विशाल सेना लेकर छत्रसाल मण्डल, गढकोटा, देवगढ़ होते हुए महोबा की ओर आ पहुँचा। अतः मराठों और बुन्देलों ने मिलकर मार्च 1729 ई0 में बंगश को जैतपुर के किले में घेर लिया। पराजित मुहम्मद खां बंगश इलाहाबाद वापस लौट गया।

दूसरी ओर 80 वर्षीय छत्रसाल ने पेशवा–बाजीराव को इस उपकार के बदले में उसे अपना तृतीय पुत्र मानते हुए झाँसी संभाग के साथ मस्तानी जैसी अद्वितीय सुन्दरी भी समर्पित की। बाजीराव को झाँसी का जो संभाग छत्रसाल के सम्पूर्ण राज्य के तृतीयांश रूप में प्राप्त हुआ था उसमें सागर, बाँदा, झाँसी, जालौन हमीरपुर जिले के क्षेत्र सम्मिलित थे[3]। इस प्रकार मराठा शासक बाजीराव पेशवा का शासन वर्ष 1730 ई0 में जनपद जालौन पर हो गया। तभी से मराठा शासकों ने जनपद–जालौन के क्षेत्रों कालपी, कोंच उरई, जालौन, माधौगढ़ आदि स्थानों पर अनेक गणेश मन्दिरों का निर्माण करवाया और गणेश महोत्सव की नींव डाली। कालपी रेलवे स्टेशन के पास स्थित गणेश गंज मोहल्ले के गणेश मन्दिर की गणपति प्रतिमा और कोंच गढ़ी के गणेश मंदिर की

1. वर्मा, महेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पृष्ठ –115
2. त्रिपाठी, मोतीलाल, 'बुन्देलखण्ड दर्शन, पृ0 75
3. वर्मा महेन्द्र 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पृष्ठ –110–116

प्रतिमा मराठों ने ही स्थापित करवाई थी। कालपी के मंदिर की मूर्ति की प्राण–प्रतिष्ठा बालाजी बाजीराव पेशवा (प्रथम) ने सन् 1749 ई0 में मंदिर के जीर्णोद्धार के समय कराई थी[1]। तभी से जालौन ही नहीं बल्कि पूरे बुन्देलखण्ड में गणेश पूजन का कार्यक्रम पूरे दस दिन तक धूमधाम से मनाया जाने लगा।

यह गणेशोत्सव भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी से एकादशी तक चलता है और भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को प्रतिमा विसर्जन के साथ ही सम्पन्न हो जाता है। जनपद–जालौन का प्रत्येक गांव और नगर का प्रत्येक मोहल्ला– 'गणपति बप्पा मोरया के जयघोष से गूंज उठता था। जनपद–जालौन के कोंच क्षेत्र में गणेश महोत्सव 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही बड़ी ही धूम–धाम से मनाया जाता रहा है। कीर्तन, भजन, प्रवचन व्याख्यान, रंगमंच, गायन, वादन और नृत्य आदि का महोत्सव में विशेष स्थान प्राप्त था। नगर की हर गली एवं मोहल्ला में रंगमंच सजा करता था जिसमें बाल लीलायें नाटक और कठपुतली का खेल आदि अनेक कार्यक्रम सम्पन्न होते थे। इस महोत्सव में धनाढ्य परिवारों, व्यापारियों द्वारा सम्मिलित रूप से गणेश की बड़ी–बड़ी मृत्प्रतिमायें प्रतिमायें बनावाई जाती थी जिनकी वे सप्ताह भर पूजा अर्चना करते थे। यह प्रतिमायें स्थानीय कुम्हारों द्वारा तैयार की जाती थी। ये प्रतिमायें लोकशिल्प का ही प्रतिरूप थी। इन प्रतिमाओं के समक्ष नृत्यांगनायें नृत्य किया करती थी। जैसा कि इतिहासकारों का मानना है कि मस्तानी नृत्यकला और संगीतकला में भी पूर्ण दक्ष थी। अतः उसकी कला और उसके अनिंध सौन्दर्य को जब बाजीराव ने देखा ते उसकी कलात्मक प्रतिभा और रूप लावण्य पर एक भँवरा जैसा दीवाना हो गया[2]। अतः वह मस्तानी के साथ–साथ उसके संगीत और नृत्य का भी प्रेमी बन गया सम्भवतः इस कारण उसने गणेश महोत्सव में भी संगीत और नृत्य को विशेष स्थान दिया। दशमी के छोटे गणेश तथा एकादशी को बड़े गणेश के विग्रहों को विमानों पर बैठा कर उनकी शोभा–यात्रा निकलती थी। यह विमान भी अभ्रक तथा चमकीले कागजों से नक्काशीदार सजावट के साथ, स्थानीय कलाकारों द्वारा बनाये जाते थे। इन विमानों के निर्माण में भी स्थानीय लोकशिल्प दर्शनीय हैं। ये विमान नगर के विभिन्न मार्गों से परिक्रमा करते हुये तथा भक्तजनों का टीका स्वीकार करते हुये धनुतालाब[3] पहुंचते थे। जहां मूर्तियों का विसर्जन होता है।

कोंच क्षेत्र का यह गणेशोत्सव लोकमान्य तिलक द्वारा प्रवर्तित महाराष्ट्र के गणेशोत्सव

1. दैनिक जागरण कानपुर, 30 अगस्त 2006, पृ0 –9

1729 में मराठों के आगमन पर शुरू हुआ जालौन में गणेश पूजन 'प्रातः 7.20 पर प्रसारित प्रादेशिक समाचार आकाशवाणी लखनऊ

2. वर्मा महेन्द्र 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पृ0 211

3. इसी गणेशोत्सव के मध्य मिती भाद्रपद सुदी एकादशी और द्वादशी को धनुताल पर विहार लीला हेतु रामलला, नृसिंह और कल्याण राय के विग्रह उतारे जाते हैं। देखिए कोंच के मंदिर सरोवर एवं स्मारक पृ0 104–105

जैसा ही था, पर उनके द्वारा प्रवर्तित राष्ट्रीय चेतना का पर्व गणेश उत्सव आज भी देश–विदेश में दुगुने उत्साह और ठाट–बाट से मनाया जाता रहा है। परन्तु जनपद–जालौन का गणेशोत्सव जो मराठों की संस्कृति और सभ्यता का प्रतीक था, बीते दो दशक से काफी कम हो गया है। मुजरा संस्कृति से पनप रही अपसंस्कृति के विरूद्ध सघन अभियान से नर्तकियों का स्थान सांस्कृतिक आयोजन लेने लगे हैं[1]। मात्र कुछ घरों और दुकानों पर गणेश की लघु मूर्तियों के स्थापना के साथ इस उत्सव का आयोजन होता है और दस दिन पश्चात् उनके विसर्जन के साथ ही समापन हो जाता है। अब पहले की तरह लोगों के हृदय में उत्साह और उमंग की लहरे नहीं दिखलाई पड़ती हैं।

श्री गणपति परिचय–उद्भव एवं विकास –

वर्तमान परिदृश्य में सर्वेक्षण, के दौरान श्रीगणेश देव के जितने भी विग्रह प्राप्त होते हैं, वे सभी श्रीगणेश के परवर्ती स्वरूप हैं लेकिन उनकी ये सभी विशेषतायें वैदिक काल से ही मिलने लगती हैं। अन्तर इतना है कि विकास सिद्धात के अनुसार धीरे–धीरे ये कुछ नवीन रूप धारण करती जाती हैं। श्रीगणेश का पर्यायवाची 'गणपति' शब्द अत्यन्त प्राचीन है और सर्वप्रथम इसका उल्लेख ऋग्वेद के एक मन्त्र में हुआ है, जो अनेक सूक्तों में ब्रह्मणस्पति नाम से सम्बोधित है आगे चलकर इन्हीं देव को पुराणों में 'गणेश'कहा गया। पुराणों में श्रीगणेश के जितने भी विशिष्ट रूप उपलब्ध होते हैं उनका आभास वैदिक ऋचाओं में स्पष्ट रूप से मिलता है। ऋग्वेदसंहिता में उनके लिये 'महाहस्ती' कृष्णयजुर्वेद मैत्रायणी संहिता में 'हस्तिमुख' 'दन्ती' और अथर्ववेद शौनक संहिता में 'एकदन्त' वक्रतुण्ड आदि शब्द आये हैं। अथर्वशीर्ष उपनिषद् में श्रीगणेश को ब्रह्म तत्व बतलाया गया है जो योगसाधना एवं शब्द ब्रह्म रूप ओंकार रूप में व्यक्त हुआ हैं सूत्र काल और स्मृति काल तक आते–आते ये 'विनायक' नाम से पूजे जाने लगे।

गणेश नाम की व्याख्या

गणपति शब्द का अर्थ है गणों का पति और इसी अर्थ में गणों के ईश होने से इन्हं गणेश भी कहते हैं। गण शब्द का वास्तविक अर्थ जानना अति आवश्यक है। गण का अर्थ है वर्ग, समूह या समुदाय। समूहों का पालन करने वाले पति को 'गणपति' कहते हैं। देवादिकों के पति को भी 'गणपति' कहते हैं। आठवासु, ग्यारह रूद्र और बारह आदित्यगण देवता कहे गये हैं। ये गण या समूह रूद्र–शिव के अनुचर भी कहे गये हैं जैसा कि रामायण में वर्णित है –

1. गुप्त अयोध्या प्रसाद 'बुन्देलखण्ड का लोकजीवन' पृ0 60

धनाध्यक्षसमो देवः प्राप्तों हि वृषभध्वजः।
उमासहायो देवेशो गणैश्च बहुभिर्युतः।।

शिवपुराण में शिव के इन गणों के नाम गणेश्वर, शंख, कर्ण केकराक्ष, विकृत, विशाख, पारिजात, दुन्दुभ और कपाल आदि मिलते हैं[1]। इसी कारण जितेन्द्र नाथ बनर्जी कहते हैं कि महाभारत में कई स्थानों पर शिवजी को गणेश्वर कहा गया है। गोस्वामी तुलसीदास ने शिव–गणों के अनुचरों का 'रामचरितमानस' में विलक्षण स्वरूप अंकित किये हैं – 'कोउ मुख हीन, विपुल मुख काहू। इन गणों का विलक्षण–स्वरूप प्राचीन मूर्तियों मे भी प्राप्त होते हैं। सर्व प्रथम मध्यप्रदेश के गुप्तकालीन भूमरा नामक स्थान के शिवमन्दिर में शिव के विलक्षण–विलक्षण गण बनाये गये हैं। एक गण हाथी के मुखवाला भी है। गुप्तकालीन ये गण प्रतिमायें लगभग चौथी पांचवी सदी की है। इसके पूर्व आन्ध्रप्रदेश के अमरावती नामक स्थान पर भी अनेक यक्षों (गणों के समान ही उप–देवता) की प्रतिमा मिली है जिनमें से एक यक्ष भी गजमुख अंकित है। यह दूसरी सदी की है। इन गणों और यक्षों के स्वरूप की मौजूदगी से यही निष्कर्ष निकलता है कि गणेश्वर या गणेश का हाथी के समान या गजमुख होना स्वाभाविक ही है।

उपर्युक्त वर्णित देवगणों और रूद्रगणों के अतिरिक्त श्रीगणेश को अन्य गणों का भी स्वामी कहा गया है। स्वयं तुलसीदास ने बालकाण्ड के मंगलाचरण में कहा हैं।

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ।।

जो वर्णों (स्वर व्यंजन से अभिव्यक्त) अर्थ समूह, रस–समूह के कर्ता एवं मंगलकर्ता हैं। वाणी से यहाँ परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा वैखरी चारों नाद ही अभिप्रेत है, शास्त्रों में वर्णित जिसे ये चारों दृष्टिगोचर होते हैं, ऐसे विनायक की मैं वन्दना करता हूँ।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार देवगण, मानवगण तथा राक्षसगण का स्वामी गणपति है, तो छन्दशास्त्र भगण, जगण, सगण, यगण, रगण, तगण, मगण और नगण आदि आठ गणों के लिये आठ विनायक 'अष्टौ विनायकों'[2] बतलाते हैं जो गणपति ही हैं। अतः इन समस्त गणों के 'विशिष्ट

1. शिवपुराण, रूद्रसंहिता, तृतीय खण्ड अध्याय –29

1. काशीखण्ड के अनुसार पंचक्रोशी सहित समस्त काशी सात वृत्तों (आवरण) में बँटी है जिसमें से प्रत्येक आवरण में 8 विनायकों को स्थान दिया गया है। प्रथम आवरण मणिकर्णिका घाट के आठ विनायक हैं–अर्क विनायक, दुर्ग विनायक, भीमचण्ड विनायक, देहली विनायक, उद्दण्ड विनायक, पाशपाणि विनायक, खर्वविनायक तथा सिद्धि विनायक। अन्तिम आवरण विश्वनाथ मन्दिर के पास है जिसके अष्ट विनायक हैं – मोद, प्रमोद, समुख, दुर्मख गणनाथ, ज्ञान, द्वार तथा अविमुक्त विनायक। अन्य विनायकों के नाम व स्थान जानने के लिये देखिए ' वाराणसी आदर्श' तथा 'काशीयात्रा'

नायक' होने के कारण ही इन्हे विनायक की संज्ञा दी गई है।

विनायक रूप में

महाभारत में गणेश्वरों और विनायकों उल्लेख उन देवों के मध्य हुआ है जो मानव कार्यों का निरीक्षण करते हैं और सर्व व्यापी है। अतः यह भी कहा जाता है कि समस्त विघ्नों के सर्वथा नाश कर देने की शक्ति विनायकरूपी गणेश में विशेष रूप से विद्यमान रहती है[1]। इसी कारण ब्रह्मवैवर्तपुराण में श्रीगणेश को 'विघ्न–नायक' शब्द के अर्थ में– विपत्तियों और विघ्नबाधाओं का संहारक कहा गया है। 'मत्स्यपुराण' में विनायक' के लिये एक नवीन तथ्य यह सम्मुख आता है – कि वे बिना वीर्य के हैं अर्थात उनकी उत्पत्ति बिना नायक के हुई है, इसी कारण वे विनायक कहलाए शिवपुराण में भी विनायक –नामकरण की इसी प्रकार की व्याख्या दी गई है जिसमें शिव कहते हैं –

नायकेन बिना देवि मया भूयोऽपि पुत्रकः।
यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः।।

विनायक पूजा परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। विनायक पूजा के वृतानत सूत्रों और स्मृति काल से मिलने लगते हैं। मानव–गृह्यसूत्र में शालकटंकट, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन नामक चार विनायकों का उल्लेख है जो अनेकों विघ्नकर्ता रूप में वर्णित हैं स्मृतिकाल तक आते–आते सूत्रों के विविध विनायकों का स्थान एक विनायक ने ले लिया जिनके चार के स्थान पर छः नाम मिलने लगते हैं – मित, सम्मित, शाल कटंकट, कूष्माण्ड और राजपुत्र। इसके साथ ही यह वर्णन भी मिलता है कि रूद्र और ब्रह्मदेव ने विनायक को गणों का नायक नियुक्त कर मानव कार्यों में विघ्न करने का कार्य सौंपा। विनायक सम्भवतः हानिकारक होने पर भी उपासना से हितकर माने गये हैं।

गाणपत्य सम्प्रदाय में

इसी कारण श्रीगणेश का इतना महत्व बढ़ा कि उनकी पंचदेवों में गणना होने लगी। विष्णु, शिव, सूर्य, देवी और गणेश ये पंचदेव हैं। तभी से गणपति उपासकों का एक पृथक सम्प्रदाय चला आ रहा है जो 'गाणपत्य सम्प्रदाय' के नाम से पुकारा जाता हैं इसकी पुष्टि भण्डारकर के इस कथन से होती है कि गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रचलन पांचवी से आठवीं सदियों के बीच हुआ था। याज्ञवल्क्यस्मृति की रचना षष्ठ शताब्दी से पहले नहीं हुई थी[2]। उनका यह कथन इस तथ्य पर

---

1. महाभारत, अनुशासन पर्व, 150/25–29
2. अवस्थी, रामाश्रय, 'खजुराहो की देव–प्रतिमाएं' पृ0 –32

आधारित हे कि गुप्त–युग में पंचदेवोपसना का विस्तार तो होने लगा था, लेकिन गुप्तयुगीन गणपति प्रतिमायें बहुत कम मिली हैं। सर्वप्रथम एलोरा के चित्रों में काल, काली तथा सप्तमातृकाओं के साथ गणपति का चित्र मिलता है जो आठवीं शताब्दी का माना जाता है। विक्रम संवत् 918 (862ई0) का घटियाला (जोधपुर, राजस्थान) स्तम्भ लेख से गणपति–पूजा प्रचार का प्रमाण उपलब्ध होता है जो कि 'ओम विनायकाय नमः' से प्रारम्भ होता हैं इसी स्तम्भ के ऊपर श्रीगणेश की चार मूर्तियां चार दिशाओं में मुंह किये हुये बनी हैं।

शंकराचार्य के समय तक गणापत्य सम्प्रदाय में छः भेद हो गये थे। (जिसके लगभग 1200,1300 वर्ष व्यतीत हो गये हैं। आनन्द गिरि (अनन्तानन्द गिरी) ने अपने 'शंकर दिग्विजय' में ये छः भेद इस प्रकार बताये हैं महा, हरिद्रा, उच्छिष्ट, हेरम्ब, स्वर्ण और संतान गणपति। शंकर दिग्विजय से यह भी पता चलता है कि शंकराचार्य का इस सम्प्रदाय के अनुयायियों से शास्त्रार्थ भी हुआ था। फलस्वरूप शंकराचार्य के अद्वैत मत के प्रसार से इस सम्प्रदाय की मान्यतायें प्रभावित होने लगी और गणपति उपासना का विस्तार कुछ रूक सा गया, लेकिन पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ। अतः पूर्ववंङ्ग के रामपाल के ध्वंसावशेष में प्राप्त एक हेरम्ब–गणपति की प्रस्तरमूर्ति और श्रीमत्कृष्णानन्द आगम–वागीश (16 वीं शदी) के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तन्त्रसार' में गाणपत्य उपासना विधि और 'गणेश स्तोत्र' के संकलन से उपर्युक्त बात प्रमाणित होती है[1]।

पुराणों में श्री गणेश के स्वरूप का विकास

श्रीगणेश देव को गजानन, गजवदन, एकदन्त, लम्बोदर, मूषकप्रिय, मूषकवाहन, विनायक और वक्रतुण्ड आदि जितने भी नामों से अभिहित किया जाता है, शिवपुराण, स्कन्दपुराण, मत्स्य, वराह और ब्रह्मवैवर्त आदि में इनके उद्‌भव की कथा के विस्तृत व विविध विवरण प्राप्त होते हैं।

इन जन्मकथाओं में शिव, मत्स्य और स्कन्दपुराण की कथा अधिक विख्यात है, जिसके अनुसार एक बार पार्वती जी को स्नान की इच्छा हुई। तब उन्होंने सतत् आज्ञाकारक सेवक की कल्पना कर अपने शरीर के मैल से एक पुतला का निर्माण किया। महाशक्ति देवी ने उसे अपना पुत्र मानते हुये '...मत्पुत्र स्त्वं....'[2] उसे आज्ञा दी कि ' तुम मेरे द्वारपाल हो जाओं। और मेरी आज्ञा के बगैर किसी को भी अन्तःपुर में ना आने देना। अस्तु उस बालक ने अन्तःपुर में प्रवेश के लिये आने वाले शंकरजी को ही रोक दिया। शिव ने क्रोधित होकर अपने गणों को उस पार्वतीनन्दन से युद्ध करने के लिये भेजा। इस संघर्ष में शिव के सभी गण ही नहीं बल्कि विष्णु,

---

1. कल्याण, गणेश अंक, पृ0 460
2. शिवपुराण, रूद्रसंहिता, कुमारिकाखण्ड, 13/23

ब्रह्मा आदि देव भी उस बालक के प्रहार से न बच सके। तब स्वयं शंकर जी ने अपने त्रिशूल से उस बालक का सिर काट दिया पार्वती अपने पुत्र को इस रूप में देख अत्यन्त विकराल रूप धारण कर लेती हैं। माँ पार्वती को शान्त करने के लिये शिव ने देवताओं को आदेश दिया कि उत्तर दिशा की ओर जो पहला जीव मिले, उसका सिर पार्वतीनन्दन के सिर से जोड़ दिया जाय। देवतागण, तत्काल उत्तर की ओर गये और उनहोंने सबसे पहले एक दांत वाला गज मिला, जिसका सिर काटकर उन्होंने श्रीगणेश के धड़ से जोड़ दिया और वह पुनः जीवित हो उठे। इस प्रकार श्रीगणेश गजवदन, गजानन और एकदन्त हुए। इस पुराणाख्यान में हमें हमारे देश की प्राचीन शल्यक्रिया (सर्जरी) का निदर्शन प्राप्त होता हैं।

उपरोक्त पुराणों में श्रीगणेश–जन्म और उनके गज–रूप की कथा तो एक ही है लेकिन शिव और स्कन्दपुराण में श्रीगणेश अकेले शिवा के पुत्र बताये गये हैं, तो मत्स्यपुराण ने उन्हें शिवा और गंगा दोंनों का पुत्र माना है। इसी प्रकार अन्य पुराणों में कहीं वे अकेले शिव के पुत्र बताये गये, तो कहीं उनका तादात्म्य विष्णु के साथ दर्शाया गया। इन पुराणों में अनेक गज मुख और एकदन्त की कथा भी भिन्न बतलाई गई है।

लिंगपुराण और वाराह पुराण के अनुसार –एक बार दानवों से पीड़ित देवों ने भगवान शिव से अनुरोध किया कि आप किसी ऐसी शक्ति का प्रादुर्भाव करें, जो कि सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण किया करें। देवों की इस प्रार्थना के अनुसार भगवान शिव ने पार्वती के सम्मुख गणेश के रूप में जन्म ग्रहण किया। वाराहपुराण में ही उनके गजमुख रूप का बड़ा सुन्दर बर्णन मिलता है कि श्रीगणेश अत्यन्त मनमोहक थे। अतः भगवती उमा उस रूप को अपलक देखती रही। नेत्रों को मोहित करने वाले सुन्दर गणेश को देखकर रूद्र ने शाप दे दिया–'कुमार। तुम्हारा मुख हाथी के मुख के समान होगा, उदर लंबा होगा और तुम सर्प की यज्ञोपवीत धारण करोगे[1]।

पुराणों में ही एक आख्यान यह भी मिलता है कि जब एक बार श्रीगणेश भरपेट मोदकों का भक्षण करके अपने वाहन मूषक द्वारा कैलाश पर्वत को जा रहे थे तो एक सर्प ने उनका विरोध किया तथा उनसे युद्ध करके उन्हें लुढका दिया जिससे उनका उदर फट गया तथा मोदक निकल पड़े, जिन्हें बाद में श्रीगणेश ने पुनः उदरस्थ किया तथा सर्प को मार कर उसे अपने उदर पर बांध लिया। इस कृत्य को देखकर चन्द्रमा मुस्कराया जिससे क्रोधित होकर श्रीगणेश ने अपना एक दांत तोड़ कर चद्रमा पर फेंका। इस प्रकार वे एकदन्त और सर्पयज्ञोपवीत धारी बने।

1. वाराह पुराण, अध्याय –23

श्रीगणेश के लम्बोदर होने का प्रमाण ब्रह्मपुराण में इस प्रकार मिलता हे शिव में गणेश का नाम ' लम्बोदर' रख दिया था। यद्यपि गणेशजी पूर्ण तृप्त थे तथापि अधिक देर तक माता के स्तनों का दूध इसलिये पीते रहे कि कहीं भैया कार्तिकेय भी आकर न पीने लगें। इनकी बुद्धि में बालस्वभाव के कारण भाइ के प्रति ईर्ष्या भर गयी थी। यह देखकर भगवान शंकर ने विनोद में कहा 'विघ्नराज'' तुम बहुत दूध पीते हो। इसलिये लम्बोदर हो जाओ।' ऐसा कहकर उन्होंने श्रीगणेशजी का नाम लम्बोदर रख दिया[1]।

श्रीगणेश के एकदन्त होने की कथा ब्रह्माण्डपुराण और ब्रह्मवैवर्तपुराण में दी गयी है। एकदन्त के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि एक बार गणेशजी से गजासुर दैत्य का युद्ध हुआ इसमें उनका दाहिना दाँत टूट गया। उनहोंने उस दांत से गजासुर पर प्रहार किया और वह मूषक बनकर भागने लगा। गणेश जी ने उस को पकड़कर अपना वाहन बना लिया। ब्रह्मवैर्क्तपुराण और ब्रह्माण्ड पुराण में उनके एकदन्त की कथा परशुराम के सम्बन्ध में विख्यात है। एक बार जमदाग्नि और रेणुकानन्दन पुत्र परशुराम शिव के परशु से क्षत्रियों का संहार कर शिवजी के दर्शनार्थ कैलाश गए। कैलाश की सुन्दरता निहारते हुये जब वह शिव कक्ष के द्वार पर पहुंचे तो श्रीगणेश ने उन्हें द्वार पर ही रोकते हुये कहा– कि इस समय शिव–पार्वती विश्राम कर रहे हैं इसलिये थोड़ी देर रूकें उनकी आज्ञा पाते ही हम आपको अन्दर ले जायेंगें लेकिन परशुराम ने उनकी एक न सुनी और अन्दर प्रवेश करने लगे। इससे गणेश और परशुराम में झगड़ा हो गया और परशुराम ने अपने तेजस्वी परशु से गणेश के बायें दांत को तोड़ दियां इस प्रकार वह 'एकदन्त' हो गये। श्रीगणेश के एकदन्त स्वरूप प्राप्ति में ब्रह्मवैवर्त की कथा अधिक विश्वसनीय मानी जाती है। 'एकदन्त' के सम्बन्ध में 'भावनोपनिषद' में यह तथ्य देखने को मिलता हे, कि सुमति और कुमति नामक दो शक्तियां उनके दो दंत हैं। उनमें से सुमति नामक दंत उन्होंने सुरक्षित रखा छोड़ा और कुमति नामक दंत उखाड़ कर फेंक दिया और वे इसीलिए एकदंती हो गए।

अतः मुग्दल पुराण में गणेश के एकदन्त रूप का तात्विक निरूपणा दिया गया है जिसके अनुसार उनके एकदन्त नाम में 'एक' शब्द 'माया' का बोधक और 'दन्त' शब्द 'मायिक' का बोधक है। अतः श्रीगणेश में माया और मायिक का योग होने से वे 'एकदन्त' कहलाते हैं[2]। ब्रह्मवैवर्तपुराण में एक स्थान पर स्वयं श्रीविष्णु उनके एकदन्त शब्द की व्याख्या करते हुये कहते हैं जिनका 'एक' प्रधानार्थक और 'दन्त' बलवाचक है अर्थात् जिनका बल सबसे अधिक है उन

1. 'पपौ स्तनं......लम्बोदरं नाम चकार शम्भुः। ब्रह्मपुराण – 114/11
2. एकशब्दात्मिका माया तस्याः सर्वसमुभ्दवम्।
दन्तः सत्ताधरस्तत्र मायाचालक उच्यते।। मुग्दलपुराण

'एकदन्त' को मैं प्रणाम करता हूं।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में श्रीगणेश के आविर्भाव और उनके गजानन रूप प्राप्ति की कथा भी अत्यन्त रोचक ढंग से वर्णित है। इसमें वे श्रीविष्णु के अवतार बताये गये हैं। कथानक इस प्रकार है एक बार पार्वती ने दीर्घकाल से संतानाभाव के कारण शिवजी से एक पुत्र प्राप्ति की याचना की। इस पर शिवजी ने सम्पूर्ण व्रतों में श्रेष्ठ एक वर्ष की अवधि वाले 'पुण्यक' नामक व्रत के पालन का परामर्श दिया। पार्वती जी ने पति की आज्ञानुसार ' सविधि' पुण्यक' व्रत को आरम्भ किया। माता पार्वती के 'पुण्यक' व्रत के फलस्वरूप एक दिन भगवान श्रीकृष्ण वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर पार्वती के समीप गये और बोले – 'हे देवि' गणेश रूप जो कृष्ण हैं, वे कल्प में तुम्हारे गोद में आयेंगे[1]। यह कहकर वह ब्राह्मण अन्तर्ध्यान हो गया। तब शीघ्र ही एक सुन्दर सुकुमार और मनोहारी बालक माँ पार्वती की शैया पर प्रकट हो गया। यहीं पर श्रीगणेश के गजानन होने की कथा इस प्रकार मिलती है कि उस सुन्दर बालक को देखने ऋषि–मुनि, देव–देवताओं के साथ ही शनिदेव भी आये। लेकिन शनिदेव अपनी पत्नी के शाप के कारण पार्वतीनन्दन की ओर न देखकर नीचे मुख किये हुये खड़े रहे क्योंकि उनकी पत्नी ने रुष्ट होकर उन्हें शाप दे दिया था कि तुम जिसकी ओर देखोगे, उसका सिर धड़ से अलग हो जायेगा। शनेश्वर के बार–बार मना करने पर भी माँ पार्वती शनेश्वर से अपने पुत्र की ओर देखने का अनुग्रह करती रहीं, तो शनेश्वर ने जैसे ही पार्वतीनन्दन की ओर देखा, तो उनका सिर धड़ से अलग हो गया। चारों तरफ हाहाकार मच गया। तब भगवान विष्णु उत्तर दिशा की ओर जाकर पुष्प भद्रा नदी के अरण्य से एक हाथी का सिर काटकर पार्वतीनन्दन के धड़ से जोड़ देते हैं। इस प्रकार पार्वती को पुनः अपना पुत्र प्राप्त हुआ और श्रीगणेश गजानन हो गए।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में एक कथा यह भी मिलती है कि सूर्यके पिता कश्यप द्वारा शिव को दिये जाने वाले श्राप के कारण गणेश का सिर विच्छेदन हुआ था। श्राप यह था कि जिस प्रकार तुमने (शिव ने) अपने भक्त माली और सुमाली के लिये सूर्य के वक्ष पर प्रहार करके उसे छिन्न किया है, उसी भांति तुम्हारे पुत्र का भी सिर विच्छन्न होगा।

दर्शनिक–गणपति स्वरूप का विकास

गणपति तत्व की शास्त्रीय आलोचना करने पर हम उसकी दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत कर सकते हैं कि गणेश का आविर्भाव ओंकार से हुआ हे क्योंकि यदि गणेश मूर्ति पर दृष्टिपात

---

1. कल्पे–कल्पे ध्यायसे यं ज्योतीरूपं सनातनम्।....
   ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, गणपति खण्ड–9/12,13

किया जाए तो वह साक्षात ' ॐ' सी प्रतीत होगी। वर्तमान मनीषीगण अधिकांशतः ओंकार को गणेश का ही एक प्रतीक मानते हैं। ज्ञानेश्वर महाराज ने श्रीगणेश के रूप में मांगलिक ध्यान में अपने सम्पूर्ण साहित्य को उनकी मनोहर मूर्ति स्वीकार करते हुये कहा–

हे शब्दब्रह्म–अशेष। ते चि मूर्ति सुवेष[1]।'

महाराज ने शब्दब्रह्म –साहित्यस्वरूप–श्रीगणेश के ओंकार रूप का विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उनके दोनों चरणों को 'अकार' बताया है, उनका विशाल उदर 'उकार' है तथा उनके मस्तक का 'महामण्डल' 'मकार' है। ये तीनों के योग से ऊँकार सिद्ध होता है जिसमें समस्त साहित्य–संसार समाविष्ट है[2]। गणेश पुराण में भी कहा गया है जिससे ओंकार उत्पन्न होता है–वह गणेश है और इसी से वेद और जगत् भी आविभूर्त हुए हैं।

ज्ञानेश्वर के उपर्युक्त विश्लेषण से यह बात प्रमाणित होती है कि ओंकार (गणेश) ही सृष्टि का आदि कारण है क्योंकि ओंकार शब्द या नादमय है और ब्रह्म से सर्वप्रथम आकाश उत्पन्न हुआ[3]। हिन्दु तत्वज्ञान के अनुसार–आकाश का विशुद्ध स्वरूप शब्द या नाद है। आकाश से ही समस्त व्यक्त सृष्टि का आविर्भाव हुआ है। वैखासन आगम में गणेशोत्पत्ति की दार्शनिक व्याख्या इस प्रकार की गई है कि ''आकाश तत्व से ही रूप, अग्नि, रस, जल, स्पर्श, वायु गन्ध और पृथ्वी आदि सभी मूलभूत तत्व उत्पन्न होते हैं। यह आकाश–तत्व ही गणेश तत्व है जिसकी पुष्टि वैखानसागम में ही दूसरे स्थान पर आकाश को 'गणाधिपति' कहे जाने से हो जाती है।

तात्पर्य यह है कि ओंकार ही विश्व का मूल कारण है, और विश्व के अर्न्तगत जो–जो जितने पदार्थ हैं, वे वस्तुतः ध्वनि–लहरी की सृष्टि है। यही ओंम (इसी को प्रणव भी कहते है) सभी वेदों के आदि में आविर्भूत माना जाता है। इसी कारण यह सृष्टि निर्माण क्रम भी शास्त्रानुसार ही वर्णित है। शास्त्रों में ही लिखा है कि शिव–पार्वती दोनों चित्रलिखित प्राप्त (ॐ) पर ध्यान से अपनी दृष्टि लगाकर देख रहे थे। अकस्मात् ऊँकार की भित्ति को तोड़कर साक्षात् गजानन प्रकट हो गये। इसे देख शिव–पार्वती अत्यन्त प्रसन्न हुये। इस पौराणिक कथा की सूचना इस मंत्र में दी गई है –

---

1. ज्ञानेश्वरी 'श्रीमभ्दगवग्दीता की ओका' 1/3
2. '' अकार चरण युगुल। उकार उदर विशाल।
   मकार महामण्डल। मस्तकाकारें।
   हे तिन्ही एक वटले। ते थें–शब्दब्रह्म कवललें।।
   ज्ञानेश्वरी (1/19–20)
3. गणपत्यथर्वशीर्ष 'खं ब्रह्म' कहकर आकाश की ब्रह्मरूपता सिद्ध करता है।

'प्रत इन्द्र पूर्व्याणि प्रनूनं वीर्यावोचं प्रथमा कृतामि।
सतीतमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनाम कृणोर्ब्रह्मणे गाम्।[1]''

'उपनिषदों' में भी कहा गया है कि ' ओंकार का ही व्यक्त स्वरूप गणपति देवता हैं। अतः शंकराचार्य ने भी गणपति तत्व का निरूपण शिव और परब्रह्म में करते हुये उन्हें प्रणव का ही प्रतीत बताया–

'ओंकारातीतस्य परमशिवस्य गणपति रूपत्वेन तदंशास्सर्वा देवता इति युक्तमुक्तम्'[2]।

इस प्रकार शंकराचार्य इस परम सत्य की स्थापना करते हैं कि गणेश, विष्णु, शिव, अम्बिका, आदित्य और कुमार केवल उसी परब्रह्म के भिन्न रूप हैं। पुराणों में भी इसी बात को सिद्ध किया गया है और यी विचारधारा गणेशोत्तरतापिनी उपनिषद् में भी देखने को मिलती है।

'स विष्णुः स शिवः स ब्रह्मा सेद्रः सेन्दुः स सूर्यः स वायुः सोऽग्निः स ब्रह्म..ऊँ ब्रह्म गणेशः[3]।

आध्यात्मिक–गणपति स्वरूप का विकास

आध्यात्मिक व्याख्या में श्रीगणेश का विकास योगमार्ग में बतलाया गया है तान्त्रिक विद्वानों की दृष्टि में मूलाधार' में अवस्थित शक्ति का नाम 'गणेश' है। शंकराचार्य के अनुसार– 'प्रत्येक उपासक के शरीर के भीतर चार दलोंवाले मूलाधार में छः दलोवाले स्वाधिष्ठान में, दशदलीय मणिपूरक में, द्वादश दलीय अनाहत में, षोडश–दलीय विशुद्धिचक्र में, द्विदलयुक्त आज्ञाचक्र में तथा सहस्त्रदल समन्वित सहस्त्रार में गणपति ब्रह्म, विष्णु, रूद्र, जीवात्मा गुरू और परमात्मा का निवास बताया गया है। इस प्रकार योग मार्ग में निर्दिष्ट भक्तियोग मं भूतशुद्धि के लिये प्रारम्भ सर्वप्रथम मूलाधार में स्थित गणपति से ही किया जाता है इसी कारण इस सम्पूर्ण षट्चक्र के आधार गणपति कहे गये हैं[4]। यही बात श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष में भी कही गयी है –

त्वं मूलाधार स्थितोऽसि नित्यम्।'

उपर्युक्त दार्शनिक और आध्यात्मिक व्याख्या में श्रीगणेश की अग्रपूजा का रहस्य परिलक्षित होता है अतः जिस प्रकार ओंकार मांगलिक माना गया है[5]। उसी प्रकार श्रीगणेश भी

1. ऋग्वेद 10/12/8
2. आनन्दगिरी, शंकराचार्य, मद्रास–विश्वविद्यालय, फिलासफी सिरीज, पृ0 88
3. गणेशोत्तरत्तापिनी उपनिषद् – 221
4. 'किं च मूलाधारस्वाधिष्ठान.....अतो गणपतेर्मूलाधारगतसव सर्वाधात्वं वर्तते।' आनन्दगिरि, शंकराचार्य, मद्रास–विश्वविद्यालय, फिलासफी सिरीज, पृ0 84
5. प्रणवश्छन्दसामिव, रघुवंश

मांगलिक देवता हैं प्रत्येक मन्त्र के प्रारम्भ में ओंकार का उच्चारण और प्रत्येक शुभअवसर पर श्रीगणेश की पूजा शास्त्रों में वर्णित है इसे किसी गणेशभक्त ने प्रारम्भ नहीं की। ठीक इसी तरह आध्यात्मिक व्याख्या में सर्वप्रथम मूलाधार चक्र में श्रीगणेश के दर्शन के उपरान्त ही विभिन्न चक्रों पर विभिन्न देवता के दर्शन किये जाते हैं। श्रीगणेश के प्रथम पूज्य होने का कारण पौराणिक आख्यान में इस प्रकार प्राप्त होता है कि एक बार सभी देवगण शिवजी के पास इस निर्णय के लिये गये कि इन सभी में श्रेष्ठ कौन है। इस पर शिव ने कहा कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की जो सबसे पहले परिक्रमा कर लौटेगा, वही सर्व श्रेष्ठ होगा। इस पर सभी देवगण अपने–अपने वाहनों से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिक्रमा के लिये निकल पड़ें लेकिन श्रीगणेश ने अपने वाहन चूहे पर बैठकर शिव और पार्वती की सात बार प्रदक्षिणा की और यह प्रमाण दिया कि– यह बात वेदों में ही निहित है। कि जो पुत्र अपने माता–पिता की पूजा कर उनकी प्रदक्षिणा करता है, उसे ब्रह्माण्ड परिक्रमाजनित ही फल प्राप्त होता है। गणेशजी की बुद्धि से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें सभी देवों में प्रथम पूज्य घोषित किया।

उपर्युक्त पौराणिक आख्यान शिवपुराण में श्रीगणेश के विवाह के सम्बध में प्राप्त होता है। इसके अनुसार यह प्रतियोगिता कार्तिकेय और गणेश के बीच हुई थी जिसमें श्रीगणेश ने अपने विवाहित होने की योग्यता प्रमाणित की थी। फलस्वरूप शिवजी ने उनका विवाह प्रजापति की दो सुन्दर कन्याओं सिद्धि और बुद्धि से करा दिया। बुद्धि ओर सिद्धि से क्रमशः क्षेम और लाभ दो पुत्र हुए[1]। अतः श्रीगणेश की पूजा के साथ उनके परिवार की पूजा करने से सिद्धि–बुद्धि और क्षेम और लाभ सहज ही प्राप्त हो जाता है। मुग्दल पुराण में स्वयं शिवजी द्वारा सिद्धि–बुद्धि सहित श्रीगणेश की स्तुति की गई है –

सिद्धि बुद्धिपतिं वन्दे ब्रह्मणस्पतिसंज्ञितम्।
मांगल्येश सर्वपूज्यं विघ्नानां नायकं परम्।।[2]

गणेश पुराणानुसार – गृत्समद मुनि के तप से प्रसन्न होकर सिंहासनारूढ़ सिद्धि–बुद्धि सहित गणेश ने उन्हें दर्शन दिये थे[3]।

सिद्धि बुद्धि के पति श्रीगणेश बुद्धि के देवता माने जाते हैं। उपर्युक्त उपाख्यान में गणेशजी की प्रतियोगिता–विजय इसी सत्य को उदघोषित करती है कि जीत हमेशा शक्तिशाली

1. शिवपुराण, रूद्रसंहिता, कुमारिकाखण्ड –19
2. मुग्दलपुराण, अष्टम खण्ड, गणेशहृदयस्तोत्र –17
3. सिद्धिबुद्धियुतः श्रीमान् कोटिसूर्याधिकद्युतिः।
अनिर्वाच्यस्वरूपाऽपि लीलयाऽऽसीत पुरो मुनेः।। गणेशपुराण उपाः 37/13

और शक्ति सम्पन्न की नहीं बल्कि बुद्धिमान की होती है। बुद्धि के देव होने की प्रमाणिकता ऋग्वेद के उस मन्त्र से सिद्ध होती है जिसमें ब्रह्मणस्पति के लिये उनका नाम गणपति शब्द प्रयुक्त हुआ है और वैदिक देव ब्रह्मणस्पति निःसन्देह बुद्धि के देवता हैं। इसके अतिरिक्त गणपति के सम्बन्ध में यह भी कथा विख्यात है कि उन्होंने व्यास द्वारा महाभारत की रचना में लेखन का कार्य किया था। श्रीगणेश के विद्या–बुद्धि विधायक होने के कारण ही ब्रह्मा जी के परामर्श पर व्यासजी ने श्रीगणेश को यह कार्य सौंपा था[1]।

इस परवर्ती अनुश्रुति के आधार पर ही कुछ विद्वान श्रीगणेश को लिपि का ज्ञाता मानते हैं। प्रसिद्ध प्राचीन विद्वान अर्जुन बाजी वालावलकार और लिपिकार एल0एस0वाकणकर ने श्रीगणपति शब्द और स्वरूप में भारतीय लिपि का मूल रहस्य खोजा है। वाकणकर के अनुसार 'गणपति अर्थवशीर्ष के एक एक पाठ में भारतीय लेखन प्रक्रिया का वर्णन है। गणपति अथर्वशीर्ष्ज्ञ कहता है – ''सैषा गणेश विद्या' अर्थात् यही वह विद्या है जो गणपति जानते हैं। इस विद्या में गणादि (शब्द–समूह) तथा वर्णादि (लिखित स्वर–व्यंजन) को परस्पर सम्बन्धित किया गया है अर्थात् बीज अक्षर 'गं' के उदाहरण के द्वारा लेखन की विधि समझायी गयी है जो इस प्रकार है – 'पहले ध्वनिग्राम का उच्चारण कीजिए फिर अक्षरग्राम की आकृति बनाइए, जिसके अंत में अर्द्धचन्द्र सहित अनुनासिक चिन्ह बना हो।

इस आकृति का प्रथम भाग (1) 'व्यंजन' का घोतक है। मध्य भाग (2) अकार का द्योतक है और अंतिम भाग (3) अर्द्धचन्द्र सहित अनुनासिक है। इस प्रकार 'गं' लिखा जा सकता है। अब इस आकृति का एक अक्षर की भांति उच्चारण कीजिए, यही गणेश विद्या का ध्वन्यात्मक एवं लिप्यात्मक रहस्य है।

उच्चारण और आकृति की रूपरेखा पर आधारित अक्षरों का वर्गीकरण वाकणकर और वालावाकर ने माहेश्वर सूत्रों के आधार पर किया है वालावाकर ने अक्ष्ज्ञर–रचना की यह प्रक्रिया शिव के डमरू से सर्वप्रथम निकली ऊँ–आकृति से स्पष्ट की है जैसा कि पहले भी वर्णित किया जा चुका है कि ज्ञानेश्वर महाराज ने ऊँकार की रचना में श्रीगणपति – स्वरूप को परिभाषित किया है। वह ऊँकार वर्तमान देवनगरी में लिखे जाने वाले ऊँ से नहीं बल्कि वालावलकार के चार्ट में बनें वैदिक ओंकार से साम्य रखता है।

(ज्ञानेश्वर और वालावलकार के ओंकार का साम्य)

1. महाभारत, आदि पर्व 1/74/77

इस प्रकार ज्ञानेश्वरी का ऊँकार हो या वैदिक एकाक्षर ब्रह्म या प्रणव वह माहेश्वर सूत्रों के अर्द्धेन्दु सिद्धान्त के अनुसार निश्चित आकारों द्वारा क्रमशः जोड़े जाने पर एक निश्चित ध्वनियों के प्रतीक हैं। यही सिद्धान्त देवनगरी ऊँ में भी दिखलाई पड़ता है। यदि वैदिक ओंकार को नब्बे अंश से घड़ी की सूई की दिशा में धुमा दिया जाए, तो देवनगरी आकृति से अद्भुत साम्य हो जाता है –

इस दृष्टि से वैदिक ओंकार के देवनागरी ऊँ में रूपांतरण तक की यात्रा भारतीय लिपि के विकास की कहानी है।

अतः उपर्युक्त विवरण से इतना तो स्पष्ट है कि वर्णमाला का प्रत्येक अक्षर गणपति के किसी एक रूप का द्योतक है। सम्पूर्ण वर्णमाला में प्रत्येक व्यंजन खड़ी पाई या अकार से जुड़ा हुआ है केवल तीन अक्षर ग, ण, श (गणेश) ही पृथक् है। वाकणकर के मत में 'सा एषा गणेश विद्या' के सम्बन्ध में इससे अधिक प्रबल प्रमाण नहीं खोजा जा सकता। वाला वलकार का यह मत कि ओंकार से ही सम्पूर्ण वर्णमाला का उद्रभव हुआ है, गणेश और प्रणव में अभेद सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी कारण 'गणेशसहस्त्रनाम' में उनको 'अकारादिक्षकारान्त महासस्वतीमय' कहा जाता है। इस प्रकार श्रीगणेश को लिपि का ज्ञाता मानना उचित ही है। इसके साथ ही इन विद्वानों द्वारा भारतीय लेखन के सम्बन्ध में जितने भी साक्ष्य प्रस्तुत किये गये वे सभी मैक्डॉनल और व्हूलर आदि यूरोपीय विद्वानों की यह मान्यतायें कि भारतीय लिपि बाहर से अधार ली गई है को निस्सार सिद्ध करते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ पुरातात्विक प्रमाण भी उपलब्ध हुये हैं। जिनमें जोखा–सुमेर से प्राप्त ईसा पूर्व 3000–2400 की एक सील है, जो कि सिन्धु घाटी की सील के समान हैं इसी तरह छठीं शताब्दी ईसा पूर्व के सोहगौरा ताम्र अभिलेख की प्रथम पंक्ति का वह चित्र है जो वालावलकार के वैदिक ऊँकार से शतप्रतिशत मिलता जुलता है।

शास्त्रों में गणपति प्रतिमा–लक्षणों का विकास

पुराणों और गाणपत्य वाङ्मय में गणेश की उत्पत्ति के जितने भी स्वरूप वर्णित हैं उन्हीं को ध्यान में रख कर भारतीय मूर्तिकला में गणेश की प्रतिमाएं एकदन्तिन्, महाकाय वक्रतुण्ड, मोदकप्रिय और मूषकवाहन स्वरूप दिए गए हैं। उनके इन रूपों को पौराणिक आख्यानों के आधार पर ही गढा गया है। भारतीय कला की अमूल्य निधि गणपति प्रतिमायें मूर्तिशास्त्र की दृष्टि से अनेक प्रकार की है यथा बीज गणपति, बाल गणपति, तरूण गणपति, वीर विघ्नेश, शक्ति गणेश, महा गणेश, हरिद्र–गणेश, उन्मत्त विनायक, नृत्य गणपति, उच्छिष्ट गणपति हेरम्ब–गणपति आदि। इनमें से कुछ तो गाणपत्य सम्प्रदाय के अन्तर्गत आती है एवं कुछ मूर्तियां वामाचार तांत्रिक से

सम्बन्धित हैं[1]।

इनकी मूर्तियां अधिकांशतः स्थानक, आसन एवं नृत्य मुद्रा में प्राप्त होती है। नृत्य, गणपति में अधिकांशतः मूर्तियां एकाकी रूप में चतुर्भुजी, अष्टभुजी, षोडषभुजी प्राप्त होती हैं। आसन में प्राय शक्ति रिद्धि–सिद्धि अथवा विघ्नेश्वरी के साथ दिखाई देती है। इन मुद्राओं में उनके अंक–उपाङ्गों, वस्त्रों आभूषणों, अंकराग, आयुधों और परिवार पार्षदों आदि में जो भी विशेषतायें प्रदर्शित हैं वे सभी शास्त्रों में वर्णित प्रतिमा लक्षणों के आधर पर ही समस्त मूर्तियों में निर्मित हुई है। ये प्रतिमा लक्षण पूर्ववर्ती और परवर्ती दोनों ही शास्त्रों में वर्णित है –

वृहत्संहिता के प्रतिमा लक्षण वाले अध्याय के एक श्लोक में गणेश की प्राचीनतम प्रतिमा वर्णित है। उसके अनुसार प्रमथों (गणों) के अधिपति को एकदन्त गजमुख लम्बोदर तथा परशु और मूलकन्दधारी होना चाहिए[2] निःसन्देह यह प्रतिमा द्विभुजी है। अमरकोश में गणेश के विविध नामों की जो सूची दी गई है, उसमें एकदन्त, गजमुख और लम्बोदर सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं। अतः उपर्युक्त तीनों रूप सभी शास्त्रों में समान रूप से वर्णित है।

पौराणिक वृत्तान्तों में सर्वप्रथम विष्णुधर्मोत्तर पुराण का विवरण उल्लेखनीय है जिसके अनुसार श्रीगणेश गजानन चतुर्भुज और लम्बोदर हो गए। उनके दाएं हाथें में त्रिशूल[3] और अक्षमाला और बाएं में मोदक से भरा पात्र और परशु हों। उनके बाई ओर के दांत का चित्रण न हो । कान सीधे खड़े हुये हों। वे व्याघ्रचर्म का वस्त्र और नाग का यज्ञोपवीत धारण किए हो। उनका एक चरण पादपीठ पर और दूसरा आसन पर स्थित हों। अन्य ग्रन्थों की भांति इसमें उनके वाहन मूषक का उल्लेख नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उनके हाथों में पाश, गदा, शूल, ध्वजा, वाण, धनुष, दण्ड, चक्र, शंख खंड आदि लक्षण भी स्थित बतलाये गये हैं।

मत्स्यपुराण[4] के अनुसार– गणेश गजमुख लम्बोदर, सर्प यज्ञोपवीतधारी, विस्तृतकर्ण, विशालतुण्ड तथा एकन्दन्त और त्रिनेन्द्र वाले हों। इसके साथ ही वे अपनी पत्नियों ऋद्धि और सिद्धि एवं अपने वाह्न मूषक से युक्त हों। अत्यधिक भारी होने के कारण उनका मुख नीचे की ओर हो और उनके कंधे, हाथ और पैर पुष्ट हों। त्रिशूल अक्षमाला, मोदक, मोदकपात्र, परशु, स्वदंत, कमल कपित्थ, अंकुश, नाग आदि लक्षणों में से कोई से चार पदार्थों से वे सुशोभित हों। इसके

---

1. Banerjea, J.N. " The Development of Hindu Iconography p.- 358
2. 'प्रमथाधिप गजमुखः प्रलम्बजठरः कुठारधारी स्यात्। एकविषाणी विभ्रन्मूलककन्द्रं सुनील दलकन्दम्', वृहत्संहिता, 57–57–58
3. विष्णु धर्मोत्तरपुराण में त्रिशूल को पुरूष आयुध और श्याम रंग बतलाया गया है –
   'त्रिशूल पुरूषों दिव्यस्सुभ्रूश्श्यामकलेवरः।'
4. मत्स्य पुराण, 260, 52–55

अतिरिक्त व्याघ्रचर्मधारी एवं किरीट आदि आभूषणों से सुशोभित हों।

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में श्रीगणेश के रूप सौन्दर्य और आभूषणों का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार श्रीगणेश के चरणों में मंजीर, कण्ठ में मणिजटित मालाएं तथा पुष्पों क मालाएं, हार, हाथों की अंगुलियों में रत्न जटित अंगूठियां, कलाई में कंकन, केयूर और भुजबन्द और कानों में मणिकुण्डल होना चाहिए। ये सभी आभूषण उन्हें क्रमशः लक्ष्मी, सावित्री भारती, वायु, लक्ष्मी और सूर्य से प्राप्त हुये हैं[1]। इसी में यह भी वर्णित है कि वे शुद्ध चम्पक जैसे वर्ण एवं कोटि चन्द्र सदृश प्रभा वाले तथा अतीव सुन्दर, तन वाले हों और सुन्दर लोचन व पके हुए बिम्ब की भांति ओष्ठ आदि से युक्त हों[2]। इसी में श्रीगणेश के वाहन मूषक की प्राप्ति भगवती वसुंधरा से और सिहांसन की प्राप्ति उन्हें शक्र से हुई है[3]।

गणेश पुराण में उपर्युक्त वर्णित सभी आभूषणों से अलंकृत गणेश के सभी अंगों का सुन्दर वर्णन किया है – अतः इसके अनुसार'उनका मोतियों और रत्नों से उनका मुकुट जटित है, सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दन से चर्चित है उनके मस्तक पर सिन्दूर शोभित है, गणे में मोतियों की माला है, वक्षः स्थलपर सर्प–यज्ञोपवीत है, बाहुओं में बहुमूल्य रत्नजटित बाजूबंद हैं, उनकी अंगुलियों में मरकतमणिजटित अंगूठी है। उनके लम्बे से उदर की नाभि चारों ओर से सर्पो द्वारा बेष्टित है, रत्नजटित करधनी है, स्वर्णसूत्र–लसित लाल वस्त्र हैं, भाल पर चन्द्रमा हैं, दांत सुन्दर हैं और उनके हाथ शोभामय हैं[4]।

गणेश पुराण और गणपत्यथर्वशीर्ष में उनका चतुर्भुज रूप क्रमशः इस प्रकार दिया गया है – 'खड्गखेटधनुः शक्तिशोभिचारूचतुर्भुजम्[5]। अर्थात उनके चारों सुन्दर हाथों में खण्ड खेट, धनुष और शक्ति सुशोभित हैं। तथा पाशमङ्कशधारिणम्। अभयं वरदं हस्तं बिंभ्राणं.....[6] उनके चारों हाथों में पाश, अंकुश अभय और वरदमुद्रा है। गणेशपुराण में ही उन्हें छः भुजी और त्रिनेत्रों वाला भी कहा गया है[7]। गाणपत्योपनिषद् में श्रीगणेश को चतुर्भुज, एकदंती, लम्बोदर, रक्त वर्ण, सूप कर्ण, रक्त वस्त्र धारी तथा लाल रंगों के पुष्पों से विभूषित हों तथा पाश, अंकुश, वर, अभय मुद्रा से युक्त चार भुजायें हों[8]।

1. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, गणपति –खण्ड – 13/8–11
2. वही, 13/8/84–85
3. वही, 13/12–8
4. देखिए – गणेशपुराण, उपा0 – 14/21–25
5. वही 12/34
6. गणपत्यथर्वशीर्ष – उप0 –9
7. 'षड्भुजं चन्द्रसुभगं लोचनत्रयभूषितम्।
   गणेशपुराण, क्रीडाखण्ड 81/33
8. गाणपत्योपनिषद् –11–12

'अपराजितपृच्छा'[1] में गणेश प्रतिमा का जो कर्णन प्राप्त होता है वह मत्स्यपुराण के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है, किन्तु यहाँ देवता ऋद्धि और बुद्धि से युक्त नहीं बताए गए हैं। उनके चारों हाथों में से एक दाहिने हाथ में स्वदंत तथा दूसरे में परशु हों, बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में कमल तथा नीचे में मोदक हों। वह अपने वाहन मूषक पर सबार हों तथा सिन्दूर, कुंकुम के रंगों से युक्त उनका शरीर हों। इसी के साथ श्रीगणेश इसमें गजानन, त्रिनेत्र, एक दन्त और सर्प यज्ञोपवीत धारी बतलाये गये हैं।

रूपमण्डन में गणेश मन्दिर के विषय में जो विवरण मिलता है उसमें उनके पार्षदों, प्रतिहारों के साथ परिवार की स्थिति दर्शायी गयी हैं इसमें उल्लेख मिलत है कि गणेश मन्दिर में उनके बायें अंग में गजकर्ण[2] दायें अंग में सिद्धि, पूर्व में बुद्धि, उत्तर में गौरी, दक्षिण –पूर्व में बालचन्द्रमा, दक्षिण में सरस्वती, पश्चिम में कुबेर और पीछे धूम्रक स्थित होना चाहिए[3]। इसी में उन्हें गजमुख, मूषक सवार और दन्त, परशु, पद्म और मोदक धारी भी बतलाया गया है[4]। अग्निपुराण में भी गणेश के हाथों के यही लाच्छन वर्णित हैं[5]।

इसके अतिरिक्त अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, सुप्रभेदा गम, शिल्परत्न आदि में वर्णित गणपति –प्रतिमा का विवरण पौराणिक विवरण से अधिक भिन्न नहीं है।

उपर्युक्त वर्णित सभी शास्त्रों में गणपति–प्रतिमा सामान्यतः चतुर्भुजी ही बतलायी गई है जिनके अनुसार त्रिशूल, अक्षमाला, मोदक पात्र अथवा मोदक, परशु, स्वदन्त कमल, कपित्थ, अंकुश, नाग, फल आदि पदार्थों में से कोई चार पदार्थ होने चाहिए। इन शास्त्रों में अधिकांशतः उनका वाहन मूषक वर्णित है कहीं–कहीं उनके हेरम्ब रूप में उनका वाहन सिंह भी वर्णित है। कभी–कभी उनकी पत्नियों ऋद्धि और बुद्धि, सरस्वती, लक्ष्मी, बुद्धि और कुबुद्धि तथा विघ्नेश्वरी आदि नामें का भी उल्लेख है। उनका अन्य विशेषताओं में उनके तीन नेत्र, स्थानक मूर्तियों में उनका आभंग अथवा समभंग होना और उनका व्याघ्रचर्म के वस्त्र, सर्प के यज्ञोपवीत, किरीअ अथवा करण्ड–मुकुट, तथा सभी आभूषणों से अलंकृत होना शामिल है। एकदन्त, राजमुख और लम्बोदर उनकी सभी शास्त्रों में वर्णित सामान्य विशेषतायें हैं।

---

1. अपराजितपृच्छा– 212/35–37
2. 'गजकर्ण' उनके पार्षद का नाम है जो द्वारपाल का कार्य करते हैं और उनकी संख्या आठ है। आठों के नाम क्रमशः इस प्रकार है – अविघ्न और विघ्नराज, सुवक्त्र ओर बलवान, गजकर्ण, और गोकर्ण तथा सुसौम्य और शुभदायक। गणेश अंक– पृ0 188
3. रूपमण्डन – 5/19–20
4. वही – 5/15
5. अग्निपुराण –50,23–26

मूर्तिकला में विकास

मूर्तिकला की दृष्टि से गणेश पूजन का प्रचलन गुप्तकाल से पूर्व तक नहीं हुआ था। गुप्तकाल में पंच–देवोपासना का विस्तार हुआ और गणेश की गणना इन प्रमुख हिन्दू देव परिवार में गुप्तकाल से प्रारम्भ हो गई थी। लेकिन गुप्तकाल में गणेश की प्रतिमाएं बहुत कम मिली हैं। क्योंकि भण्डारकर का कहना है कि गुप्तकालीन किसी भी अभिलेख में गणपति का उल्लेख नहीं हुआ है। कार्तिकेय की पूजा उनके पहले प्रचलित हो चुकी थी। यौधेयगण, कुणिन्द तथा उज्जयिनी–जनपद ने अपनी मुद्राओं पर कार्तिकेय को महत्वपूर्ण स्थान दिया। गुप्त सम्राट कुमारगुप्त, प्रथम ने भी अपने एक विशेष प्रकार के स्वर्ण – सिक्कों पर कार्तिकेय की छवि अंकित करायी। सम्भवतः सर्वप्रथम भूमरा (जिला सतना, मध्य प्रदेश) में गणेशजी की मूर्ति मिली है, जो ईसवी सन् पांचवीं शदी की है[1]। लेकिन यज्ञ और नागों की प्रतिमायें जो ईसवी की कई शताब्दियों से पहले भी प्रचलित थी। श्रीगणेश मूर्तिका ही प्रतिरूप है। इस तरह की मूर्ति मथुरा के एक शिलापट्ट पर प्राप्त हुई है जो कि कुषाणकालीन है।

इस शिलापट्ट पर गजमुख आकृति वाले पांच गजानन यक्षों का अलंकरण है और इन्ही के ऊपर एक भित्त वेदिका बनी है जिस पर फूलों की माला लिये छः भक्तगण खड़े हुये हैं[2]। अमरावती से प्राप्त एक शिलापट्ट पर भी दर्शनीय है। यह मूर्ति गणेश की ओर संकेत तो करती है, लेकिन इसमें गणेश प्रतिमा का विकास नहीं हुआ है। पर इतना तो स्पष्ट है कि पूर्व गुप्तकाल से मूर्तिज्ञ गजमुख वाली आकृतियां बनाना जानता था, इसी कारण इस काल की कुछ गणपति मूर्तियां भी उपलब्ध हैं। ऐसी तीन मूर्तियां मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत हैं। इनमें गणेश द्विभुज, शूर्पकर्ण, लम्बोदर, एकदन्त और बाई ओर शुण्ड उठाकर, बाएं हाथ में धारण किए मोदक–पात्र से मोदक खाते हुए प्रदर्शित हैं। ऐसी दो मूर्तियों में वे नाग–यज्ञोपवीत धारण किए हैं और एक में श्रीगणेश नृत्य करते प्रदर्शित हैं। भीतरगांव के मन्दिर से उपलब्ध एक मृण्फलक में एक उड़ते हुए गण के रूप में गजानन की चतुर्भुजी आकृति प्रदर्शित हुई है, जो अपनी शुण्ड से सामने के बाएं हाथ के मोदक–पात्र को स्पर्श किए हैं और जिसका सामने का दायां हाथ तर्जनी–मुद्रा में है। अन्य दो हाथों के पदार्थ अस्पष्ट हैं। इसी समय की भूमरा की एक द्विभुजी प्रतिमा में देवता एक पीठ पर बैठे प्रदर्शित हैं। उनके दोनों हाथ भग्न होने के कारण यह कहना कठिन है कि उनमें क्या रहा होगा। यहीं से प्राप्त एक गणेश–विघ्नेश्वरी की आलिंगन मूर्ति भी दर्शनीय हैं पूर्व गुप्तकालीन गणपति की अन्य आसन मूर्ति उदयगिरि (विदिशा, म0प्र0) की चन्द्रगुप्त गुफा में देखी जा सकती है, जिसमें

---

1. कल्याण, गणेश अंक पृ0 418
2. अग्रवाल, वासुदेव शरण, 'मथुरा कला' पृ0 73–74

द्विभुज देवता ललितासन–मुद्रा में बैठे हैं। उनके बाएं हाथ में मोदक–पात्र है और इसी ओर उनकी शुण्ड मुड़ी (जो अब टूटी है) प्रदर्शित है। गुप्तकाल में गणपति प्रतिमाओं का प्रचलन बढ़ गया प्रतीत होता है। मथुरा संग्रहालय की मूर्ति रचना शैली की दृष्टि से ढेठ गुप्तकालीन हैं। इसमें द्विभुज गणेश खड़े प्रदर्शित हैं। सर्प–यज्ञोपवीत, एकदन्त, बाई ओर मुड़ी हुई शुण्ड और बाएं हाथ में मोदक–पात्र ये लक्षण पूर्ववत् हैं। इस समय की दूसरी सुन्दर मूर्ति में गणेश कमल के फूलों पर नृत्य करते प्रदर्शित हैं। उनके बाएं हाथ में पद्म है। शुण्ड मुँह के पास को मुड़ी है और उसके द्वारा मोदक–पात्र को स्पर्श करने की मुद्रा का अभाव है। गुप्तकाल के पश्चात् अर्थात् मध्यकाल में उनकी प्रतिमाएं अधिक मात्रा में बनने लगी। अतः पूर्व और उत्तर मध्ययुगीन गणपति की अनेक आसन स्थानक और नृत्य–मूर्तियां सम्पूर्ण भारत में प्राप्त हुई है, यद्यपि एक क्षेत्र की मूर्तियां दूसरे क्षेत्र की मूर्तियों से स्थानीय रचना–शैली के कारण थोड़ी – बहुत भिन्न अवश्य हैं। सर्वप्रथम इस समय की गणपति मूर्ति जोधपुर के पास घटियाला (राजस्थान) से मिली है, जोकि चतुर्मुखी है, और जिस पर विक्रम संवत् 918 (867ई0) का लेख उत्कीर्ण है। चूंकि श्रीगणेश समृद्धि के देव के रूप में पूजे जाते हैं इसी कारण इस लेख से यह ज्ञात होता है कि व्यापारियों द्वारा यह पूजनीय प्रतिमा यहां स्थापित की गयी थी।

होशंगाबाद जिले से भी नवीं शदी ई0 की एक गणेश मूर्ति प्राप्त हुई है, जो यहां के सिवनी–मालवा नामक स्थान पर गणेशजी का एक दुर्लभ मन्दिर में सुरक्षित है। सातवीं शती ईसवी से गणेशजी की बहुसंख्यक मूर्तियां बनने लगी। उनकी मूर्तियां चार आठ, दस तथा सोलह भुजाओं वाली भी मिली है। कुछ प्रतिमाओं में उनकी शक्ति भी साथ में दिखायी गयी है। पौराणिक तथा तान्त्रिक साहित्य में उनकी पत्नी की संज्ञा श्री, भारती, विघ्नेश्वरी आदि मिलती हैं। कभी–कभी उनकी दो पत्नियाँ, बुद्धि और कुबुद्धि कही गयी है। मध्य कालीन गणेश पूजा पर तांत्रिक प्रभाव भी बढ़ता गया, जो इन मूर्तियों से स्पष्ट है[1]। इतना ही नहीं, मध्ययुगीन इन भारतीय मूर्तियों की परम्परा का अनुकरण कर विदेशी शिल्पियों ने भी इस देवता की मूर्तियाँ रचीं। कम्बोडिया की पद्मासन–मुद्रा में बैठे हुए गणेश की कांस्य प्रतिमा, बाली की स्थानक मूर्ति और जावा की समभंग खड़ी तथा बैठी प्रतिमाएँ विशेष दर्शनीय हैं, जिनमें अधिकांश भारतीय परम्परा के बहुत निकट हैं। इस युग में गणपति–मूर्ति निर्माण में अधिक विकास हुआ और शास्त्रों में वर्णित गणपति–मूर्तियों के अनेक प्रकारों जैसे उन्मत्त उच्छिष्ट–गणपति, लक्ष्मी गणपति, उच्छिष्ट गणपति, महा गणपति, हेरम्ब–गणपति आदि को शिल्प में साकार किया गया।

1. कल्याण, गणेश अंक – पृ0 418

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

बुन्देलखण्ड की मूर्ति कला में गजानन गणेश

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जहां तुसलीदास की जन्मभूमि राजापुर और साधना स्थली चित्रकूट, श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यास की जन्म भूमि कालपी के कारण अपना सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व रखता है, वही आल्हा–ऊदल जैसे महावीरों की कर्मभूमि महोबा और वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई की रंगभूमि रही झाँसी के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। मूर्तिकला और शिल्पकला के क्षेत्र में भी देश–विदेश के अनेकों कलाविशेषज्ञों को बुन्देलखण्ड ने अपनी ओर खींचा है। प्राचीन कालीन सम्पदा में विशेष कर पाषणिक मूर्तिशिल्प में यह क्षेत्र बहुत धनी रहा हैं इस प्रकार के महत्वपूर्ण स्थलों में बुन्देलखण्ड के उत्तर प्रदेश के सात व मध्य प्रदेश के 22 जिलों में देवगढ़ और कालिंजर के अलावा ललितपुर के आस पास का सम्पूर्ण क्षेत्र चाँदपुर बानपुर, दुधई, महोबा, झांसी, औरछा जालौन, कोंच, छतरपुर, सीरोनखुर्द, दतिया, दमोह, टीकमगढ़, सागर, पन्ना, अम्वर, विदिशा, ओरछा, आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन स्थलों के प्राचीन मन्दिरों, खण्डहरों, घने जंगलों व खुले स्थानों पर मूर्ति कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण मूर्तियां अस्त–व्यस्त रूप से पड़ी हुई हैं, तो कुछ धार्मिक संरक्षणों या देवालयों में स्थापित कर दी गई है। इसके अतिरिक्त वर्तमान में बुन्देलखण्ड में जितने भी संग्रहालय हैं वे सभी इस क्षेत्र से प्राप्त मूर्तिशिल्प सम्पदा को अपने संरक्षण में सुरक्षित कर उनके अस्तित्व को बनाये हुये हैं। इन संग्रहलयों में उत्तर प्रदेश का राजकीय संग्रहालय झाँसी, छत्रसाल संग्रहालय बांदा, महात्मा गांधी संग्रहालय, कालपी, शाहू जैन, संग्रहालय, देवगढ़, और बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई और मध्यप्रदेश के संग्रहालयों में पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहों, छत्रसाल संग्रहालय धुबेला, सागर विश्वविद्यालय संग्रहालय, सागर आदि प्रमुख है। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य ऐसे संग्रहालय, हैं जिनमें इस क्षेत्र की मूर्तियां संग्रहीत है जिनमें राज्य संग्रहालय लखनऊ, भारत कला भवन, बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली आदि प्रमुख हैं[1]।

इसके अतिरिक्त रानी महल संग्रहालय, झांसी, देवगढ़ और कालिंजर के किले, सीरोनखुर्द के मन्दिरों में संग्रहीत कुछ महत्वपूर्ण मूर्तिशिल्प पुरातत्व की दृष्टि से उल्लेखनीय है। कुछ मूर्तिशिल्प यहां के लोगों के व्यक्तिगत संकलन में भी संग्रहीत है। व्यक्तिगत संकलनों में विशेष रूप से कालपी के पदम्कान्त पुरवार, बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई के निर्देशक डा0

---

1. Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-3

हरीमोहन पुरवार और राष्ट्र कवि स्वर्गीय श्री मैथिलीशरण गुप्ता, अब यह जगह उनके पुत्र श्री उर्मिला चरण गुप्ता ने लेली है, स्व0 श्री श्रीकृष्णा चौरसिया महोबा, ठाकुर रघुनाथ सिंह, मदनपुर, श्री महेन्द्र सिंह आई.पी. एस.0 (Member Public Service Commission) इलाहाबाद आदि महत्वपूर्ण हैं[1]।

इन समस्त संग्रहालयों में अनेक देवी–देवताओं की मूर्तियां संग्रहीत हैं। हम यहां केवल श्रीगणपति देव की मूर्तियों का ही उल्लेख करेंगे। क्योंकि इस शोध कार्य का उद्देश्य गणपति गजानन ही हैं। इस क्षेत्र में गणेश देव प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से विलक्षण विशेषतायें रखते हैं। सीमित साधनों के द्वारा वर्तमान समय में इस क्षेत्र की गणेश मूर्तियों का विस्तारर्पूवक अध्ययन कर पाना तो सम्भव नहीं था, लेकिन बुन्देलखण्ड की मूर्तिकला में गजानन गणेश की उन विशेषताओं पर प्रकाश डालनें का प्रयत्न किया गया है, जो विभिन्न क्षेत्रों से विशेष सन्दर्भों में प्राप्त हुई है।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों में गणेश की मूर्तियां गुप्तकाल, प्रतिहार और चन्देलों के समय 6वीं से 12वीं शताब्दी से लेकर बुन्देलों और मराठों के समय 17 वीं शताब्दी तक निर्मित की गई है। जब हम श्रीगणेश मूर्ति की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हैं तो पाते हैं कि वैदिक देव गणेश की मूर्तिकला के रूप में पुष्टि ईसा के पश्चात् की पांचवी शताब्दी से पूर्व नहीं होती[2] गणेश पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है, इसी कारण गणेश की प्राचीनतम मूर्तियों को यक्ष और नागों का ही प्रतिरूप बतलाया गया जो ईसा की कई शताब्दी पूर्व भारत में प्रचलित थी[3]। प्राचीन साहित्य तथा मथुरा, विदिशा और पवाया आदि अनेक स्थानों से प्राप्त मूर्तियों से इस बात की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त अमरावती से प्राप्त दूसरी शदी के एक शिलापट्ट पर जो अब मद्रास, संग्रहालय में संरक्षित है। गजानन यक्ष का अंकन मिलता है, परंतु मुख गज का नहीं है। जयपुर के समीप रेढ़–नामक स्थान से प्राप्त (प्रथम शती ई. पूर्व से प्रथम शती ई0) एक मिट्टी की बनी गजमुखी मातृका की भी मूर्ति मिली है। मथुरा से प्राप्त एक शिलापट्ट पर दूसरी शदी ई0 की भी गजमुखी यक्षों का अंकन मिलता है। इन सभी उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन कलाकार गजमुखी मानव–आकृतियां बनाने में भलीभांति निपुण थे और जब लगभग चौथी सदी ई0 में उनसे गणपति की मूर्तियां बनाने को कहा गया तो उन्होंने पाषाण फलक पर हिन्दू, बौद्ध एवं जैनधर्म के दवी–देवताों के साथ ही गणेश की भी कलात्मक प्रतिमाओं का निर्माण किया[4]।

1. Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-3
2. बाशम, ए. एल. – 'अद्भुत भारत, पृ0 228
3. कल्याण – गणेश अंङ्क पृ0 413
4. वही, पृ0 413

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ही प्रतिमाकार एवं मूर्तिशिल्प के मूर्धन्य विद्वान एवं मथुरा और लखनऊ संग्रहालयों के पूर्व निर्देशक डा० नीलकण्ठ पुरूषोत्तम जोशी अपना यह मत देते हैं कि यद्यपि भारतीय वाङ्मय में गणेश का प्रवेश ईसवी सन् के प्रारम्भ में हो चुका था, तथापि भारतीय मूर्तिकला में वे कुषाणकाल से ही आंके गए थे। शायद उनकी उपासना को शास्त्रीय मान्यता मिलने में इतना समय लग गया। यह निर्विवाद है कि गुप्तकाल में गणेश की लोकप्रियता बढ़ी और मध्यकाल तक आते–आते उनकी उपासना की विभिन्न पद्धतियां स्थापित हो गईं। फलस्वरूप मूर्तिकला में उनके विभिन्न स्वरूप उजागर हुए[1]।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की प्राप्त गणपति मूर्तियां अधिकांशतः विभिन्न प्रकार के पत्थरों द्वारा निर्मित की गई हैं ये मुख्यतः पत्थर, बालू पत्थर, ग्रेनाइट पत्थर और संगमरमर पत्थर द्वारा गढ़ी हुई हैं। इस प्रकार के पत्थर इसी क्षेत्र की विन्ध्यश्रेणियों में पाये गये हैं। इस क्षेत्र की मूर्तिशिल्प की मुख्य विशेषता यह है कि एक ही स्थान से पाई गई मूर्तियां विभिन्न रंग–बिरंगे पत्थरों से निर्मित हैं। उदाहरण के लिये सीरोनखुर्द की गणपति मूर्तियों को यहां के कलाकारों ने सामान्य रूप से हल्के पीले और लाल रंग के बालू पत्थर से उकेरा है। इनमें से कुछ लाल बलुआ पत्थर की गणपति मूर्तियां राजकीय संग्रहालय झाँसी में संग्रहीत है। एस०डी० त्रिवेदी के अनुसार 'उन्होंने देवगढ़ के आस–पास के क्षेत्रों में कुछ ऐसी खाने देखी हैं जहाँ इस प्रकार के पत्थर अधिक मात्रा में पाये गये हैं[2]। इसके अतिरिकत सीरोनखुर्द की कुछ गणपति मूर्तियों में ग्रेनाइट पत्थरों का भी प्रयोग किया गया है। ललितपुर के आस–पास के क्षेत्रों की गणपति मूर्तियों में भी ग्रेनाइट और लाल–बलुए पत्थर का उपयोग किया गया है। जनपद–जालौन क्षेत्र में पत्थर, बालू पत्थर, लाल बालू पत्थर के अलावा काले पत्थर की भी गणपति मूर्तियाँ मिली है जो बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई यहां के मन्दिरों और जालौन के श्री गोपालराव वाकणकर के निजी संरक्षण में देखी गई है[3]। यहाँ पर पत्थर के अलावा पीतल, मूंगा, पन्ना, मोती और मिट्टी की भी विभिन्न प्रकार की मूर्तियां मिली हैं। खजुराहों की मूर्तिशिल्प में गणेश प्रतिमा निर्माण में जिस पत्थर का प्रयोग किया है वह प्रायः केन नदी के पूर्वी तट पर स्थित पन्ना की खानों से लाया जाता था[4]।

वर्तमान में बुन्देलखण्ड में गजानन गणेश की मूर्तियां मुख्यतः दो शैलियों में प्राप्त हुई है प्रतिहारकालीन और चन्देल कालीन। इन दोनों कालों की मूर्तियां 10 वीं 12 वीं शताब्दी के

---

1. श्रीवास्तव, ए.एल. 'गणपति विशेषांक श्री पथरचट्टी रामलीला कमेटी प्रयाग, सोलहवां पुष्प 1995 पृ० 98–99
2. Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-8
3. पुरवार, हरीमोहन – 'जालौन जनपद मे श्रीगणेश के विविध स्वरूप' पृ० 16–30
4. अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ० 9

मध्य में ही निर्मित हुई हैं इसी कारण इन दानों की शेलियों में अधिक अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता है। कुछ गणपति मूर्तियां गुप्तकाल और पूर्व प्रतिहार काल की भी प्राप्त हुई हैं जिनमें झांसी जिले के देवगढ़ के प्रसिद्ध दशावतार मन्दिर में स्थापित गणपति मूर्तियां प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त पूर्व मध्ययुगीन प्रतिहारकालीन 8 वीं शताब्दी की गणपति प्रतिमायें ग्वालियर संग्रहालय और भारत कलाभवन, वाराणसी में भी विद्यमान हैं। मे सभी नृत्यमुद्रा में है[1]। इससे स्पष्ट है कि गणेश की नृत्यत् मूर्तियां प्रतिहार काल से पहले ही बनने लगी थी और उत्तर गुप्तकाल में गणपति–मूर्ति निर्माण में जो भी विशेषतायें प्रयुक्त होती थी वह बाद की मध्ययुगीन मूर्तियों में भी बनी रहीं। वस्तुतः प्रतिहार गुप्तों के वंशज रहे हैं इसी कारण उन्होंने अपनी मूर्तिनिमार्ण कला में गुप्तों की परम्परागत कला का पूर्ण पालन किया।

यहां पर हम केवल इन दानों शैलियों की कुछ मुख्य विशेषताओं का ही विवरण देंगे जो बुन्देलखण्ड क्षेत्र की कुछ सामान्य गणपति मूर्तियों में दिखलाई पड़ती है। अधिकांशतः इन गणपति मूर्तियों के निर्माण में ऊँचे शिलापट्टों का प्रयोग किया जाता था। इन्हीं शिलापट्टों के ऊपर गणपति की मूर्ति गढ़ी जाती थी। बीचोबीच स्थापित, गणपति मूर्ति अगल–बगल खम्भे बने होते हैं जो कई पट्टियों से सजे होते हैं। इसके अलावा उनके दांये–बांये देवी–देवताओं की आकृतियां या उनके अनुचरों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण रहती हैं। राजकीय संग्रहालय, झांसी की एक 11वीं शताब्दी की नृत्य गणेश की मूर्ति के ऊपर एक मन्दिर के समाने आकृति बनी है जिसमें कोई देवता ऊंची जगती पर बैठे हुये प्रदर्शित हैं[2]।

बहुत सी मूर्तियां प्रस्तर की पटियों पर उभार कर भी बनाई गई हैं जो चन्देलकालीन, मूर्तियों की मुख्य विशेषता है। इस प्रकार की मूतियां खजुराहों में देखी गई हैं लेकिन इनमें श्रीगणेश स्वतन्त्र रूप से उत्कीर्ण नहीं है बल्कि सप्तमातृकाओं और वीरभद्र के साथ प्रदर्शित हैं। इसी प्रकार की एक गणपति मूर्ति बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में है लेकिन इस पाषाण–पत्रक पर उत्कीर्ण गणपति अपने वाहन के साथ दिखलायी पड़ते हैं। कुछ मूर्तियां गोलाकार हैं जिनके पीछे वाले भाग का निर्माण कार्य बड़ी सावधानी से पूर्ण किया गया है जो देखने में बहुत ही आकर्षक दिखती हैं। इस तरह की कुछ मूर्तियों का पिछला हिस्सा पूरी तरह से नहीं बने हुये हैं। ऐसी ही एक गणपति मूर्ति राजकीय संग्रहालय, झांसी में सुरक्षित हैं।10 वीं शताब्दी की यह चतुर्दशभुजी नृत्य गणपति मूर्ति[3] गोलाकार में निर्मित है। इस मूर्ति में उनका पिछला हिस्सा बड़ी सुन्दरता और

1 कल्याण, गणेश अंङ्क' पृ0 414
2. प्रतिमा संख्या – 81.176
3. वही – 81.45

आश्चर्यजनक रूप से गढ़ा गया है जिसका सम्पूर्ण विवरण स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह मूर्ति विभिन्न प्रकार के आभूषणों से अलंकृत हैं जिससे यह जान पड़ता है। कि यह मूर्ति चन्देल कालीन है। प्रतिहार काल की मूर्तियां चन्देलकाल की अपेक्षा कम अलंकृत है। किन्तु प्रतिहार कालीन मूर्तियों के शरीर सुडौल और मुख पर प्रसन्नता के भाव दिखलाई पड़ते हैं। प्रतिहार कालीन प्रतिमायें बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बहुतायत से ललितपुर–जनपद क्षेत्र में पाई गई हैं। इसके अलावा 10 वीं शताब्दी की प्रतिहार कालीन प्रतिमायें मुख्यतः भूमरा संग्रहालय, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में भी देखी गई हैं[1]। जबकि चन्देलकालीन गणपति, मूर्तियां मध्यप्रदेश के खजुराहों क्षेत्र में विद्यमान है। खजुराहों में गणेश मूर्तियों के जितने प्रकार मिलते हैं, उतने सम्भवतः भारत के किसी अन्य स्थान में प्राप्त नहीं हैं। यहाँ पर गणेश की द्विभुजी, षड्भुजी आदि अनेक प्रकार की स्थानक, आसन, शक्तिसहित, नृत्यमुद्रा तथा सप्तमातृकाओं एवं वीरभद्र के साथ देखी गई हैं जो कि मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं[2]। इसके अलवा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अन्यत्र जहां कहीं भी गणेश मूर्तिशिल्प रूप में मिले हैं वे सभी कुछ मन्दिरों के मुख्य द्वार के किनारे या चौखटों पर, खम्भों के सिरों भाग पर और लिन्टर पर सुसज्जित है।

भारतीय मूर्तिकला में गणेश को उन्हीं रूपों में उकेर गया है जो कि विभिन्न शास्त्रों में वर्णित है। पुरणां में श्रीगणेश के कुछ विशेष नाम एकदन्त, गजानन, शूर्पकर्ण, विघ्नेश्वर आदि से सम्बन्धित अनेक कथायें दी गई हैं। ये रूप श्रीगणेश देव के विभिन्न नाम हैं और मूर्तिशिल्प में उन्हें इन्हीं रूपों में दर्शाया गया है। इसके अतिरिक्त डा0 राव[3] ने कुछ मूर्तिशास्त्रीय विशेषताओं के आधार पर गणेश की मूर्तियों के अन्य प्रकारों का भी विवरण दिया है जिनमें बालगणपति, तरूण गणपति, भक्ति गणपति, वीर–विघ्नेश, शक्ति गणेश, उच्छिष्ट–गणपति, महा–गणपति, ऊर्ध्व गणपति, पिंगल गणपति, हेरम्ब, प्रसन्न गणपति, ध्वज–गणपति, उन्मत्त–उच्छिष्ट गणपति, हरिद्रा गणपति, भालचन्द्र, शूर्पकर्ण और एकदन्त आदि प्रमुख हैं। इन रूपों का बहुत ही कम प्रदर्शन मूर्तिकला में हुआ है लेकिन इनमें से कुछ रूप मध्ययुगीन गणपति मूर्तियों में देखने को मिल जाते हैं। भारतीय मूर्तिकला में मुख्य रूप से श्रीगणेश को पाँच श्रेणियों में परिगठित किया जा सकता है[4] –

1. स्थानक गणेश अर्थात् गणेश्या की खड़ी मूर्तियां

1. कल्याण, गणेश अंङ्क पृ0 414
2. वही – पृ0 415
3. Rao. T.A.G. - Elements of Hindu Inconography Vol. -1 P-52-61
4. श्रीवास्तव, ए0एल0 'गणपति विशेषांकङ्क श्री पथरचट्टी रामलीला कमेटी, प्रयाग, सोलहवां पुष्प, 1995 पृ0 –99

2. आसनस्थ गणेश अर्थात् गणेश की बैठी मूर्तियां

3. नृत्यत गणेश अर्थात् गणेश की नृत्य मुद्रा वाली मूर्तियां

4. दम्पत्ति गणेश अर्थात् शक्ति सहित गणेश्या की मूर्तियां

5. अन्य मूर्तियां

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मूर्तिशिल्प में गणेश के उपर्युक्त इन्हीं रूपों के दर्शन हमें प्राप्त हुये हैं। यहां आसन और नृत्य मूर्तियों की अपेक्षा स्थानक–मूर्ति बहुत ही कम मिली है। ये स्थानक मूर्तियां अधिकांशतः द्विभुजी ही अंकित की गई हैं। सर्वप्रथम स्थानक मूर्तियां संकिसा (फरूखाबाद, उ0 प्र0) और मथुरा[1] से मिली हैं, जो वर्तमान समय में वहाँ के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है। इन मूर्तियों में गणेश के बाएं हाथ में मोदकपात्र है और उनकी सूंड भी उसी पर टिकी हुई हैं ये मूर्तियां प्रारम्भिक गुप्तयुग (लग–भग चौथी सदी ई0) की है। वृहत्संहिता[2] के प्रतिमा–लक्षण अध्याय के एक श्लोक में गणेश की प्राचीनतम प्रतिमा वर्णित है जिसमें वह द्विभुजी ही वर्णित है। लेकिन इसमें वह बाएं हाथ में मोदकपात्र की जगह मूलकन्द धारण किये हुये हैं।

स्थानक गणेश मूर्तियाँ –

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इस समय की स्थानक द्विभुजी मूर्तियों का सर्वथा अभाव रहा है। ये मूर्तियों अधिकांशतः मध्ययुगीन प्राप्त हुई हैं। केवल झांसी जिले के देवगढ़ (ललितपुर) से उत्तर गुप्तकालीन स्थानक द्विभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई है। वैसे तो उत्तर गुप्तकाल 5वीं–6वीं शताब्दी की मूर्तियों में गणेश के दो के स्थान पर चार भुजायें बनने लगी थी और यही विशेषतः बाद की मध्यकाल की मूर्तियों में भी बनी रही[3]। परन्तु देवगढ़ की तीन घाटियों में गुप्तकालीन द्विभुज गणेश की स्थानक प्रतिमाओं के अंकन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि यहां की मूर्तिशिल्प में पूर्व गुप्तकाल की विशेषताओं को भी अपनाया गया। देवगढ़ की नाहरघाटी और राजघाटी[4] में अंकित ये गणेश प्रतिमायें सप्तमातृकाओं के साथ है। इसके अतिरिक्त एक घाटी के एक आले में गणेश की स्वतन्त्र मूर्ति भी उकेरी गई हैं यह भी मूर्तियां लगभग छठी शताब्दी ई0 की है। इसी समय की स्थानक द्विभुजी प्रतिमायें उदयगिरि (विदिशा म0प्र0) राजघाट (वाराणसी) अहिच्छत्र (बरेली) तथा भीतरगांव (कानपुर) से भी प्राप्त हुई है[5]। देवगढ़ के दशावतार मंदिर में भी श्रीगणेश की मूर्ति

1. कल्याण, गणेश अंङ्क' पृ0 413
2. वृहत्संहिता – 58
3. कल्याण, गणेश अंङ्क – पृ0 414
4. त्रिदेवी – एस0डी0 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पृ0 –50
5. गणपति विशेषांङ्क पृ0 –100

स्थापित है इसके अतिरिक्त अन्य मंदिरों में भी अनेक मध्ययुगीन गणेश प्रतिमायें विविध रूपों में प्राप्त हुई हैं। यहां की मूर्ति सम्पदा को देखकर ही डा0 मा–तिनंदन तिवारी जैसा कला मर्मज्ञ मथुरा के बाद सर्वाधिक प्रयोग उत्तर भारत में प्रतिमा कला में देवगढ़ में हुये बताते हैं[1]। पुरातत्व का अप्रितम केन्द्र यह देवगढ़ जनपद ललितपुर में सदानीरा वेत्रवती तट पर मुख्यालय से 33 कि.मी. की दूरी पर विन्ध्याचली दक्षिण–पश्चिमी कोनिया की पर्वतमाला पर अवस्थित हैं।

खजुराहो के पुरातत्व–संग्रहालय में भी द्विभुजी स्थानक गणेश की मूर्तियां देखी गई हैं। ये मूर्तियां भी देवगढ़ की भांति स्वतन्त्र रूप से प्राप्त नहीं हुई हैं। यहां इस प्रकार की मूर्तियां विशेषतः शिलापट्टों में देखने को मिली है जिसमें वे पांच देवों के साथ तथा सप्तमातृकाओं और वीरभद्र के साथ प्रदर्शित हुये हैं। एक शिलापट्ट में अलग–अलग रथिकाओं में पांच देवमूर्तियां क्रमशः बह्म, गणेश, शिव, कार्तिकेय और विष्णु की मूर्तियाँ अंकित हैं[2]। इसमें श्रीगणेश द्विभुज और त्रिभंग खड़े प्रदर्शित हुए हैं। वे अपने दाएं हाथ में परशुधारण किये हैं और बाएं में मोदकों भरा पात्र लिये हुये हैं। (वृहत्संहिता में गणेश की द्विभुजी प्रतिमा के दाएं हाथ का लक्षण परशु ही उल्लिखित है।) इस प्रतिमा में उनकी सम्पूर्ण शुण्ड बाई ओर मुड़कर इसी मोदक–पात्र के ऊपर प्रदर्शित है। इसमें उनका स्वरूप एकदन्त और शूर्पकर्ण है।

इस संग्रहालय में वीरभद्र और सप्तमातृकाओं के साथ वाली द्विभुजी स्थानक गणेश की मूर्ति विशेष रूप से नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित हुई हैं इस प्रकार की मूर्तियों में एक में तो वह नृत्य मुद्रा[3] में है और उनके दाएं हाथ में पद्म है और उनका बांया हाथ कट्यवलम्बित है। लेकिन एक दूसरी प्रतिमा में वीरभद्र और मातृकायें तो नृत्य मुद्रा[4] में न होकर समभंग खड़े हैं। बाएं हाथ में मोदक पात्र के ऊपर है। उनके दाएं हाथ का पदार्थ स्पष्ट नहीं है। अतः अन्य प्रतिमा के शिलापट्ट में[5] गणेश, वीरभद्र और मातृकाओं के नौवी से तेरहवीं शताब्दी तक चंदेलवंशी शासकों के अधीन रहा है इसी कारण न गणपति मूर्तियों का काल भी यही रहा होगा। खजुराहों की मूर्तिशिल्प को पांच वर्गों में विभाजित किया गया हैं जिसमें श्रीगणेश की इस तरह की मूर्तियां दूसरे वर्ग में आती हैं जो रथिकाओं में स्थित अथवा मंदिर की जंघाओं में स्थित है। ये अंशतः चारों ओर से उकेर कर बनाई गई है इनमें समान्यतः गणेश त्रिभंग मुद्रा में खड़े हैं। अपने मन्दिरों के लिये प्रसिद्ध खजुराहों मध्यप्रदेश के जिला छतरपुर में स्थित है। खजुराहो के अलावा इस समय की स्थानक गणेश मूर्तियां

1. आयोध्या प्रसाद 'कुमुद', बुन्देलखण्ड का ज्योतिपुंजः 'सुरम्य बुन्देलखण्ड', पृ0 94
2. पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो – प्रतिमा संख्या –14, देखिये – 'खजुराहो की देव प्रतिमायें'
3. प्रतिमा संख्या 40, वही
4. प्रतिमा संख्या 42, वही
5. प्रतिमा संख्या 41, वही

इन्दौर, अलवर (राजस्थान)[1] और खिचिंग (उड़ीसा)[2] के संग्रहालयों में भी प्राप्त हुई है। इनमें उड़ीसा वाली प्रतिमा 11वीं शताब्दी की है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्यत्र क्षेत्रों में इस तरह की स्थानक मूर्तियों का सर्वथा अभाव रहा है, लेकिन कुछ क्षेत्रों में विशेषतः ललितपुर जनपद और जालौन जनपद में कुछ द्विभुजी प्रतिमायें अवश्य प्राप्त हुई, जो गुप्तकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल की है।

ललितपुर जनपद में सागर–ललितपुर मार्ग पर स्थित पटौरा कला गांव है इसी गांव के बाहर स्थित तालाब के सन्निकट बने एक हनुमान मन्दिर में आधुनिक हनुमान की प्रतिमा के पार्श्व में गजवदन गणेश की एक द्विभुजी आधुनिक प्रतिमा प्रतिष्ठित है[3]। ललितपुर जनपद के अन्तर्गत ही स्थित सीरोन कला[4] गाँव के उत्तर–पूर्व दिशा में लगभग आधा कि0मी0 दूर हाला देवी नामक देवस्थान है जिसमें सप्तफणों के छत्र से आवृत्त देवी की प्रतिमा की पदपीठ पर दायीं ओर द्विभुज गणेश रूपायित हैं। वे पीठिका पर उत्कूटिकासन में बैठे हुये प्रदर्शित हैं। गणपति अपने दाएं हाथमें परशु तथा बायें हाथ में मोदक पात्र लिए हुए हैं। यह प्रतिमा लगभग 12 वीं सदी की है। इसी प्रकार दखिण भारत की बादमी की गुफा में शिव नटराज मूर्ति की बाँयी ओर द्विभुज गणेश का अंकन मिलता है लेकिन इसमें वह स्थानक मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा प्रारम्भिक पश्चिमी चालुक्य–युग छठीं शताब्दी ई0 की है। छठी शताब्दी ई0 की ही एक द्विभुजी गणेश मूर्ति झाँसी मण्डल के अन्तर्गत स्थित जनपद–जालौन से प्राप्त हुई हैं इस प्रतिमा में वे नृत्य मुद्रा में हैं। यह प्रतिमा जनपद जालौन में स्थित अकबरपुर, इटोरा से प्राप्त हुई है और वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड–संग्रहालय, उरई में प्रदर्शित है[5]। यही प्रदर्शित –द्विभुजी गणेश की एक प्रतिमा में स्वाभाविक मुद्रा में दाहिने हाथ से मोदक ग्रहण करते हुये दिखलाये गये हैं यह मूर्ति 9 वीं शताब्दी की है और माधौगढ़ से प्राप्त हुई है। 12वीं शताब्दी की एक अन्य द्विभुजी मूर्ति में गणेश नृत्य मुद्रा में है। कुछ द्विभुजी प्रतिमायें 18वीं शताब्दी की भी प्राप्त हुई है।

सीरोन –खुर्द गाँव के उत्तर–पूर्वी भाग में खेड़र नदी के तट पर स्थित चीरादार नामक स्थान पर कई मन्दिरों के अधिष्ठान दृष्टिगत है। इसी के सन्निकट एक सर्वतोभद्र स्तम्भ है इसके अधोवर्ती भाग में चारों ओर उमा,, महेश, विष्णु, गणेश एवं सूर्य को स्थानक रूप में रूपांकन किया है। ललितपुर–जनपद के ही सिरसी गांव के मध्य में एक गढ़ी है। यहाँ के बने मन्दिर के उत्तरी

1. गणपति विशेषांङ्क – पृ0 100
2. कल्याण, गणेश अंङ्क पृ0 –416
3. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट – (1988–89) विकास खण्ड जखौरा, जनपदललितपुर – पृ0 15
4. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट – (1988–89) विकास खण्ड, जखौरा, जनपद–ललितपुर
5. जालौन जनपद में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0

प्रवेश द्वार के दोनों पार्श्वों में बने आलों में कार्तिकेय और गणेश की द्विभुजी लघु प्रतिमायें स्थापित हैं।

इसके अतिरिक्त सीरोन खुर्द से ही प्राप्त एक स्थानक गणेश की 10 वीं शताब्दी की प्रतिमा राजकीय संग्रहालय, झाँसी में प्रदर्शित है[1]। इसमें वह कमल–दल पर सीधे खड़े हैं और उनका जिसमें दाहिना पैर थोड़ा सा मुड़ा हुआ है। इसमें वे चतुर्भुजी हैं लेकिन केवल एक ही हाथ शेष है जिसमें वह साफा या पट्टा लिये हुये हैं। इन सबके अलावा लखनऊ संग्रहालय में भी द्विभुजी स्थानक गणेश की मध्ययुगीन प्रतिमा देखी गई है। इस प्रतिमा की पादपीठ में मूषक की आकृति बनी हुई है। प्रतिमा की शिरोभूषा अत्यन्त आकर्षक है और वह त्रिभंग मुद्रा में खड़ी हैं यह मूर्ति लगभग 11वीं –12वीं शताब्दी में निर्मित की गई है[2]।

बुन्देलखण्ड की मूर्ति कला में गणेश की आसनस्थ मूर्तियाँ –

आसनस्थ मुद्रा वाली गणेश की मूर्तियाँ बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खजुराहो, ललितपुर जनपद के आस–पास के क्षेत्रों, झाँसी के राजकीय संग्रहालय और रानी महल संग्रहालय जनपद–जालौन के बुन्देलखण्ड संग्रहालय और मन्दिरों आदि में देखी जा सकती है। श्रीगणेश की ये मूर्तियां द्विभुजी, चतुर्भुजी और षड्भुजी प्राप्त हुई हैं। चतुर्भुजी मूर्तियां अधिक मात्रा में प्राप्त हुई हैं। उनकी ये आसनस्थ मूर्तियां अधिकांशतः ललितासन, महाराजलीलासन, पद्मासन, कमलासन, मूषकासन और सिंहासनासन रूपायित है। श्रीगणेश की चार भुजायें उत्तर गुप्तकाल से बननी शुरू हो गई थीं। और यही क्रम बाद तक के समयों में भी रहा। बुन्देलखण्ड की आसनस्थ चतुर्भुजी प्रतिमायें गुप्तकाल से लेकिन आधुनिक काल तक की मिली हैं। आसनस्थ मुद्राओं वाली गणेश की मूर्तियां उदयपुर, रायपुर संग्रहालय एवं इन्दौर संग्रहालयों में तथा हम्पी (वेलारी, कर्नाटक) मे देखी जा सकती हैं[3]।

खजुराहो के पुरातत्व संग्रहालय में दो हाथों वाली तीन आसन मूर्तियां उपलब्ध हैं। ये सभी लघु प्रतिमायें हैं। पहली आसनस्थ मूर्ति[4] में गणपति ललितासन में बैठे हैं और उनका दाहिना हाथ वर–मुद्रा में और बायें हाथ में मोदक पात्र है। दूसरी आसनस्थ मूर्ति[5] में वे राजलीलासन–मुद्रा में बैठे हैं और उनका शेष चित्रण पहली मूर्ति के समान हुआ हैं अन्तिम मूर्ति[6] में श्रीगणेश

1. Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-58
2. गणपति विशेषांक पृ0 100
3. वही 101
4. प्रतिमा संख्या –8 'खजुराहों की देव प्रतिमांये पृ0 52
5. प्रतिमा संख्या – 39 –वही पृ0 53
6. प्रतिमा संख्या 9 'खजुराहो की देव–प्रतिमायें' पृ0 –52

राज–लीलासन में ही प्रदर्शित हैं लेकिन उनके दाएं हाथ में दन्त और बाएं में मोदक पात्र है। शुण्ड बाई ओर मुड़कर इसी के ऊपर प्रदर्शित है। एक द्विभुजी आसनस्थ मूर्ति अमझरा नामक स्थान से मिली है और यह उदयपुर संग्रहालय[1] में सुरक्षित है। लगभग 7वीं–8वी शताब्दी में निर्मित इस द्विभुजी प्रतिमा के दाएं हाथ में मूली और बाएं में मोदकपात्र है।

खजुराहो में चतुर्भुजी गणेश की 9 आसनस्थ मूर्तियां प्राप्त हुई है[2]। इन सभी प्रतिमाओं में गणेश लीलासन–मुद्रा में बैठे प्रदर्शित हैं। इन प्रतिमाओं में श्रीगणेश मूर्ति की विशेषतायें शास्त्रों से ही ली गई हैं। लेकिन किसी एक शास्त्र के विवरण के अनुसार नहीं हैं। उनके चारों हाथों में सामान्यतः दन्त, कमल, परशु मोदक और मोदक पात्र ही रहता है। कुछ मूर्तियों में उनका एक हाथ अभय मुद्रा में भी है।

रामाश्रय अवस्थी ने इन गणेश मूर्तियों के चारों हाथों के लक्षण इस प्रकार बताये हैं।

प्रतिमा संख्या	पहला हाथा	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
9	परशु	कमल	खण्डित	एक बड़ा मोदक
25	कमल	खण्डित	खण्डित	खण्डित
26	अभय मुद्रा	दन्त	कमल	मोदक–पात्र
27	दन्त	परशु	कमल	मोदक–पात्र
31	अभय मुद्रा	परशु	स्पष्ट नहीं	"
32	एक मोदक	दन्त	कमल	खण्डित
35	अभय मुद्रा	कमल	परशु	एक मोदक
36	खण्डित	दन्त	कमल	मोदक पात्र
37	खण्डित	दन्त	कमल	बड़ा फल

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सब प्रतिमाओं के चौथे हाथ में एक मोदक अथवा मोदक–पात्र है।

किन्तु एक प्रतिमा में चौथे के स्थान पर पहले हाथ में मोदक देखा जा सकता है। ठीक इसी प्रकार इन्दौर संग्रहालय[3] में भी काट कूट से प्राप्त चतुर्भुज प्रतिमा के बाएं हाथ में मोदकपात्र और दूसरे में कमल है और दांए हाथ में परशु और दूसरा खण्डित है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर मूषक बना है और पार्श्वों में त्रिभंग मुद्रा में खड़ी एक–एक नारी की आकृति भी है। इससे इतना

1. गणपति विशेषांक – पृ0 101
2. अवस्थी, रामाश्रय – 'खजुराहो की देव प्रतिमाएं' पृ0 40
3. गणपति विशेषांक पृ0 101

तो स्पष्ट है कि चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमायें चाहे जिस क्षेत्र से प्राप्त हों, उनके लांछनों में प्रायः समतायें पायी जाती हैं। खजुराहों की इन सभी मूर्तियों में सामान्यः शुण्ड बायीं ओर मुड़कर मोदकपात्र को स्पर्श करती हुई प्रदर्शित है, कुछ, प्रतिमाओं में वह दायी ओर भी मुड़ी है। सामान्यतः सभी मूर्तियों में गणपति एकदन्त गजानन और लम्बोदर हैं। इन प्रतिमाओं के सदृश ही सुखासन–मुद्रा में बैठे जटा–मुकुटधारी चतुर्भुज गणेश की एक बंगाल की प्रतिमा भी दर्शनीय है[1]।

खजुराहों की आसनस्थ मूर्तियों में छः भुजाओं वाली केवल एक मूर्ति प्राप्त हुई है। इसमें श्रीगणेश महाराजलीलासन मुद्रा में प्रदर्शित हुए हैं वे अपने पहले हाथ में पद्म अथवा दन्त, दूसरे में परशु, पाँचवे में अंकुश और छठवें में मोदक पात्र धारण किए हैं। तीसरे और चौथे हाथों में एक नाग पकड़ कर सिर के ऊपर किए हैं, जिसके ऊपर की ओर विद्याधरों का एक युगल भी अंकित हैं। वे शूर्पकर्ण, एकदन्त और लम्बोदर है।

झाँसी जनपद में पुरातात्विक महत्व की जितनी भी आसनस्थ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं वे सभी राजकीय संग्रहालय, झांसी और रानी महल के संग्रहालय में संग्रहीत है। ये सभी प्रतिमायें चांदपुर, दुधई और सीरोनखुर्द से प्राप्त हुई हैं। ललितपुर मुख्यालय से लगभग 25 कि0 मी0 दूर स्थित चांदपुर चन्देलकालीन वास्तु कला और मूर्तिकला का बेमिसाल गवाह है। यहां से प्राप्त सन् 1207 ई0 के शिलालेख से ज्ञात होता है कि यहां के मन्दिरों का निर्माण उदयपाल[2] ने करवाया था, जो नरेश मदन वर्मन के समय में था। अतः इसी कारण यहां के मन्दिर और भवनों का निर्माण का समय सन् 1128 ई0 से सन् 1164 ई0 के बीच माना जाता है। आज से लगभग 30 वर्ष पूर्व यहां के मन्दिरों के खंडहरों में गणेश के विविध स्वरूपों की जितनी भी मूर्तियां मिली है वे सभी लगभग इसी समय की हैं। इसमें से अधिकांश मूर्तियों को मूर्ति चारों ने अवैध रूप से अपने संरक्षण में ले लिया है, तो बची मूर्तियों को रानी महल, संग्रहीत गणेश की सभी आसनस्थ मूर्तियां चतुर्भुजी हैं। खजुराहों की भांति द्विभुजी और षड्भुजी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। चांदपुर से प्राप्त सभी मूर्तियों में श्री गणेश सुखासन में हैं। ये सभी मूर्तियां भावों एवं मुद्राओं की दृष्टि से बड़ी ही सजीव एवं आकर्षक है और सभी मूर्तियां अलंकरण प्रधान है।

उपर्युक्त गणपति की मूर्तियों[3] के हाथों के लक्षण इस प्रकार हैं –

1. Ganguly, M. Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad, P.-82
2. आयोध्य प्रसाद 'कुमुद – 'सुरम्य बुन्देलखण्ड' पृ0 137–38
3. रानी महल संग्रहालय, झांसी

प्रति0 सं0	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ	प्राप्ति स्थान
12	अक्षमाला	परशु	मोदक	कमल नाथ	चांदपुर
3	अक्षमाला	परशु	मोदक	पूर्णविकसित कमल	चांदपुर
5	खण्डित	खण्डित	खण्डित	अंकुश	चांदपुर
11	परशु	अस्पष्ट	मोदक	अस्पष्ट	चांदपुर
476	अस्पष्ट	त्रिशूल	मोदक	अंकुश	दुधई

यहां की मूर्तियों के हाथों के लक्षण खजुराहों की मूर्तियों से पूर्णतः भिन्न हैं। खजुराहों में वे चौथे हाथ में मोदक लिये हुये हैं तो इसमें तीसरे ही हाथ में मोदक लिये हुये हैं। ये सभी आसनस्थ मूर्तियां केवल चतुर्भुजी होने के कारण ही पूर्व मध्यकाल की प्रतीत होती है। इन समस्त मूर्तियों में गणपति एकाकी रूप में हैं। केवल एक प्रतिमा में उनके बाईं ओर विद्याधर हैं, जिसका अधिकांश भाग नष्ट हो चुका है[1]।

राजकीय संग्रहालय, झांसी अपने भव्य रूप में स्थापति है। इसमें सीरोनखुर्द से प्राप्त आसनसथ गणेश[2] की केवल एक ही ऐसी प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें वह एकाकी प्रदर्शित है। यह प्रतिमा लगभग 10वीं शताब्दी की है और मूर्ति राज लीलासन मुद्रा में ऊंचे आसन पर बैठी हुई है। इसमें वह आभूषणों से अलंकृत है और नाग का यज्ञोपवीत धारण किये है। यद्यपि उनका सिर खण्डित है तथापि वह अपने एकदन्त शूर्पकर्ण और गजानन रूप में ही रहें होगे। इसमें श्रीगणेश चतुर्भुजी ही है लेकिन बायी तरु का पहला 15 हाथ छोड़कर शेष सभी खण्डित हैं। इसमें वह मोदक पात्र लिये हुये हैं।

एक रावणानुग्रह मूर्ति[3] में अपने गणों के साथ रूपायित शिव के बायीं ओर गणेश की लघु मूर्ति प्रदर्शित है। इसमें श्रीगणेश पद्मासन मुद्रा में बैठे हुये हैं, और उनकी शुण्ड सीधी जाकर बायी ओर मुड़ी हुई है। चारों हाथों में क्रमशः वरद मुद्रा, अंकुश कमल दण्ड और नारियल लिये हुये प्रदर्शित है। यह मूर्ति भी लगभग 10 वीं शताब्दी की हे और सीनोनखुद्र से प्राप्त हुई है। ये दोनों ही प्रतिमायें बालू पत्थर से निमित हैं।

ललितपुर जनपद के आस–पास अनेक पुरातात्विक स्थलों में श्रीगणेश की आसनस्थ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इनमें मुख्य रूप से थनवारा, दैलवारा, पनारी, मसौरा खुर्द, मुहारा साकरवार,

1. वर्मा, महेन्द्र 'चंदेलकालीन कला और संस्कृति' (चांदपुर दुधई के परिप्रेक्ष्य में) पृ0 –51
2. प्रतिमा संख्या -- 81.46, राजकीय संग्रहालय, झाँसी
3. प्रतिमा संख्या – 81.60, वही

सीरोन कला और सिरसी में ये प्रतिमायें देखी गई हैं[1]। इन केन्द्रों पर ये गणपति मूर्तियां मन्दिरों, गढ़ी, पेड़ के नीचे और सरोवरों के किनारे प्राप्त हुई है। यहां की समस्त आसनस्थ प्रतिमायें चतुर्भुजी हैं केवल सीरोनकला से एक द्विभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई है। अधिकांश मूर्तियों के हाथ खण्डित हैं। इस क्षेत्र की सभी प्रतिमायें 10 वीं से 12 वीं शताब्दी ई0 के मध्य निर्मित है जिनमें प्रतिहार तथा चन्देलकालीन प्रतिमाओं की अधिकता देखने को मिलती है। मूर्तियां बनाने के लिये इस क्षेत्र के कलाकारों ने सामान्य रूप से ग्रेनाइट और लाल बलुआ पत्थर का उपयोग किया है। और उनकी सूंड अधिकांशतः बायीं ओर मोदक पात्र की ओर मुड़ी हुई अथवा मोदक ग्रहण करते हुये प्रदर्शित है। कुछ विशेष प्रतिमायें इस प्रकार है–

थनवारा[2] के कायस्थ क्षेत्र के अन्तर्गत एक मन्दिर में श्रीगणेश की चतुर्भुजी मूर्ति रूपायित है। इस मूर्ति में गणेश ललितासन में है। यह प्रतिमा लगभग 11वीं सदी ई में निर्मित प्रतीत होती है। यह स्थान जखौरा –राजघाट मार्ग पर स्थित सीरोनखुर्द से उत्तर दिशा में लगभग 3 कि0मी0 दूर यह गाँव, सीरोनखुर्द–थनवारा कच्चे मार्ग पर स्थित है।

इसी गांव के उत्तरी भाग में एक पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर भी लगभग 12 वीं शताब्दी की एक चतुर्भुजी गणेश मूर्ति विराजमान है।

दैलवारा[3] गांव के दक्षिण दिशा में एक ध्वस्त गढ़ी के पास एक मनोहर नामक बड़ा सरोवर हैं 18 वीं शताब्दी में निर्मित यह तालाब 10 एकड़ में फैला हुआ है। इसी के समीप निर्मित एक आधुनिक मन्दिर के भीतर लगभग 12 वीं शताब्दी की चतुर्भुजी गणपति प्रतिमा विराजमान है। यह गांव जखौरा एवं ललितपुर के लगभग मध्य में जखौरा से 10 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है।

ललितपुर–सागर मार्ग पर स्थित पनारी[4] गांव ललितपुर से लगभग 4 कि0 मी0 की दूरी पर है। इसी गांव की पूर्व दिशा में निर्मित आधुनिक हनुमान मन्दिर के प्रवेशद्वार के पार्श्व में लगभग 12वीं शताब्दी की चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा रखी हुई है। इसमे श्रीगणेश का गजानन और लम्बोदर स्वरूप रूपायित है।

उपर्युक्त मार्ग पर ही ललितपुर से लगभग 6 कि0 मी0 दूर मसौरा खुर्द[5] गांव स्थित है। इस गांव से गणेश की तीन आसनस्थ मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं। पहली प्रतिमा गांव के पूर्व दिशा में

1. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट (1988–89) विकास खण्ड – जखौरा जनपद–ललितपुर पृ0 8.45
2. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट – (1988–89) विकास खण्ड – जखौरा जनपद–ललितपुर पृ0 8
3. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट – (1988–89) विकास खण्ड – जखौरा जनपद–ललितपुर पृ0 10
4. वही – पृ0 15
5. वही – पृ0 21

स्थित विशाल बरगद के नीचे दूसरी प्रतिमा गांव के पूर्व दिशा में स्थित गणेश बाग में निर्मित गणेश मन्दिर में और तीसरी प्रतिमा गांव से लगभग ढाई कि0 मी0 की दूरी पर स्थित सरोवर के तट पर विराजित भग्न भुजाओं वाली लम्बोदर गणपति की प्रतिमा मध्यकालीन कला दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं इन प्रतिमाओं में सबसे महत्वपूर्ण प्रतिमा गणेश मन्दिर की है। इस मन्दिर को राजा मर्दन सिंह द्वारा बनवाया गया बतलाया जाता है। बाद में इसका जीर्णोद्धार किया गया। इस मन्दिर के गर्भगृह में स्थापित चतुर्भुजी गणेश ललितासन में बैठे हुये हैं। इसमें उनका वक्रतुण्ड रूप दर्शाया गया है।

मुहारा गांव[1] जखौरा–बांसी मार्ग पर जखौरा से लगभग 12 कि0मी0 तथा ललितपुर से 28 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है। इसी गांव में एक देवस्थान में हनुमान की आधुनिक प्रतिमा स्थापित हैं इसके पार्श्व में मध्यकालीन प्रतिमाओं के भग्नांशों के मध्य में स्थापित गणेश की लगभग 12 वीं सदी की दो प्रतिमाएं उल्लेखनीय हैं। इनमें एक प्रतिमा की भुजाएं तथा पैर भग्न हो चुके हैं। दूसरी प्रतिमा में गणेश ललितासन में बैठे हुये दर्शाये गये हैं। इसमें चतुर्भुजी गणेश रथिका–बिम्ब में निरूपित हैं।

साकरवार गाँव[2] में चतुर्भुजी गणेश दुर्गा जी नामक देवस्थान में ललितासन में विराजमान हैं। यह मन्दिर गांव के पश्चिम–दक्षिण दिशा में है। इसमें श्रीगणेश लम्बोदर, सूर्पकर्ण एवं गजवदन विनायक मुकुट कण्ठहार, उदरबन्ध, बाजूबन्ध और सर्पयज्ञोपवीत से सज्जित हैं। इस प्रतिमा के अलंकृत होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रतिमा चन्देलकालीन है। यह गांव सीरोनखुर्द गांव से पश्चिम दिशा में कच्चे मार्ग पर लगभग 9 कि0मी की दूरी पर तथा ललितपुर से लगभग 42 कि0मी0 की दूरी पर पड़ता है।

सीरोन कला गांव[3] में अन्य स्थानों की अपेक्षा चतुर्भुजी के स्थान पर द्विभुजी आसनस्थ गणेश मूर्ति प्राप्त हुई है। इस गांव के हाला देवी नामक मन्दिर में एक पीठिका पर गणेश उत्कूटिकासन में बैठे हुये हैं।

जखौरा–ललितपुर मार्ग पर स्थित सिरसी गांव[4] के मध्य में लगभग 5 एकड़ क्षेत्रफल में चहारदीवारी से घिरी हुई एक गढ़ी है। इस गढ़ी के मुख्य प्रवेश द्वार के पार्श्व में ललितासन में बैठे लगभग 12 वीं शताब्दी में निर्मित चतुर्भुजी गणपति विराजित हैं। उनके लक्षणों के अनुरूप ही वह शूर्पकर्ण, एकदन्त, लम्बोदर तथा गजानन स्वरूप में रूपायित किये गये हैं।

1. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, पृ0 –22
2. वही – पृ0 29
3. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट, पृ0 30–30
4. वही, पृ0. – 45

उपर्युक्त स्थलों में वर्णित गणपति मूर्ति के चारों हाथों के लक्षण इस प्रकार हैं –

प्राप्ति स्थान	प्रति0सं0	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
थनवारा	1	खण्डित	खण्डित	खण्डित	खण्डित
थनवारा	2	स्वदन्त	परशु	मोदक पात्र	त्रिशूल
दैलवारा	1	स्वदन्त	अस्पष्ट	मोदक पात्र	अस्पष्ट
पनारी	1	स्वदन्त	परशु	सर्प	मोदक पात्र
मसौरा	1	परशु	स्वदन्त	सर्प	मोदक पात्र
	2	जंघे पर रखे	परशु	जंघों पर रखे	अंकुश
	3	खण्डित	खण्डित	खण्डित	खण्डित
मुहारा	1	खण्डित	खण्डित	खण्डित	खण्डित
	2	वरदमुद्रा	परशु	मोदकपात्र	सर्प
साकरवार	1	वरदमुद्रा	परशु	सर्प	मोदकपात्र
सिरसी	1	परशु	परशु	मोदकपात्र	स्वदन्त

यदि खजुराहों ओर झाँसी जनपद से प्राप्त गणपति मूर्तियों के हाथों के लक्षणों से इनकी तुलना की जाये, तो ये दोनों ही क्षेत्रों की मूर्तियां साम्य रखती हैं। ललितपुर–जनपद में प्राप्त कुछ मूर्तियां अपने तीसरे हाथ में मोदक–पात्र लिये हुये हैं, तो कुछ में चौथे हाथ में।

आसनस्थ मुद्रा वाली गणेश की मूर्तियां जनपद–जालौन में बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई, पातालेश्वर मन्दिर, गणेश मन्दिर, पाहूलाल देवालय, विहारी जी के मन्दिर, कालपी और गोविन्देश्वर मन्दिर जालौन, महाकालेश्वर मन्दिर कोंच आदि में देखी जा सकती हैं[1]।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय में पाषाण पत्रक पर उत्कीर्ण मूषकासीन गणेश एवं पीतल की बनी कमलासीन चतुर्भुजी गणेश की मूर्ति अद्वितीय है। ये मूर्तियां क्रमशः 16 वीं शताब्दी और आधुनिक काल की हैं। आधुनिक समय की ही एक और गणेश प्रतिमा देखी गई है जिसमें गणेश राजलीलासन मुद्रा में विराजमान हैं। ये प्रतिमा कालपी से प्राप्त हुई है[2]। ये भी मूर्तियां चतुर्भुजी हैं। पातालेश्वर मन्दिर में राजलीलासन मुद्रा में विराजमान चतुर्भुजी श्री गणेश की सुन्दर मूर्ति है और गणेश मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की सुन्दन मूर्ति है और गणेश मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की दो प्रतिमायें मिली हैं जिनमें 16x12 इंच वाली मूर्ति में वह पद्मासन मुद्रा में बैठे हुये हैं और दूसरी

1. पुरवार, हरीमोहन 'जालौन जनपद में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 16–30
2. कालपी में पुरूष रूप में नाग फन पर सवार गणेश की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। देखिए कुरेशी, नईम, बुन्देलीविरासत (ग्वालियर, 1991) पृ0 72

मूर्ति में राजलीलासन मुद्रा में बैठे हैं जो कि 14x8.8 इंच की है। ये दोनों ही प्रतिमायें संगमरमर की बनी हुई हैं। संगमरमर की ही एक प्रतिमा पाहूलाल देवालय में भी प्राप्त हुई हैं इसके अतिरिकत कालपी के ही विहारीजी के मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की एक मूर्ति 15 वीं शताब्दी की प्राप्त हुई है जिसमें वह अपने वक्रतुण्ड रूप में प्रदर्शित है। गोविन्देश्वर मन्दिर, जालौन की चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा पत्थर से निर्मित है जो कि दीवार में जड़ी है। इसमें श्रीगणेश कमलासन में विराजमान है[1]। कोंच के महाकालेश्वर मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की दो प्रतिमायें हैं जिसमें से एक पद्मासीन है और दूसरी मूषकासीन। इन गणेश प्रतिमाओं में भुवनेश्वर के मन्दिरों में निर्मित गणेश–प्रतिमा शिल्प की समस्त विशेषतायें देखने को मिलती है।

इसके अतिरिक्त अजयगढ़ के दुर्ग[2] के उत्तरी द्वार में प्रवेश करने के बाद द्वितीय द्वार के पश्चिम में एक शैलोत्कीर्ण अभिलेख है। यहां गणेश की अनेक आसन मूर्तियां हैं जिनमें वह अपने समस्त परिवार के साथ विराजमान हैं। यहाँ श्रीगणेश की चतुर्भुजी मूर्तियों के अतिरिक्त षडभुजी और अष्टभुजी मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। यहां के अनेक शैलोत्कीर्ण लेख चन्देल वंश के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं अतः स्पष्ट है कि यहां कि मूर्तिकला चन्देल परम्परा की ही द्योतक है। आसनस्थ मुद्रावली गणेश की मूर्तियां उदयपुर एवं इन्दौर संग्रहालयों में तथा हम्पी (बेलारी, कर्नाटक) में भी देखी जा सकती है[3]। उदयपुर संग्रहालय वाली प्रतिमा अमझरा नामक स्थान से मिली है। इन्दौर संग्रहालय वाली चतुर्भुजी प्रतिमा में वही लक्षण देखने को मिले जो प्रायः बुन्देलखण्ड के विभिन्न अंचलों में प्राप्त गणपति मूर्तियों में मिलते हैं। उदयपुर की गणेश मूर्ति द्विभुजी होने के साथ ही कुछ भिन्न लक्षण दर्शाती हैं। वह अपने दाएं हाथ में मूली और बाएं में मोदकपात्र लिये हुये हैं। अतः दाएं हाथ का लक्षण बुन्देलखण्ड क्षेत्र में देखने को नहीं मिलता है।

नृत्यत् गणेश मूर्तियां

गणेश की नृत्य मूर्तियां पूर्व गुप्तकाल से ही बननी प्रारम्भ हो गई थी परन्तु गुप्तकाल तक आते–आते उनका प्रयोग और अधिक बढ़ गया। मथुरा संग्रहालय में पूर्व गुप्तकालीन एक नृत्य गणपति मूर्ति प्राप्त हुई है[4]। पूर्व मध्यकाल या प्रतिहार काल से गणेश की नृत्य मुद्रा वाली प्रतिमाओं का अंकन अधिक लोकप्रिय हो गया था[5]। प्रतिहारों की शक्ति का अन्त होने पर गाहवालवंशीय

1. पुरवार, हरीमोहन–जालौन जनपद में श्री गणेश के विविध स्वरूप पृ0 21–22
2. अयोध्या प्रसाद 'कुमुद' 'सुरम्य बुन्देलखण्ड' पृ0 77, इस दुर्ग में नृत्यगणेश की भी मूर्ति प्राप्त हुयी है – देखिए, कुरेशी, पूर्वोद्घृत पृ0 63
3. गणपति विशेषांक – पृ0 –101
4. Agrawal V.S. "A Catalogue of the Brahmanical Images in matheura Art.. पृ0 138
5. गणपति विशेषांक – पृ0 101

नरेशों ने वर्तमान उत्तरप्रदेश के विशाल भू–भाग पर शासन किया तथा अपनी कीर्ति के लिये अनेकां मन्दिरों का निर्माण कराया, जिन्हें बाद में मुसलमानी शासकों ने पूर्णतया नष्ट कर दिया। इस वंश की कला के अब थोड़े ही उदाहरण शेष बचे हैं। इनमें सम्भवतः सबसे प्रमुख कमपिल्ल, जिला फर्रूखाबाद से प्राप्त नृत्यगणपति की मूर्ति है, जो अब राज्य, संग्रहालय लखनऊ में है और 12वीं शताब्दी की मूर्तिकला का सुन्दर उदाहरण है[1]। इस प्रकार भारत के अन्यत्र क्षेत्रों की भांति बुन्देलखण्ड के भी कुछ भागों में गुप्तकाल से लेकर प्रतिहारकाल और चन्देलकाल की नृत्य गणपति प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो दो भुजी, चतुर्भजी, अष्टभुजी, दसभुजी, बारह भुजी, सोलह भुजी एवं बीस भुजी हैं। ये हजारों की संख्या में समय समय पर निर्मित हुई थीं। शास्त्रों में नृत्य–गणपति की अष्टभुजी प्रतिमाएं मान्य हैं। उनके सात हाथों में पाश, अंकुश, मोदक, कुठार, दन्त, वलय तथा अंगुलीय हैं। तथा आठवां हाथ उन्मुक्त लटक कर विविध नृत्य मुद्राओं के प्रदर्शन में सहायक हैं।

बुन्देलखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में अष्टभुजी गणेश की मूर्ति अवश्य मिली है, लेकिन उनके हाथों के लक्षणों में कुछ भिन्नतायें देखी गई हैं। बुन्देलखण्ड में खजुराहों में द्विभुजी नृत्यगणपति की एक प्रतिमा, चतुर्भुज नृत्य–गणपति की चार प्रतिमायें अष्टभुजी नृत्य गणपति की चार प्रतिमायें , दसभुजी नृत्य गणपति की तीन प्रतिमायं, वारह भुजी नृत्त गणपति की चार प्रतिमायें षोड्श भुजी नृत्त गणपति की दो प्रतिमायें तथा चांदपुर दुधई में प्राप्त चतुर्भुजी नृत्त गणपति की तीन प्रतिमायें (एक चांदपुर के मन्दिर और शेष दो रानी महल झांसी संग्रहालय में है) अष्टभुजी नृत्य गणपति की चार प्रतिमायं, दसभुजी नृत्त गणपति की एक प्रतिमा एवं षोड्श भुजी नृत्य गणपति की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है।

इन स्थानों के अतिरिक्त ललितपुर जनपद के विभिन्न स्थानों से भी गणेश की नृत्य प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं इनमें अधिकांश मूर्तियां चतुर्भुजी हैं लेकिन कुछ स्थानों पर अष्टभुजी और अष्ट दशभुजी मूर्तियां भी हैं। राजकीय संग्रहालय झांसी में संग्रहीत नृत्य–मूर्तियों में गणेश की चतुर्दश भुजी मूर्ति विशेष रूप से उल्लेख नीय है। जनपद–जालौन में भी गणेश की नृत्य–मूर्तियां मिली हैं। जो विशेषतः द्विभुजी और अष्टभुजी हैं। ये मूर्तियां बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई और यहां के मन्दिरों में द्रष्टव्य हैं। बुन्देलखण्ड कुछ अन्य क्षेत्रों में भी गणेश की नृत्य मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इन नृत्य गणपति मूर्तियों का वर्णन इस प्रकार है –

द्विभुजी नृत्य प्रतिमायें – खजुराहो में द्विभुजी नृत्य गणेश की एक मूर्ति अवश्य मिली है लेकिन यह स्वतंत्र रूप में नहीं हैं इसमें वह एक शिलापट्ट पर वीरभद्र और सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य

1. कल्याण, गणेश अंक –पृ0 415

करते हुये प्रदर्शित हैं[1]। बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में द्विभुजी नृत्य गणेश की तीन प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो क्रमशः 16वीं 12वीं और 6वी शताब्दी की हैं। इनमें 16वीं शताब्दी की मूर्ति ओरछा और 6वीं शताब्दी की मूर्ति अकबरपुर इटौरा से प्राप्त हुई है[2]। इनमें हाथों की विशेषतायें इस प्रकार हैं

प्राप्ति स्थान	समय	पहला हाथ	दूसरा हाथ
खजुराहो	चन्देलकालीन	पद्म (एकदंत)	कट्यवलम्बित
बुन्देलखण्ड संग्र0	16वींशती	फरसा	लड्डू
बुन्देलखण्ड संग्र0	12वीं	नृत्य मुद्रा में	नृत्यमुद्रा में
बुन्देलखण्ड संग्र0	6वीं नृत्यमुद्रा में	नृत्यमुद्रा में	नृत्यमुद्रा में

चतुर्भुजी गणेश – खजुराहो में चतुर्भुजी नृत्य गणेश की दो[3] प्रतिमायें ऐसी हैं जिसमें वह नृत्य करने की मुद्रा में अतिभंग में खड़े हैं। जबकि एक अन्य प्रतिमा[4] में कुछ अलग विशेषतायें पायीं गई हैं। इसमें श्रीगणेश की नृत्य मुद्रा बड़ी ही प्रभावशाली दिखलाई पड़ती है। प्रतिमा खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर से प्राप्त हुई हैं इस प्रतिमा के हाथों के लक्षण उपर्युक्त मूर्तियों से भिन हैं। एक अतिरिक्त प्रतिमा[5] में उपर्युक्त मूर्तियों के विपरीत कुछ अतिरिक्त चित्रण भी देखे गये। गणेश के दाएं पार्श्व में मृदंग और वंशी बजाते दो अनुचरों की छोटी आकृतियां अंकित हैं। देवता के बाई ओर का पादपीठ खण्डित है, इस ओर भी कुछ वाद्ययन्त्रों को बजाते हुये अनुचर उत्कीर्ण रहे होंगे। हाथो के लांछन इस प्रकार हैं –

प्रतिमा सं0	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
2	स्वदन्त	परशु (दण्ड हस्तमुद्रा)	अस्पष्ट	बड़ा मोदक
34	परशु	दण्ड हस्त मुद्रा	मोदक–पात्र	कट्यवलम्बित
17	मोदक–पात्र	नाग पकड़े	नगा पकड़े	कट्यअवम्वित
30	खण्डित	खण्डित	खण्डित	मोदक पात्र

दुधई–चांदपुर से प्राप्त प्रतिमाओं में चांदपुर की एक चतुर्भुजी नृत्य प्रतिमा तालाब के समीप स्थित सहस्त्र लिगेश्वर मंदिर की चहारदीवारी में बाई ओर निर्मित गणेश के लघु–मंदिर में सुशोभित है[6]। इस प्रतिमा के दाहिने हाथों में ऊपर का हाथ नृत्य–मुद्रा में वक्ष पर स्थित है तथा नीचे वाले हाथ में कपित्थ (कैथाफल) है जबकि बायें ऊपर वाले में अंकुश शोभायमान है एवं नीचे

1. अवस्थी, रामाश्रय – 'खजुराहों की देवी प्रतिमायें पृ0 –42
2. जालौन – जनपद में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 25,27
3. लक्ष्मण मन्दिर और विश्वनाथ मन्दिर से प्राप्त
4. खजुराहों संग्रहालय – संख्या –1108
5. खजुराहों के कन्दरिया मन्दिर से प्राप्त – 'खजुराहो की देव प्रतिमायें'
6. वर्मा, महेन्द्र – 'चन्देलकालीन कला ओर संस्कृति' पृ0 – 53

वाले हाथ अभय मुद्रा में सुशोभित हैं। रानी महल, झांसी संग्रह में एक प्रतिमा दुधई और दूसरी चांदपुर से प्राप्त हुई है[1]। दुधई वाली प्रतिमा में उनके बायीं ओर वांसुरी वादक की आकृति अंकित है जबकि चांदपुर वाली प्रतिमा में तो अधोभाग ही नष्ट हो गया हैं हाथों के लक्षण ये हैं –

प्रतिमा सं0	प्राप्ति	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
14	दुधई	मोदक	दण्ड	नृत्य मुद्रा में	अंकुश
479	चांदपुर	त्रिशूल	वक्ष पर	खण्डित	सर्प

राजकीय संग्रहालय झांसी[2] से भी एक चतुर्भुजी नृत्य गणेश प्रतिमा प्राप्त हुई है यह सीरोनखुर्द से प्राप्त हुई है तथा 11 वीं शताब्दी की है। यह प्रतिमा बालू पत्थर से निर्मित है। इसमें उनके ऊपरी दाहिने हाथ में परशु का एक भाग ही प्रदर्शित है जबकि हाथ खण्डित अवस्था में है निचला दाहिना हाथ नृत्यमुद्रा में है। बाएं तरफ वाले हाथ में कमल की कली और नीचे बाएं हाथ में लम्बी फूलों की माला धारण किये हुये तथा उनके बाएं तरफ ही बैठा हुआ एक सेवक भी माला को लिये हुये हैं श्रीगणेश प्रतिमा के दोनों ओर बने खम्भे विभिन्न पट्टियों से सुसज्जित हैं।

ललितपुर जनपद में चतुर्भुजी नृत्य गणपति प्रतिमायें अंधियारी, घिसौली, जखौरा, थनवारा दैलवारा, रसोई, लागौन, सीरोन खुर्द, सिरसी आदि से प्राप्त हुई है[3]। इन स्थानों में से थनवारादैलवारा और सिरसी से गणेश की आसनस्थ मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं।

अँधियारी[4] जो ललितपुर–जखौरा राजमार्ग पर स्थित है और ललितपुर से लगभग 15 कि0मी0 की दूरी पर पड़ता है यहीं पर आधुनिक दुर्गा मन्दिर के पीछे बने एक हनुमान मन्दिर की दीवाल के आले में चतुर्भुज गणपति की नर्वन रत प्रतिमा स्थापित है।

घिसौली[5] ललितपुर से लगभग 28 किलोमीटर ओर जखौरा विकासखण्ड मुख्यालय से पश्चिम में 3 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है। इसी गांव के एक सरोवर के किनारे स्थित आधुनिक मठिया में चतुर्भुजी नृत गणेश की प्रतिमा स्थापित है जो कि 12 वीं शताब्दी की है।

बाँसी राजघाट मार्ग पर स्थित जखौरा गांव[6] के मजरा बरौदा स्वामी के अन्तर्गत विनयकाटोरन नामक स्थान पर एक छोटी सी पहाड़ी है। इसी के ऊपर लगभग 12वीं शताब्दी की

1. वही, 53, 54
2. Trivedi, S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-60
3. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट (1988–89)
4. वही पृ0 1
5. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट पृ0 4
6. वही पृ0 5

चतुर्भुजी नृत्य प्रतिमा स्थापित है। इसी गणपति प्रतिमा के समीप अन्य मध्यकालीन खण्डित प्रतिमाएं भी रखी हुई हैं।

थनवारा गांव[1] के दक्षिणी भाग में एक देवस्थली में गणेश की दो नृत्य प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। यह प्रतिमायें लगभग 11वीं शताब्दी में निर्मित जान पड़ती हैं। इनमें पहली प्रतिमा का माप 0-70x0-54 मी0 और दूसरी प्रतिमा 0-57x0-40 मी0 की है।

दैलवारा गाँव[2] में बने हुए एक शिव–मंदिर की रथिकाओं में किसी मध्यकालीन देवालय की लगभग 12वीं शताब्दी की मूर्तियों में नृत्य गणेश की चतुर्भुजी मूर्ति भी प्राप्त हुई है जिसका माप 0.50 मी x0-44 मी0 है।

सीरोन खुर्द से पूर्व दिशा में लगभग 2 कि0मी0 कच्चे मार्ग पर चलकर ग्रामसभा सतगता के अन्तर्गत मजरा रसोई[3] स्थित है। इस गांव के बीच में दुर्गा जी नामक प्रसिद्ध स्थल पर बने ऊँचे चबूतरे पर दीवारों के सहारे कुछ प्रतिमायें प्रतिष्ठापित हैं जिनमें महिषासुद मर्दिनी दुर्गा की प्रतिमा के पार्श्व में नर्तन करते गणेश की एक प्रतिमा अत्यन्त कलात्मक है।

जखौरा से 11 कि0 मी0 तथा ललितपुर से 29 कि0मी0 की दूरी पर लागौन गांव[4] स्थित है इस गांव के बीच में एक नीम के पेड़ के नीचे लगभग 12वी. शताब्दी की नर्तनरत चतुर्भुजी गणपति प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

ललितपुर से उत्तर पूर्व में लगभग 33 कि0मी0 की दूरी पर स्थित सीरोन–खुर्द[5] गांव है। इसी गांव के पूर्वोत्तर दिशा में एक आधुनिक हनुमान मन्दिर बना हुआ है। इसी मन्दिर के सामने बनी चहारदीवारी की एक दीवार में चतुर्भुज नृत्य गणेश की मूर्ति दर्शनीय है ये मूर्ति सीमेंट से जड़ी हुई हैं इसी बावली के थोड़ी दूर पर हरदौल नामक स्थान पर नृत्य गणपति की चतुर्भुजी प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

ललितपुर–जनपद के स्थलों में प्राप्त चतुर्भुजी नृत्य गणेश प्रतिमा के हाथों की विशेषतायें इस प्रकार देखने को मिली–

प्राप्ति स्थल	पहला हाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
घिसौली	खण्डित	खण्डित	सर्प	खण्डित

1. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट पृ0 8
2. वही, पृ0 10
3. वही पृ0 24
4. वही पृ0 24–26
5. वही पृ0 34

जखौरा	नृत्य मुद्रा में वक्षपर	स्वदन्तयुक्त	खण्डित	परशु
थनवारा	नृत्यमुद्रा में वक्षपर	स्वदन्तयुक्त	सर्प	मोदक पात्र
खण्डित	खण्डित	खण्डित	खण्डित	
दैलवारा	परशु	स्वदन्त	कटिहस्त	सर्प
रसोई	परशु	नृत्यमुद्रा	खण्डित	खण्डित
लागौन	स्वदन्त	परशु	सर्प	खण्डित
सीरोनखुर्द	नृत्यमुद्रा वक्षपर	स्वदन्त	नृत्यमुद्रा कटिपर	खण्डित
सिरसी	परशु	स्वदन्त	नृत्यमुद्रा	मोदकपात्र

इसके अतिरिक्त अजय गढ़ दुर्ग के द्वितीय द्वार के पश्चिम में भी चतुर्भुजी नृत्य गणेश की एक मूर्ति प्रदर्शित है। लेकिन जनपद–जालोन में चतुर्भुजी नृत्य गणपति की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

षड्भुजी नृत्य गणपति की प्रतिमा बहुत ही कम मिली है। केवल राजकीय संग्रहालय, ललितपुर जनपद के अन्तर्गत सीरोन और अजयगढ़ दुर्ग में ही देखी गई हैं राजकीय संग्रहालय, झाँसी वाली प्रतिमा[1] में गणेश अपने ऊपरी दाहिने हाथों में कमल की बोड़ी और फरसा लिये है जबकि निचला हाथ नृत्य मुद्रा में है। बायें तरफ के ऊपरी दोनों हाथों में घंटा और लड्डू लिये हुये हैं जबकि निचला हाथ खण्डित है। श्रगणेश मूर्ति के पैरों के नीचे प्रदर्शित चूहा भी नृत्य मुद्रा में है। और उसी का साथ देता हुआ एक अन्य चूहा मृदंग बजाता हुआ प्रदर्शित हैं श्रीगणेश की यह मूर्ति अलंकरित है और उनके मस्तक के पीछे चारों ओर प्रभामण्डल बना हुआ है। बालू पत्थर से निर्मित यह प्रतिमा 10वीं शताब्दी की है ओर सीरोन खुर्द से प्राप्त हुई है।

ललितपुर जनपद के अर्न्तगत स्थित सीरोन के ध्वंसावशेषों में एक षड्भुजी नृत्य गणेश की मूर्ति बारहवीं सदी की प्राप्त हुई है[2]। इस प्रतिमा में दाहिनी ओर के दो हाथ खंडित हैं। शेष ऊपरी भुजा तथा बाई ओर की ऊपरी भुजा दोनों से गणपति को वस्त्र पकड़े हुए बताया गया है। बाई ओर की शेष दो भुजाओं में से एक में मोदक युक्त पात्र प्रदर्शित है, जबकि दूसरी भुजा कट्यावलम्बित मुद्रा में है। अजयगढ़ दुर्ग की षड्भुजी नृत्य प्रतिमा[3] लेख युक्त है। यह मूर्ति अत्यधिक सुन्दर है और कलात्मक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कृति कहीं जा सकती है। श्रीगणेश मूर्ति

1.Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-58
2. वर्मा, महेन्द्र – 'चन्देल शिल्प में संगीत और नृत्य पृ0 25
3. अयोध्या प्रसाद 'कुमुद' 'सुरम्य बुनदेलखण्ड' पृ0 –77

अजयगढ़ दुर्ग के मुख्य प्रवेश द्वार पर जैन मन्दिर के समीप ही थोड़ी ही दूरी पर स्थित है। स्तम्भ स्वरूप इस गणेश मूर्ति के साथ ब्रह्मा और विष्णु आदि देवों की मूर्तियां भी स्तम्भ में देखी गयी है। अन्यत्र भी षड्भुजी नृत्य गणेश की मूर्तियां हैं जिनमें कन्नौज[1] से प्राप्त दो प्रतिहारकालीन नृत्य मूर्तियां प्रमुख है। ये मूर्तियां लगभग 8वीं शताब्दी की है। इनमें कन्नौज क्षेत्र के कम्पिल से प्राप्त मूर्ति अत्यन्त सुन्दर और अनूठी है। इसमें उनके दोनों पैरों के घुटने नृत्य करते हुयेइस प्रकार झुके हुये हैं मानों वह तालों पर थिरक रहे हों। उनके दोनों ओर दो–दो वादक संगीतज्ञ भी हैं। एक षड्भुजी नृत्य गणेश की प्रतिमा नेपाल[2] से भी प्राप्त हुई है जो वर्तमान समय में कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। कांस्य की यह गणेश मूर्ति एक चैत्याकार फ्रेम के भीतर निर्मित है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अष्टभुजी नृत्य प्रतिमायें अन्य प्रतिमाओं की अपेक्षा अधिक प्राप्त हुई है। गणेश की नृत्य मूर्तियां अष्टभुजी ही बननी चाहिये[3]। इसी नियम का पालन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बहुतायत से हुआ है। इनमें से कुछ मुख्य प्रतिमाओं का उल्लेख इस प्रकार है।

रानी महल, झाँसी संग्रह में अष्टभुजी नृत्य गणेश की चार प्रतिमायें संग्रहीत हैं जो दो दुधई और दो चांदपुर से प्राप्त हुई है। दुधई से प्राप्त पहली प्रतिमा[4] में उनके पैरों का निचला भाग नष्ट है। इसमें वह अधिक सुसज्जित नहीं है पर नाग यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं। दायीं ओर के हाथों में एक हाथ कटिहस्त मुद्रा में है, दूसरे में पुस्तक, तीसरे में मोदक और चौथे में परशु है। दायी ओर के हाथों में एक में अंकुश है दूसरा हाथ नृत्य मुद्रा में कंधे के समानान्तर जाकर वक्ष से सटा हुआ है। शेष दोनों हाथ नष्ट हो चुके हैं। दूसरी प्रतिमा[5] जो चांदपुर से प्राप्त हुई है।, नाग यज्ञोपवीत धरण किये हुये हैं। दाहिने तरफ से हाथों में पहला हाथ कटिहस्त मुद्रा, दूसरे में अस्पष्ट आयुध और शेष दो खण्डित है। बायें तरफ पहला हाथ पैर के घुटने पर स्थित और अन्य शेष हाथ खण्डित है। दाहिनी ओर मृदंग–वादिका है व बायी ओर अस्पष्ट आकृति अंकित हैं। चांदपुर से ही प्राप्त एक अन्य प्रतिमा[6] भी दुधई से प्राप्त प्रतिमा के समान ही खण्डित हैं। इसमें भी उनका अलंकरण साधरण है। दायें हाथों में एक हाथ कटिहस्त मुद्रा में है शेष हाथ टूट गये हैं। बायीं ओर के हाथों में एक में त्रिशूल है व दूसरा हाथ नृत्य मुद्रा में कुहनी के समानान्तर उठकर नीचे बायें वक्ष से सटा हुआ है। शेष हाथ नष्ट हैं शीर्ष के ऊपर अंकित दो विद्याधरों उनके पास दोनों ओर

---

1. गणपति विशेषांक पृ0 101–102
2. वही, पृ0 103
3. देखिये Elemanrs of Hindu Iconography, Vol. I.p.52 ff
4. वर्मा महेन्द्र, चंदेलकालीन कला और संस्कृति (चांदपुर दुधई) के परिप्रेक्ष्य में) पृ0 52, . प्रतिमा संख्या –16
5. रानी महल, झांसी संग्रहालय, प्रतिमा संख्या – 9
6. वही, प्रतिमा संख्या –6

वीणा धारिणीयों एवं नृत्याकृतियों तथा कलात्मक प्रभा मण्डल के कारण मुख्य प्रतिमा का आकर्षण ओर अधिक बढ़ जाता हैं रानी महल की अन्तिम अष्टभुजी नृत्य मूर्ति दुधई[1] की है। यह मूर्ति भी उपर्युक्त गणपति मूर्तियों के समान ही है। दाहिने हाथों में एक हाथ कटिहस्त मुद्रा में है दूसरे में मोदक है। शेष दोनों हाथ टूटे हैं बायें हाथों में एक में खड्ग है व दूसरे में अस्पष्ट आयुध है एवं शेष दोनों हाथ नष्ट हैं। मुख्य प्रतिमा के ऊपर मकर मुख ओर गगनचारी की आकृतियां अंकित हैं।

उपर्युक्त वर्णित गणपति प्रतिमाओं में से दो प्रतिमाओं के बायें हाथ का दूसरा हाथ उसी प्रकार नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित है जिस प्रकार शास्त्रों के आधार पर डा० राव ने अष्टभुजी नृत्य प्रतिमा के लिये उल्लिखित किये हैं। उनके अनुसार श्रीगणेश की अष्टभुजी नृत्य मूर्ति का शेष एक हाथ उन्मुक्त लटक कर विविध नृत्य मुद्राओं के प्रदर्शन में सहायक होना चाहिए।

अष्टभुजी नृत्य गणेश की विशालतम प्रतिमा खजुराहों संग्रहालय में प्राप्त हुई है[2]। इस तरह की यहां पांच प्रतिमाएं प्राप्त हुई है। पहली प्रतिमा अत्यधिक विशाल है जिसमें वह अतिभंग में खड़े हैं। उनके आठ हाथों में पहले हाथ का पदार्थ अस्पष्ट, दूसरे में परशु, तीसरा दण्ड–हस्त मुद्रा, चौथे और पांचवे हाथों से एक नाग पकड़े हुये अपने सिर के ऊपर उठाये हुये हाथ में दन्त और सातवें में मोदक–पात्र और आठवां कटिहस्त है। इस मूर्ति का पादपीठ खण्डित है और अलग रखा हुआ है जिसके एक ओर दो मृदंगों को बजाता हुआ एक पार्श्वचर चित्रित है तथा दूसरी ओर एक सेवक दोनों हाथों से मृदंग बजाता हुआ चित्रित है।

अष्टभुजी नृत्य गणपति की दूसरी प्रतिमा[3] भी मूर्ति–कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं इसमें वह सर्पयज्ञोपवीत धारी, शूर्पकर्ण और एकदन्त है। उनकी पहली भुजा में दन्त, दूसरे में अस्पष्ट लांछन तीसरे में कुंडलित कमलनाल, चौथे में परशु ओर पांचवे में सर्प शोभायमान है। उनका छठा हाथ टूटा, सातवां कटि के पास नृत्य–मुद्रा और कट्यावलम्बित अवस्था में है। इस प्रतिमा की विशेष शोभा प्रदर्शित मृदंग करताल आदि बाद्यों को बजाने वाले वादकों तथा सिर के पीछे, शेभित शिरश्चक्र जिसके दोनों ओर विद्याधरों के एक–एक युगल और प्रभावली के दोनों ऊपरी कोनों पर खड़ी हुई वीणा–वादन में तल्लीन एक–एक देवी की प्रतिमा से अधिक बढ़ गई है।

तीसरी मूर्ति[4] भी अत्यधिक सुन्दर है। यह मूर्ति भी उपर्युक्त मूर्तियों के समान अलंकृत है। उनका तीसरा हाथ दण्ड–हस्त मुद्रा और अन्य तीन हाथ खण्डित है। पांचवे हाथ में नाग की

1. रानी महल, झांसी संग्रहालय, प्रतिमा संख्या 364
2. अवस्थी, रामाश्रय, 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 43
3. प्रतिमा संख्या –5 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 52
4. वही – 19

पूंछ है और छठा भग्न है। सातवे में मोदक–पात्र है और आठवां कट्यवलम्बित हैं इसमें भी मृदंग बजाता हुआ सेवक प्रदर्शित है।

चौथी मूर्ति[1] में कलाकार को पूर्ण सफलता मिली है इसमें शौर्य के साथ नृत्य करते गणेश अतिभंग में खड़े हुये हैं। वैसे तो इस मूर्ति में अलंकरण उपर्युक्त मूर्तियों के ही समान है लेकिन इसमें वह नाग–यज्ञोपवीत धारण नहीं किये हुये हैं। उसमें उनके पहले हाथ में कुठार, दूसरे में व्याख्यान–मुद्रा, तीसरे में दण्ड–हस्त मुद्रा चौथे और पांचवें में नाग पकड़े हुये छठवें में दन्त ओर सातवें में मोदक पात्र और आठवें में नीचे लटकता हुआ एक वस्त्र धारण में मोदक पात्र और आठवें में नीचे लटकता हुआ एक वस्त्र धारण किये हुये हैं। पांचवी मूर्ति[2] उपर्युक्त मूर्तियों के ही समान है।

खजुराहो की अष्टभुजी नृत्य प्रतिमा के सदृश ही मूर्तियां अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुई है। इनमें उड़ीसा की मूर्ति[3] हलेविद होयसलेश्वर के मन्दिर की अष्टभुजी मूर्ति[4] ओर बंगाल की अष्टभुजी नृत्य–मूर्ति[5] विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

जनपद–जालौन में अष्टभुजी नृत्य मूर्ति बहुत ही कम मिली है। केवल दो ही मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो मन्सिल माता, उरई ओर कोंच गढ़ी में प्रदर्शित है। मन्सिल माता वाली प्रतिमा के पहले हाथ में फरसा ओर दूसरे में गदा ग्रहण किये हुये हें अन्य हाथों के पदार्थ स्पष्ट नहीं है। सम्भवत शास्त्रीय नियमानुसार एक हाथ नृत्यमुद्रा में अवश्य प्रदर्शित होगा। यह मूर्ति 10वीं शताब्दी की है[6]। 9 वीं–10वीं शदी की दो नृत्य गणपति की प्रस्तर प्रतिमाएं अमर पाटन एवं चौसठ योगिनियों के मन्दिर, भेड़ा घाट में भी विद्यमान है[7]। ये दोनों प्रतिमायें मन्सिल माता वाली गणेश नृत्य मूर्ति से नहीं बल्कि खजुराहो से मिली नृत्यगणपति की प्रतिमाओं से काफी साम्य रखती हैं और चेदि–काल के अनुपम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त कोंच गढ़ी पर स्थित प्रतिमा 17वीं शताब्दी की है। यह मूर्ति खजुराहों और चांदपुर–दुधई से प्राप्त अष्टभुजी नृत्य मूर्तियों से पूर्णतया भिन्न है। मराठाकालीन इस मूर्ति में प्रतिहार और चन्देलों की शैली को बहुत ही कम अपनाया हैं इस मूर्ति में इन शैलियों की भांति न नाग का यज्ञोपवीत धारण किये हुये है और न

---

1. प्रतिमा संख्या –3 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 52
2. प्रतिमा संख्या, 12 वही
3. Ray, H.C. "The Dynastic History of Northern India p. 360-61 Vol. II Calcutta, 1936
4. RAO, T.A.G. Elements of Hindu Iconography, 2 Vols, Madras 1914-16, p. 66-67
5. Granguly M. Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya sahitya parishad in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad . P.- 81-82
6. पुरवार हरीमोहन – 'जनपद जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप' पृ0 –17

7 वही

ही विभिन्न आभूषणों से अलंकृत है। केवल वह फलों से गुथी हुई माला ही धारण किये हुये हैं। उनकी मूर्ति के दायें और बायें वादयुक्त अनुचर न होकर, उनका परिवार प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त अजयगढ़ दुर्ग की गणेश की शैलोत्कीर्ण अष्टभुजी लेख युक्त मूर्ति प्रतिमा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। यह मूर्ति चंदेल कालीन है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दशभुजी मूर्तियां केवल खजुराहों और चांदपुर में भी देखी गई हैं। खजुराहों में इस तरह की तीन और चांदपुर में केवल एक मूर्ति दृष्टव्य है जो रानी महल संग्रहालय मे प्रदर्शित हैं। खजुराहो की पहली मूर्तियों[1] दशभुजी मूर्तियों में श्रेष्ठ हैं। इस प्रतिमा में गणेश करण्ड–मुकुट, सर्प यज्ञोपवीत तथा अन्य सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। उनकी सूंड तथा दाहिनी ओर के पहले व दूसरे हाथ टूट गये हैं। शेष आठों हाथों में तीसरा हाथ तर्जनी हस्त–मुद्रा में है। चौथा हाथ दन्त युक्त है। पांचवे ओर छठवें हाथों से पकड़े हुए एक नाग को सिर के ऊपर उठाये हुये प्रदर्शित है। सातवां हाथ अभय मुद्रा में है। आठवां हाथ पद्म धारी है एवं नवां एवं दसवां हाथ दोनों ही नीचे की ओर लटके हुए है, जिनकी उंगलियां नृत्य–मुद्रा में हैं। उनके दोनों ओर वाद्ययन्त्र मृदंग, करताल, वंशी आदि से युक्त सेवक और पैरों के नीचे चूहा भी नृत्य, करताल, वंशी आदि से युक्त सेवक और पैरों के नीचे चूहा भी नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित हैं। पादपीठ के दायें–बायें कोनों पर एक–एक पुष्पमालाधारिणी खड़ी चित्रित है।

देवता के सिर के पीछे शिरश्चक्र और प्रभावली के ऊपरी ओर के दोंनों कोंनों में एक–एक देवी शोभायमान है। एक चतुर्भुजी देवी का एक हाथ अभय मुद्रा में है, जबकि शेष तीन हाथों में कमल नाल पुस्तक और अमृतघट शोभित हैं। दूसरी वीणा रहित तथा अन्य लांछनों से युक्त देवी है।

चांदपुर[2] से प्राप्त दशभुजी नृत्य प्रतिमा उपर्युक्त खजुराहों वाली मूर्ति के समान अलंकृत नहीं है। उनके दाहिने हाथों में एक हाथ कटिहस्त मुद्रा में है। शेष हाथ नष्ट हो चुके हैं। बायें एक हाथ में परशु है व अन्य एक हाथ से स्वदंत पकड़े हुये हैं। शेष हाथ नष्टा वस्था में है। आलेखन युक्त पादपीठ पर मृदंगधारी एवं मजीरा वादक की सुन्दर आकृतियों प्रदर्शित हैं।

इसके अतिरिक्त खजुराहों की शेष दो दशभुजी मूर्ति खजुराहों की पहली मूर्ति के ही सदृश हैं। दूसरी वाली मूर्ति[3] की प्रभावली में अंकित भारती वीणाधारिणी हैं तथा श्री पद्म तथा

---

1. प्रतिमा संख्या –33 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 –53
2. प्रतिमा संख्या –8 'रानी महल, झांसी संग्रहालय
3. प्रतिमा संख्या – 38 ' खजुराहों की देव–प्रतिमाएं' पृ0 –53

अमृतघट लिए हैं। दोनों खड़ी नहीं वरन् ललितासन में बैठी अंकित हैं। प्रभावली के केन्द्र में विद्याधरों का एक युगल भी चित्रित है। तीसरी प्रतिमा[1] भी इसी प्रकार है, किन्तु यहां वंशी और मृदंग बजाने में तल्लीन दो पार्श्वचर और नृत्य करता हुआ वाहन मूषक भी प्रदर्शित है। दो हाथों को छोड़कर इसके शेष सब हाथ टूटे हैं। सुरक्षित दोनों हाथों में एक एक वस्त्र है।

खजुराहों और चांदपुर से प्राप्त दशभुजी गणेश मूर्ति के समान ही एक दशभुजी नृत्यत् प्रतिमा बिड़ला संग्रहालय भोपाल[2] में भी देखी गई है। यह मूर्ति आशापुरी से प्राप्त हुई है। इस मूर्ति में उपर्युक्त मूर्ति की अपेक्षा कुछ भिन्नतायें देखने को मिलती है।

श्रीगणेश अपने दोनों ऊपर से गजहस्त मुद्रा, वितर्क मुद्रा, उत्तरीय तथा परशु है और बाईं भुजाओं में ऊपर से मूली या अंकुश, गजहस्त मुद्रा उत्तरीय तथा कट्यबलम्वित मुद्रा हैं इस मूर्ति के दोनों तरफ वादक तो खजुराहों और चांदपुर की मूर्ति के ही समान प्रदर्शित है लेकिन इसके पीछे एक–एक नर्तक भी प्रदर्शित है वहीं भोपाल वाली मूर्ति में मालाधारी पुरूष विधाधर दिखाई देते हैं। लगभग 9वीं सदी ई0 में निर्मित और सर्वथा सुरक्षित यह अखण्डित प्रतिमा भारतीय शिल्प – सौन्दर्य का एक मनोहारी उदाहरण प्रस्तुत करती है।

इसके अतिरिक्त हलेविद के होयसलेश्वर मंदिर में भी दसभुजी नृत्य मूर्ति[3] मिली है जो कि अत्यन्त भव्य है। यह मन्दिर 12वीं सदी ई0 में निर्मित हुआ था। अतः यह मूर्ति भी इसी समय की होगी। इसमें वे विविध प्रकार के आयुध ग्रहण किये हुये हैं और उनके नीचे की पट्टिका में उपासकों के अतिरिक्त उनका वाहन मूषक लड्डू खाता दिखाया गया है।

दशभुजी मूर्तियों की ही भांति बुन्देलखण्ड क्षेत्र में द्वादश भुजी मूर्ति भी बहुत कम मिली है। इस तरह की केवल चार मूर्तियों का उल्लेख खजुराहों के सन्दर्भ में प्रस्तुत कर सकते हैं –

खजुराहों की पहली द्वादशभुजी मूर्ति[4] में गणेश नृत्य–मुद्रा में अतिभंग में खड़े हैं। उनके सिर पर छोटा सा जटा–मुकुट है और मस्तक मोती की इकहरी लड़ी से अलंकृत हैं सर्प यज्ञोपवीत के स्थान पर वे अजिनोपवीत धारण किए हैं और सामान्य आभूषणों से सुसज्जित हैं। उनके सब हाथ खण्डित है इसी कारण हाथों की विशेषताओं का वर्णन सम्भव नहीं हैं लेकिन उनके दोनों ओर वाद्ययन्त्र युक्त सेवकों का चित्रण सुरक्षित है। गणेश के सिर के पीछे शिरश्चक्र है,

---

1. प्रतिमा संख्या – 24 वही – पृ0 52
2. गणपति विशेषंङ्क – पृ0 102
3. कलयाण, 'गणेश अङ्क' पृ0 416
4. प्रतिमा संख्या – 22 'खजुराहों की देव प्रतिमायें पृ0 52

जिसके ऊपर पुष्पमाला लिए विधाधरों के दो युगल अंकित हैं। इस मूर्ति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें उनकी दोनों पत्नियों का चित्रण भी किया गया है। दूसरी मूर्ति[1] भी पहली मूर्ति के सदृश है, किन्तु इसका एक हाथ अब भी शेष है, जिसकी नृत्य–मुद्रा में प्रदर्शित है। तीसरी मूर्ति[2] में छः हाथ शेष हैं जिनमें दो दाएं और चार बाएं हैं। एक दायें हाथ में मोदक ओर दूसरे में अंकुश है। बायीं तरफ के हाथ क्रमशः सर्प, फल, नृत्य मुद्रा में, कटिहस्त रूप में प्रदर्शित है। चौथी द्वादशभुजी मूर्ति[3] के हाथ पहली मूर्ति के ही समान सम्पूर्ण खण्डित हैं। इसमें देवता के दोनों पाश्वों में एक–एक पद्मधारिणी देवी अंकित हैं, जो उनकी दो पत्नियों के अभिप्राय से बनाई गई प्रतीत होती हैं।

श्रीगणेश की चतुर्दशभुजी नृत्य मूर्ति केवल राजकीय संग्रहालय, झांसी[4] में प्रदर्शित है। कलात्मक दृष्टि से यह मूर्ति अत्यन्त भव्य है। यह सुन्दर मूर्ति चारों ओर से उकेर कर बनाई गई है। नृत्य मुद्रा में उनका दाहिना पैरा थोड़ा उठा हुआ है। जबकि बाएं तरफ का पैर भूमि पर ही है। इसमें उनका पहला दाहिना हाथ नृत्य–मुद्रा में है जबकि अन्य हाथों में सर्प, माला वज्र, परशु, दुपट्टा या साफा लटकाये हुये उत्तरीय तथा शेष सभी हाथ खण्डित हैं। 10 वीं शताब्दी की इस मूर्ति में वे पूर्णतया आभूषणों से अलंकृत हैं। इसमें उनके नेत्र छोटे ओर पेट बड़ा (लम्बोदर) है। इस मूर्तिशिल्प का पिछला भाग भी बड़ी सुन्दरता के साथ पूर्ण हुआ है। उनके दोंनों ओर दो–दो संगीतज्ञ–वादक प्रदर्शित हैं जिनमें एक मृदंग पीटता हुआ, दूसरा झांझा, तीसरा मंजीरा और चौथा बांसुरी बजाता हुआ प्रदर्शित है। ये तालवद्ध ध्वनियां श्रीगणेश की नृत्यत् मुद्रा में संगति देती हुई दिखलाई देती है।

षोड्शभुजी नृत्य गणपति की प्रतिमायें तो अपेक्षाकृत बहुत ही कम प्राप्त हुई हैं। इस रूप में जो भी दो चार प्रतिमायें प्राप्त हैं, उनमें से उदाहरण के तौर पर खजुराहो से प्राप्त दो प्रतिमाओं एवं चांदपुर से प्राप्त एक अन्य प्रतिमा का उल्लेख किया जा रहा है।

खजुराहों से प्राप्त दो प्रतिमाओं[5] में तीन हाथों को छोड़कर शेष तेरह हाथ टूटे हुए हैं, जिसके कारण उन हाथों में शोभायमान लांछनों व आयुधों का सही आकलन नहीं हो सकता। एक प्रतिमा में गणेश को अपने दो हाथों (एक बायां व दूसरा दायां) को ऊपर उठाकर करताल बजाने बताया गया है। एक अन्य हाथ नृत्य करने की मुद्रा में है। प्रभावली के ऊपर दायं बायें कोनों पर

1. प्रतिमा संख्या –29 'खजुराहों की देव प्रतिमायें पृ0 53
2. प्रतिमा संख्या –13 वही पृ0 –521. प्रतिमा संख्या –21
3. वही, 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 52
4. राजकीय संग्रहालय, झांसी, प्रतिमा संख्या – 81.45
5. प्रतिमा संख्या –16,11 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 –52

ललितासन वीणाधारिणी देवी की एक–एक प्रतिमा शोभायमान है। दूसरी प्रतिमा में दो हाथों को छोड़कर शेष चौदह हाथ टूटे हैं। दो हाथों में से एक हाथ कटि हस्त–मुद्रा में तथा दूसरा हाथ दंड हस्त मुद्रा में है। प्रतिमा की शोभा आसपास दोनों ओर के प्रदर्शित मृदंग वंशी वादकों एवं अंजलि में हाथ जोड़ कर बैठे दो भक्तों के भी अंकन हैं। साथ में चुपचाप बैठा मूषक भी दर्शनीय हैं।

इसके अतिरिक्त चांदपुर[1] और सीरोनखुर्द[2] से जो मूर्तियों मिली हैं वे क्रमशः रानी महल, झांसी संग्रहालय[3] और राजकीय संग्रहालय[4] झांसी में सुरक्षित है। रानी महल संग्रहालय में रखी नृत्य गणपति की मूर्ति क्षेत्र की सबसे विशालतम प्रतिमा है। इसकी ऊँचाई 5 फुट 10 इंच और चौड़ाई 3 फुट है। यह गणपति मूर्ति अपनी कलात्मकता और सजीवता के कारण भी अत्यधिक आकर्षक है। सिर पर मुकुट, मस्तक पर मुक्त–माल तथा हीरक हार, चम्पक हार, अंगद, कंकण, मेखला, नूपुर, सर्प–यज्ञोपवीत से विधिवत अलंकृत गणपति के दायें हाथों में से एक में मोदक है एवं दूसरा जंघ–हस्त है तथा शेष छः हाथ खण्डित हो चुके हैं। बायें हाथों में से एक में नृत्य मुद्रा में पेट पर रखे हुये और अन्य टूटे हुये हैं। इसके अतिरिक्त गणेश प्रतिमा के पाद–पीठ पर उनका वाहन मूषक है एवं दोनों ओर अंजलि मुद्रा में दो पुरूष आकृतियां तथा नीचे परिचारिकायें हैं। दायीं ओर बांसुरी व मृदंग वादकों की कला पूर्ण आकृतियों तथा बायीं ओर शार्दूल, वृषभ, नृत्य मुद्रा में अंकित आकृतियों के अलंकरण से मुख्य प्रतिमा और भी अधिक सजीव हो उठी है। अतः ये नृत्य मूर्ति भारत की प्रसिद्ध स्थल खिचिंग (उड़ीसा) की कलात्मक और सजीव 16 भुजी एवं एकदन्तधारी गणपति प्रतिमा और खजुराहो की नृत्य गणपति की प्रतिमा की तुलना में किसी भी दृष्टि से कम नहीं है[5]।

राजकीय संग्रहालय झांसी की सोलह भुजाओं वाली मूर्ति के अधिकांश हाथ खण्डित हो चुके हैं। केवल शेष तीन हाथ नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित हैं। इसमें वह सर्प यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं। उनकी शुण्ड बायीं ओर मुड़ी है। लम्बोदर गणपति एक बड़ी कमल पंखुड़ी पर खड़े हुए नृत्य कर रहे हैं। अतः उनके सिर के पीछे बना गोलाकार मण्डल की किनारी भी कमल पंखुड़ियों से सुसज्जित है। इसी के आस–पास ऊपर विधाधरों की आकृतियों अंकित हैं जो अब खण्डित हो गई हैं। दाहिने तरफ एक पुरूष अपने दाऐं हाथ से मृदंग बजाते हुऐ और दाहिना हाथ मृदंग बजाने के लिये तैयार उठा रखा है। एक दूसरा पुरूष मृदंग की संगति के साथ नृत्य करता हुआ प्रदर्शित

1. वर्मा, महेन्द्र 'चन्देल शिल्प में संगीत और नृत्य' पृ0 –27
2. .Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-60
3. प्रतिमा सुख्या –7
4. प्रतिमा संख्या –81.95
5. आयोध्या प्रसाद 'कुमुद' 'सुरम्य बुन्देलखण्ड' पृ0 –138

है। बायीं तरफ एक व्यक्ति बांसुरी और दूसरा झांझ बजाता हुआ प्रदर्शित है। इस मूर्तिशिल्प के दोनों किनारे कलात्मकता से भरे हुए हैं। मुख्य मूर्ति गोलाकार निर्मित है जबकि किनारे की निर्मित आकृतियां शिलापट्ट पर उभरी हुई नक्काशी के साथ दिखलाई पड़ती है। यह मूर्ति दो भागों में विभाजित हो गई है लेकिन वर्तमान समय में यह जुड़ी हुई ही दिखलाई देती है। ध्यान देने योग्य सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस मूर्ति के दोनों भाग एक ही पहाड़ी पर भिन्न–भिन्न स्थानों से मिले हैं।

इसके अतिरिक्त बानपुर गांव से अठारह हाथों वाली गणेश की नृत्य–मुद्रा वाली मूर्ति मिली हैं यह गणेश मूर्ति इस गांव के गणेश–पुरा मुहल्ले में स्थित हैं। इसी गणपति नृत्य मूर्ति के पास 3 विशाल नन्दी हैं जो सभी खण्डितावस्था में हैं। बानपुर गांव ललितपुर से 48 कि0 की0 महरौनी तहसील से 14 कि0मी0 और टीकमगढ़ जिला से 9 कि0मी0 पर अवस्थित है।

श्रीगणेश की शक्ति सहित प्रतिमायें –

अनेक ग्रंथों में गणेश की दो पत्नियों का उल्लेख है – ऋद्धि और सिद्धि अथवा बुद्धि और सिद्धि। किन्तु कुछ अन्य ग्रंथों में उनके पार्श्व में केवल एक पत्नी के होने का निर्देश है। प्राण–तोषिणी ग्रंथ के गणेश प्रकरण में गणेश के वामांग में शक्ति की स्थिति दर्शायी गयी है – 'वामांगसंस्थया शक्त्या सर्वालंकारभूषिता।' शारदातिलकम् (पटल 13) में भी इसी प्रकार का उल्लेख है – 'आश्लिष्टं प्रियया सपद्म्करया साकंस्थ संगतम्। भारतीय मूर्तिकला में गणेश की जो दम्पत्ति प्रतिमाएं आंकी गई हैं। उनमें भी उनमें भी उनके वामांग में केवल एक नारी आकृति की ही स्थिति दर्शायी गयी है[1]। लेकिन बुन्देलखण्ड के जनपद–जालौन क्षेत्र में गणपति मत्स्य पुराण आदि शास्त्रों में वर्णित उनकी दो पत्नियां रिद्धि–सिद्धि के साथ चित्रित हैं। अन्य स्थानों में श्रीगणेश शक्ति–सहित ही प्राप्त हुये हैं लेकिन उनमें डा0 राव द्वारा वर्णित शक्ति गणेश के विभिन्न प्रकार, जैसे लक्ष्मीगणपति उच्छिष्ट–गणपति, महागणपति, ऊर्ध्व–गणपति और पिंगल–गणपति मूर्तियों के समान विवरण प्राप्त नहीं होते हैं[2]।

इस तरह की मूर्तियां खजुराहो में तीन, चांदपुर से तीन ओर दुधई से दो (रानी महल, झाँसी) राजकीय संग्रहालय झांसी में तीन, ललितपुर जनपद के जखौरा स्थल से एक और जालौन जनपद में तीन मूर्तियां दृष्टव्य हैं।

---

1. गणपति विशेषांङ्क, पृ0 103
2. देखिये, Elematrs of Hindu Iconography, p.53-57

खजुराहों की तीन मूर्तियों में से एक मूर्ति[1] अत्यन्त सुन्दर है। इसमें गणेश एक ऊंचे आसन पर ललितासन में बैठे हैं और उनकी बायीं जंघा पर देवी विराजमान हैं, जिनका बायां पैर टूटा हैं इसमें श्रीगणेश ओर देवी दोनों विभिन्न आभूषणों से अलंकृत हैं। श्रीगणेश पहले हाथ में मोदक–पात्र और दूसरे में परशु धारण किए हैं। उनका तीसरा हाथ टूटा हुआ है और चौथे हाथ से देवी का कुचस्पर्श करते हुये प्रदर्शित हैं। देवी द्विभुजी हैं और श्रीगणेश शूर्पकर्ण और एकदन्त है। दूसरी–मूर्ति[2] भी वर्णित मूर्ति के ही समान है। इसमें श्रीगणेश के दोनों दाएं हाथ टूटे हैं। उनका बायां एक हाथ अंकुशधारी है और दूसरा देवी को आलिंगन करता हुआ प्रदर्शित हैं। देवी अपने बाएं हाथ से अपने स्वामी की सूंड के अग्र–भाग को स्पर्श करती चित्रित है। उनका दायां हाथ स्वामी को आलिंगन सा करता अस्पष्ट है। इसमें उनका वाहन मूषक भी चित्रित हैं। शक्ति गणेश की तीसरी मूर्ति[3] छोटी सी रथिका में अंकित है, इस मूर्ति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें श्रीगणेश अपनी पत्नी के साथ आलिंगन मुद्रा में नहीं हैं। चतुर्भुजी गणेश ललितासन में बैठे हैं, जिनके पहले तीन हाथों में पद्म और चौथे में मोदक–पात्र है। उनकी शुण्ड सीधी जाकर बाई ओर मुड़ी है। इसमें लक्ष्मीजी की मूर्ति आकार और मुद्रा में गणेश की मूर्ति के सदृश है। देवी का दायां हाथ अभयमुद्रा में और बायां अमृतघट–युक्त है। यह मूर्ति जगदम्बी मन्दिर से प्राप्त हुई है और दक्षिण–पश्चिम दिशा में अधिष्ठान में रथिका में स्थापित हैं।

उपर्युक्त तीनों मूर्तियों के अतिरिक्त खजुराहों में नृत्य गणपति मूर्तियों के साथ भी गणेश की पत्नियों के अंकन मिलते है। इस प्रकार की तीन मूर्तियों[4] में प्रभावली में उनकी पत्नियों की दो छोटी मूर्तियां खचित हैं जिनमें एक श्री की और दूसरी भारती की है और दो मूर्तियों[5] में दोनों श्री की और अन्य दो मूर्तियों[6] में दोनों भारती की मूर्तियां हैं।

रानी महल संग्रहालय में संग्रहीत मूर्तियों में से पहली मूर्ति[7] में गणेश की बाईं जंघा पर शक्ति सुखासन में विराजमान हैं जिनके एक हाथ में अस्पष्ट आयुध हैं तथा दूसरा हाथ नष्ट है। चतुर्भुज गणेश के दाहिनी ओर के हाथों में अंकुश और कमल और बायें हाथों में मोदक और परशु हैं। अलंकरण साधारण हैं। दूसरी मूर्ति[8] में गणेश ललितासन में बैठे हुये हैं और शक्ति उनके बायीं

1. खजुराहों संग्रहालय, प्रतिमा संख्या –20
2. प्रतिमा संख्या –15 वही
3. प्रतिमा संख्या –7 'खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 52
4. प्रतिमा संख्या –29,30,38 – वही पृ0 –53
5. प्रतिमा संख्या 21,33, वही पृ0 52,53
6. प्रतिमा संख्या 5,16, वही पृ0 52
7. दुधई प्रतिमा संख्या –10
6. चांदपुर, प्रतिमा संख्या –13

जंघा पर सुखासन में बैठे हैं। शक्ति अपने बायें हाथ में दर्पण और दायें हाथ को गणेश के कंधे पर रखे हुये हैं। गणेश के दायें हाथों में से पहले हाथ में पुस्तक और दूसरा शक्ति के कुच के नीचे स्थित है। बायें हाथों में मोदक और कमल धारण किये हैं। श्रीगणेश और शक्ति दोनों ही विविध आभूषणों से अलंकृत हैं।

तीसरी मूर्ति[1] में गणेश के साथ शक्ति भी ललितासन में प्रदर्शित है। इसमें भी वह गणेश बायीं जंघा पर ही बैठी हुई है। इसमें शक्ति का पहला हाथ खजुराहों की प्रतिमा संख्या –7 की भांति अमृतघट लिये हुये है और दूसरा हाथ गणपति के पृष्ठभाग पर है। श्रीगणेश के बायें हाथों में एक शक्ति की कमर पर और दूसरे में कमल नाल हैं। दायें हाथ में परशु व माला सुशोभित है। इसमें उनका वाहन मूषक भी है और दोनों मूर्तियां अलंकार युक्त हैं। चौथी मूर्ति[2] में श्रीगणेश का एकदन्त स्वरूप प्रदर्शित है और उनके बायें जंघा पर शक्ति सुखासन में बैठी है। देवी के हाथों के लक्षण उपर्युक्त मूर्ति के ही समान है। श्रीगणेश अपने बायें तरफ के एक हाथ में कमल और दूसरा शक्ति की कमर पर रखे हुये हैं। दायें हाथ में परशु और अस्पष्ट आयुध लिये हुये हैं। इस मूर्ति का अलंकरण साधारण है। पांचवी मूर्ति[3] पूर्णतया उपर्युक्त मूर्ति की ही भांति है।

उपर्युक्त सभी मूर्तियां दुधई और चांदपुर से प्राप्त हुई है। चांदपुर झांसी से लगभग 120 कि0मी0 ललितपुर से 25 कि0मी0 तथा देवगढ़ से 14 कि0मी0 पर 240,30 उत्तरी अक्षांश व 70 18 पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। और दुधई झांसी से लगभग 130 कि0मी0, ललितपुर से 40 कि0मी0 एवं देवगढ़ से 22 कि0मी0 तथा धौर्रा रेलवे स्टेशन से 10 कि0मी0 दूरी पर 240.26 उत्तरी अक्षांश और 78. 24, पूर्वी देशान्तर पर स्थित है[4]।

राजकीय संग्रहालय की भी एक शक्ति सहित गणेश प्रतिमा दुधई और एक चांदपुर से प्राप्त हुई है। दुधई वाली[5] गणेश विघ्नेश्वरी की मूर्ति लगभग 11वीं शताब्दी की है। उनके चारां हाथ पूर्णतया खण्डित हैं। इसमें श्रीगणेश पद्मासन में बैठे हैं। उनकी बायीं जंघा पर विघ्नेश्वरी बैठी हुई हैं। उनका बायां पैर खण्डित है।

सामान्य आभूषणों से अलंकृत गणेश सर्पयज्ञोपवीत भी धारण किये हुये हैं। उनकी शुण्ड ऊपर को ही बायीं तरफ सीधी मुड़ी हुई है और सिरे पर जाकर ऊपर की ओर थोड़ी टेढ़ी

---

1. चांदपुर, प्रतिमा संख्या –15
2. चांदपुर, प्रतिमा संख्या –17
3. दुधई प्रतिमा संख्या – 19
4. वर्मा महेन्द्र 'चन्देलकालीन कला और संस्कृति पृ0 1–2
5. प्रतिमा संख्या – 200,12

हो गई है। श्रीगणेश के अगल–बगल पर दो परिचारिकायें प्रदर्शित हैं जिनमें बायीं तरफ वाली सेविका हाथ जोड़े हुये बैठी है और दाहिने तरफ वाली खड़ी हुई है। चांदपुर वाली मूर्ति में भी उनके बायीं तरफ बैठी हुई है। अपना दाहिना पैर उनके जंघा पर रखे हुये हैं और बायां पैर नीचे समतल पर है। शक्ति अपना मुख ऊपर को किये हुये है। चतुर्भुजी गणेश के दाहिने पहले हाथ में फरसा और दूसरा अस्पष्ट है तथा बायें हाथ में कमल दण्ड और दूसरे में अस्पष्ट आयुध लिये हुये हैं शिलापट्ट पर स्थापित मूर्तियों के दोनों तरफ खम्भे बने हुये हैं। यह मूर्ति भी लगभग 11वीं शताब्दी की है।

राजकीय संग्रहालय की तीसरी मूर्ति[1] सीरोनखुर्द से प्राप्त हुई है। बालू पत्थर से निर्मित यह मूर्ति 10वीं शताब्दी की है। इस गणपति मूर्ति में उनके साथ एक पत्नी शक्ति नहीं बल्कि दो पत्नियां रिद्धि ओर सिद्धि प्रदर्शित हैं। इसमें श्रीगणेश राजलीलासन मुद्रा में बैठे हैं जबकि उनकी दोनों पत्नियां अगल–बगल अलग से बने खण्डों में खड़ी हुई अंकित हैं। चतुर्भुजी गणेश अपने दाहिने तरफ ऊपर वाले हाथ में अंकुश और पहला हाथ अभय मुद्रा में है। बायें तरफ के दूसरे हाथ में दांत और पहले हाथ में मोदक–पात्र लिये हुये हैं। वे गजवदन, एकदन्त और शूर्पकर्ण हैं।

ललितपुर जनपद के ही जखौरा स्थल[2] से भी गणेश की शक्ति सहित मूर्ति प्राप्त हुई हैं यह मूर्ति जखौरा बाजार के मध्य में लगभग 19वीं शताब्दी में निर्मित रामजानकी मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार से भीतर होने पर दूसरे द्वार के ऊपर स्थापित है। वैनायिकी के साथ आलिंगन–बद्ध विनायक की प्रतिमा लगभग 12 वीं शताब्दी की है। इस प्रतिमा का माप 0.45x0.30 मीटर है। चतुर्भुजी गणेश के केवल दो हाथ शेष हैं जिनमें एक दायें हाथ में मोदक पात्र है और दूसरा बायां हाथ वैनायिकी का आलिंगन करते हुये दशार्या गया हैं इसमें श्रीगणेश ललितासन में बैठे हुये हैं। उनकी शुण्ड दायी ओर मुड़कर मोदक–पात्र के ऊपर निरूपित है। विनायक ओर वैनायिकी परस्पर एक दूसरे को निहारते हुये दर्शाये गये हैं। श्रीगणपति की शक्ति सहित यह मूर्ति बुन्देली शैली में निर्मित है।

जनपद–जालौन में श्रीगणेश की दम्पत्ति प्रतिमायें अवश्य प्राप्त हुई हैं लेकिन इमें वे अपनी दोंनो पत्नियों रिद्धि और सिद्धि के साथ प्रदर्शित हैं। यहां से प्राप्त तीनों मूर्तियां 17वीं शताब्दी की है[3]। पहली मूर्ति लक्ष्मीनारायण मंदिर उरई में स्थापित हैं। रिद्धि–सिद्धि युक्त यह गणेश प्रतिमा अद्वितीय है। यह मूर्ति नारायण जी के गर्भगृह के द्वार पर दाएं तरफ एक आले में

1. .Trivedi,S.D. Sculptures in the Jhansi Museum P.-57
2. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिर्पोट, 1988–89 पृ0 5
3. पुरवार हरीमोहन 'जालौन–जनपद में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 17,22,29

स्थापित है जिसमें गणेश ललितासन में बैठे हुये हैं और उनके दोनां ओर रिद्धि सिद्धि खड़ी हुई हैं। यह मूर्ति काला पत्थर से निर्मित है। ठीक इसी प्रकार दो मूर्तियां जालौन में भी मिली हैं। एक मूर्ति काशीनाथ मुहल्ला से प्राप्त हुई है। यह श्रीगोपाल वाकणकर के निजी स्वामित्व में है। दूसरी मूर्ति मुहल्ला गणेश गंज के गणेश मंदिर में स्थापित है। ये दोनों ही मूर्ति चतुर्भुजी हैं। इन मूर्तियों में भी रिद्धि–सिद्धि खड़ी हुई प्रदर्शित हैं। इनमें पहली मूर्ति पीतल और तांबे के मिश्रण से और दूसरी संगमरमर पत्थर से निर्मित है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के मध्य प्रदेश के जनपदों में से खजुराहो के अतिरिक्त टीकमगढ़ जनपद[1] से भी एक गणेश दम्पत्ति की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह धुबेला संग्रहालय में सुरक्षित है। चतुर्भुजी गणेश के बाएं अंक में शक्ति विराजमान हैं। गणेश के बायें तरफ के हाथों में से पहला हाथ शक्ति का कुचस्पर्ष कर रहा है और दूसरा हाथ उनके पीछे सहारा दे रहा है। और उनके पहले दाएं हाथ में उनका अपना ही खण्डित दांत और दूसरे में पद्म है। शक्ति का दाहिना हाथ गणेश के स्कंध पर है और बांए हाथ में दर्पण है। यह मूर्ति 10वीं शताब्दी की है।

शक्ति गणेश की दूसरी प्रतिमायें लखनऊ संग्रहालय और वाराणसी में भी देखी गई हैं। इनमें लखनऊ संग्रहालय वाली प्रतिमा बुन्देलखण्ड क्षेत्रों से प्राप्त प्रतिमाओं से काफी साम्य रखती है। इसमें ललितासन में बैठे गणेश की बायीं जंघा पर ललितासन में ही शक्ति विराजमान है। इस प्रतिमा में भी उमा महेश्वर जैसा रूप, आलिंगन और कुचस्पर्श दिखाई पड़ता है। यह मूर्ति चांदपुर से प्राप्त प्रतिमा संख्या –15 से काफी साम्यता रखती हैं जो कि रानी महल में सुरक्षित है। लेकिन वाराणसी[2] वाली प्रतिमा पूर्णतया भिन्न है। इसमें उनके चार हाथों की जगह दस हाथ दर्शाये गये हैं। बुन्देलखण्ड में खजुराहों आदि स्थानों से दशभुजी नृत्य मूर्ति अवश्य प्राप्त हुई है लेकिन शक्ति सहित गणेश की दशभुजी प्रतिमा का सर्वथा अभाव रहा है। यह मूर्ति वाराणसी के संत कबीर रोड पर दैनिक आज कार्यालय के निकट स्थित बड़े गणेश मंदिर में स्थापित हैं। इस मंदिर के घेरे में प्रविष्ट होते ही बरामदे में पूर्व दीवार पर दन्त हस्त विनायक की ढाई फुट ऊंची प्रतिमा स्थित है। इस दशभुजी मूर्ति में गणेश का एक हाथ तो मुंह में है तथा एक हाथ लक्ष्मी को धारण किये हैं। चरणां के निकट उनका वाहन चूहा भी दृष्टिगत होता है। इस तरह की दशभुजी गणेश की मूर्ति को महागणपति नाम से सम्बोधित किया जाता हैं।

---

1. गणपति विशेषांङ्क, पृ0 103
2. 'आज' समाचार पत्र, कानपुर 25 सितम्बर 2006 पृ0 12

इसी तरह की महागणपति की एक दम्पत्ति प्रतिमा विहार[1] से भी मिली है। यह मूर्ति लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। मूर्तिशिल्प की दृष्टि से यह मूर्ति अत्यन्त भव्य है लेकिन इसका अधिकांश भाग खण्डित हो गया है। इसमें श्रीगणेश ललितासन में बैठे हुये हैं और उनकी बायीं जंघा पर शक्ति विराजमान हैं गणेश अपने स्वाभाविक बाएं हाथ का सहारा देकर उनका आलिंगन कर रहे हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देवी की यह आकृति छोटी है और उनके बाएं हाथ में सनाल पद्म है। गणेश जिस आसन पर बैठे हैं उसकी पीठ लहरदार नुकीली है, उसके दोनों पार्श्व गजमुख से अलंकृत हैं। गणेश की शिरोभूषा और उनके शीष के ऊपर तना हुआ छत्र पत्रांकुरों से बना है। ऊपर दोनों पार्श्वों में उड़ते हुए मालाधारी विद्याधर हैं। आसन के दोनों पायों में उत्किटासन में भारवाही और उनके ऊपर व्याल दिखाए गए हैं। बीच में झाड़ीनुमा अलंकृत वनस्पति पुंज है जिसके एक ओर उस पर सूँड उठाए एक हाथ तथा दूसरी ओर मुख फैलाए मकर जैसी आकृति है।

इसके अतिरिक्त प्रतिहारकालीन 10वीं शताब्दी की शक्ति सहित गणेश की सुन्दर प्रतिमायें भूमरा, मथुरा संग्रहालय, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं राष्ट्रीय संग्रहालय, नयी दिल्ली में भी संकलित है। ये गणपति मूर्तियां चतुर्भुजी है और ऊंचे आसन पर बैठे हुये हैं[2]।

गणेश की कुछ ऐसी मूर्तियां भी भारतीय कला में उकेरी गई है जो उपर्युक्त वर्णित स्वतन्त्र मूर्तियां नहीं बल्कि अन्य विभिन्न रूपों में पाई गई है। ऐसी मूर्तियों में श्रीगणेश अपने परिवार यथा कार्तिकेय के साथ उमामहेश्वर की सम्मिलित मूर्तियों में, अकेली पार्वती मूर्तियों में अंकित दर्शाये गये हैं। कहीं सप्तमातृकाओं, वीरभद्र, नवग्रहों और अष्टदिक्पालों के विविध स्वरूपों में श्रीगणेश मूर्ति का चित्रण मिलता है तो कभी कभी देवसमूहों में भी श्रीगणेश की मूर्ति सम्मिलित पाई गई है। इस तरह की मूर्तियां बुन्देलखण्ड के मध्य प्रदेश के क्षेत्रों में अधिक देखी गई हैं। इनमें खजुराहों, छतरपुर, कालिंजर, विदिशा, दतिया, सतना, पन्ना, सागर, अजयगढ़ आदि स्थान प्रमुख है। उत्तर प्रदेश में इस तरह की मूर्ति ललितपुर के आस–पास के क्षेत्रों यथा दुधई–चांदपुर, सीरोन खुर्द, सिरसी, बार और देवगढ़ में दर्शनीय है।

इस तरह की मूर्ति खजुराहों में सर्वाधिक पाई गई है जिनमें सप्तमातृकाओं और वीरभद्र सहित गणपति मूर्तियां चार पार्वती संग गणपति मूर्तियां छः और उमा–महेश्वर सहित लगभग बारह गणपति मूर्तियां प्रदर्शित हैं[3]। सप्तमातृकाओं वाली मूर्तियां शिलापट्टों पर एक पंक्ति में अंकित हैं।

---

1. गणपति विशेषांङ्क पृ0 103
2. कल्याण 'गणेश अंङ्क' पृ0 414
3. अवस्थी रामश्रय 'खजुराहो की देव प्रतिमायें पृ0 53

एक मूर्ति में श्रीगणेश सप्तमातृकाओं और वीरभद्र के साथ नृत्य मुद्रा में है जो कि लक्ष्मण मन्दिर से प्राप्त हुई है और यह मूर्ति इसी मन्दिर के उत्तर–पश्चिम में बने गौण मन्दिर के द्वार–उत्तरंग पर स्थापित है। इसी तरह की दूसरी मूर्ति जिसमें सप्तमातृकायें और वीरभद्र तो नृत्य मुद्रा में है किन्तु गणेश चुपचाप पंक्ति के अन्त में खड़े हैं। इस तरह की मूर्ति खजुराहों संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। खजुराहों संग्रहालय के एक दूसरे शिला पट्ट पर गणेश सप्तमातृकाओं और वीरभद्र के पैर के आगे बैठे नवग्रहों के कारण छिपे हुये हैं[1]। दुधई–चांदपुर से प्राप्त एक मूर्ति में भी नवग्रहों के साथ गणपति प्रदर्शित किये गये हैं। यहीं से एक मूर्ति ऐसी भी मिली हैं जिसमें अष्ट दिक्पालों के विविध स्वरूपों में पंचगणेश अंकित है। ये मूर्तियां झांसी के रानी महल में सुरक्षित है[2]।

उपर्युक्त वर्णित सभी मूर्तियां द्विभुजी हैं। लेकिन खजुराहों से प्राप्त सप्तमातृकाओं वाली एक मूर्ति में श्रीगणेश चतुभुर्जी है यह मूर्ति खजुराहों दूला देव मन्दिर से मिली है और इस मन्दिर के गर्भग्रह द्वार पर उत्तरीशाखा पर स्थापित है।

इसके अतिरिक्त लक्ष्मण मन्दिर में एक और खजुराहों संग्रहालय में दो ऐसी मूर्तियां[3] हैं जिसमें पार्वती मूर्तियों की प्रभावली के एक कोने में कार्तिकेय की ओर दूसरे कोने में गणेश की छोटी आकृतियों उत्कीर्ण हैं। खजुराहो संग्रहालय में तीन ऐसी भी मूर्तियां[4] है जिनमें पार्वती अपने ऊपर के दो हाथों में पूर्ण विकसित कमल लिये हुये हैं। एक कमल में गणेश और दूसरे में कार्तिकेय की नन्हीसी मूर्तियां अंकित रहती हैं। खजुराहो संग्रहालय की तीन और लक्ष्मण मन्दिर, जगदम्बी मन्दिर और चित्रगुप्त मंदिर से प्राप्त एक–एक उमा–महेश्वर की मूर्तियों में भी गणेश और कार्तिकेय अवश्य अंकित मिलते हैं[5]।

देवगढ़ की तीन घाटियां जिनमं गुप्तकालीन कला के दर्शन होते हैं यहाँ की राजघाटी और नाहरघाटी में अंकित सप्त मातृकाओं के साथ गणेश हैं राजघाटी में सप्तमातृका पट्ट में सात देवियां अपने–अपने वाहनों पर अवस्थित हैं उनके दोनों किनारों पर क्रमशः वीणाधर शिव और गणेश की आकृतियां हैं[6]। राजघाटी में ही एक भित्ति पर कीर्तिवर्मन का लेख और गणेश के साथ नवग्रह भी प्रदर्शित है। इसी तरह जनपद–जालौन के उरई क्षेत्र में भी मातृकाओं सहित गणेश की मूर्ति प्राप्त हुई है लेकिन इसमें वह सात माताओं के स्थान पर पांच माताओं के साथ अंकित हैं।

1. प्रतिमा संख्या 41 'खजुराहो की देव प्रतिमायें – पृ0 53
2. त्रिवेदी, एस0डी0 :बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पृ0 89
1. प्रतिमा संख्या – 45,4,47 – ' खजुराहों की देव प्रतिमायें –पृ0 53
2. प्रतिमा संख्या – 44,48,49 – वही
3. वही पृ0 49
4. त्रिवेदी एस.डी. 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पृ0 78

यह मूर्ति उरई के बड़ी माता मन्दिर में विद्यमान है[1] बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में भी श्रीगणेश की एक ऐसी अद्भुत मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें वह एक प्रभामण्डल के बीच में विराजमान शिवमूर्ति के दोंनों ओर स्थित हैं[2]। पंच मातृकाओं सहित श्रीगणेश की एक मूर्ति हिन्दी भवन कालपी से भी प्राप्त हुई है जो कि 18वीं शताब्दी की है। यह मूर्ति पीतल की है[3]।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त श्रीगणेश की मूर्ति उनके परिवार के साथ ओर देवसमूहों में भी प्राप्त हुई हैं कालिंजर की मूर्तिशिल्प में अनेक महत्वपूर्ण मूर्तियां शिव उपासना से सम्बंधित हैं। इसी कारण यहां गणेश मूर्ति शिवलिंग पंचमुखी शिवमूर्ति, सहस्त्रशिव लिंग मूर्ति तथा मूर्ति और शिवलिंग की संयुक्त मूर्ति नदीश्वर के ऊपर प्रदर्शित आदि मूर्तियों के साथ माँ पार्वती और कार्तिकेय सहित प्रदर्शित हैं ये सभी मूर्तियां पत्थर से निर्मित हैं और चन्देलकालीन हैं। ये अलंकरण ओर मूर्तिशिल्प की दृष्टि से कलात्मक और पुरातात्विक महत्व की है[4]। छतरपुर जिले में स्थित गणेश मूर्ति नौंगांव के समीप स्थित अचट्टा में वामन, अंबिका देवी और भगवान विष्णु आदि महत्वपूर्ण देवों के मध्य प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां प्रतिहार कालीन हैं[5]। पन्ना के दर्शनीय स्थलों में पंचायतन शैली में निर्मित प्रधान शिव मन्दिर के चारां कोंनों पर चार लघु मन्दिर बने हुये हैं जिनमें गणेश, हनुमान, जगदम्बा और कीर्तिमुख की मूर्तियां स्थापित हैं[6]। सागर संभाग में स्थित पन्ना छतरपुर से 70 एवं सतना से 68 कि0मी0 की दूरी पर हैं। अजयगढ़ दुर्ग में भी गणेश की मूर्ति देवसमूहों के साथ प्राप्त हुई है[7]। यहां अजयपाल तालाब के दूसरे किनारे पर ऊपरी भाग में अजय पाल का मन्दिर है। यह मंदिर तो आधुनिक है लेकिन यहां शिव, नन्दी, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय एवं पंचानन शिव की प्राचीन मूर्तियां हैं। मूर्तियां भी चन्देल युगीन वास्तु एवं मूर्तिकला की उत्कृष्ट परम्परा का परिचय देती हैं[8]। इसके अतिरिक्त दतिया जनपद और सागर जनपद के सूर्य मन्दिर में भी देवों सहित गणेश की मूर्ति प्राप्त हुई है[9]। सागर जिले में रेहली नगर में स्थित सूर्य मन्दिर अपनी कला की उत्कृष्टता के लिए सुविख्यात हैं लगभग 9–10वीं शताब्दी ईसवी में निर्मित इस मन्दिर में शैव, शाक्त, वैष्णव सौर तथा गणपत्य सम्प्रदाय की विविध प्रतिमाओं का संकलन है। दतिया जिले में भी भगवान सूर्य का सुप्रसिद्ध तीर्थ स्थल बालाजी मन्दिर में स्थित है। इस मंदिर

1. जनपद जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप
2. वही पृ0 25
3. वही
4. सुरम्य बुन्देलखण्ड पृ0 35
5. सुरम्य बुन्देलखण्ड, पृ0 40
6. वही, पृ0 72
7. कुरेशी नईम, बुन्देली विरासत, पृ0 63
8. सुरम्य बुन्देलखण्ड, पृ0 77–78
9. वही पृ0, 108,119

तक पहुंचने के लिये पहूज नदी के तट से मन्दिर तक 42 पक्की सीढियां बनी हुई हैं। इस मार्ग में दोनों ओर गणेश जी व हनुमान जी की विशाल मूर्तियां हैं। उन्नाव बालाजी के तट पर झांसी से 12 कि0मी0 उत्तर एवं दतिया से 17 कि.मी. पूर्व में स्थित है। विदिशा जिला जहां बुन्देली भाषा का व्यापक प्रयोग होता है वहां पर कुरवाई से 30 कि0मी0 दक्षिण पूर्व में स्थित बडोह प्राचीन और मध्यकालीन मंदिरों एवं सती स्तम्भों के लिए जाना जाता हैं यहां के सोलह स्तम्भों पर निर्मित सतगढ़ी मंदिर में विष्णु, शिव एवं गणेश की प्रतिमायें हैं[1]।

श्रीगणेश के इस तरह के विग्रह प्रस्तर फलकों पर उत्कीर्ण रहते हैं अथवा स्वतन्त्र लघु मन्दिरों में स्थापित रहते हैं। अतः इसी तरह 8वी सदी ई0 का एक चौकार प्रस्तर –फलक दक्षिण भारत के पेडुमुडियम नामक स्थान से मिला हैं इसमें बायीं ओर से गणेश, ब्रह्मा, नृसिंह, शिवलिंग, विष्णु, लक्ष्मी, उमामहेश्वर, श्रीवत्स और महिषमर्दिनी आदि देवों को एक पंक्ति में उत्कीर्ण किया गया है। इसमें गणेश की पहचान मात्र उनके गजानन से सम्भव हो सकी है[2]। महोबा और हमीरपुर से भी इस तरह के गणेश विग्रह प्राप्त हुये हैं। चंदेलकालीन राजधानी महोबा के समीप स्थित सालट का माडल महल व मन्दिर है जो कि 1वीं शताब्दी में निर्मित हुये हैं यहां कार्तिकेय, शार्दूल एवं जैन तीर्थाकरों की मूर्तियां विद्यमान हैं[3]।

इसी प्रकार गणेश, कुबेर और भद्रा की आसनस्थ आकृतियों वाला एक ऐसा ही चौकोर फलक लखनऊ संग्रहालय में है[4]। इसमें गणेश ललितासन में बैठे हैं। उनका दायां हाथ अभय मुद्रा में है और बाएं हाथ में मोदकपात्र है जिस पर उनकी सूंड़ टिकी है। लगभग 8वीं –9वीं सदी ई0 का यह फलक पहाड़ी भिटारी (हमीरपुर, उ0 प्र0) से प्राप्त हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि इन फलकों के देवसमूह में प्रथम स्थान गणेश को ही दिया गया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि गणेश सबसे पहले पूजने की मान्यता समाज में आठवीं सदी ई0 से पहले ही स्थापित हो चुकी थी।

इसके अतिरिक्त विदेशों में भी गणेश की मूर्तियां मिली हैं अफगानिस्तान में गरदेज से प्राप्त लेखयुक्त मूर्ति में, जो 6वीं सदी ई0 की है, स्थानक गणेश मुकुट, सर्प–यज्ञोपवीत तथा व्याध्रचर्म धारण किये हुए हैं। ऊर्ध्वरेतस भी स्पष्ट है। ऐसी एक अन्य मूर्ति काबुल के पास

---

1. सुरम्य बुन्देलखण्ड, पृ0 146
2. गणपति विशेषांङ्क पृ0 104
3. सुरम्य बुन्देलखण्ड पृ0 5–6
4. गणपति विशेषांङ्क पृ0 104

सकरधर से भी प्राप्त हुई हैं।

कंबोडिया, जावा, इंडोचीन, जापान, इंडोनेशिया, चीनी, तुर्किस्तान, बोर्नियो, वाली आदि देशों में भी अनेक गणेश प्रतिमाओं का निर्माण हुआ जो आज वहां के तथा अन्य देशों के संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इससे सर्वथा ज्ञात होता है कि गणेश की पूजा न केवल भारत में ही प्रचलित थी, बरन् पड़ोसी देशां के अतिरिक्त सुदूर देशों में भी समान रूप से प्रचलित थी।

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

गणेश के विविध नाम एवं स्वरूप

गणेश शिलालेखों और मूर्तियों की अपेक्षा साहित्य में पहले उल्लिखित हुये है जिनमें उन्हें सर्वोपरि देव और वैदिक देवों के सदृश स्वरूप प्रदान किया गया है। ऐसे देव गणेश का पौराणिक विवरणानुसार जों रूप मूर्तिकला में उतारा गया, उनमें उनका सम्पूर्ण रूप एक प्रकार का नही हैं, बल्कि मंगलमूर्ति श्री गणेश स्वरूप का प्रत्येक अंग किसी न किसी विशेषता को लिये हुये है इसी कारण उनको एक नही बल्कि अनेकों नामों से पुकारा जाता है। यहां हम श्री गणेश के विविध नामों का वर्णन व उन्हीं के स्वरूपों की व्याख्या करने का लघु प्रयास करेगें।

श्री गणेश वैदिक देव है इसी कारण उनके नामों की विविधता वैदिक वाड्.मय और शास्त्रीय ग्रन्थों में बहुलता से पायी गई है। जिस प्रकार वैदिक संहिताओं में मान्य असंख्य देवों मे प्रमुख देव अर्थात् विष्णु शिव और देवी दुर्गा एक ही तत्व होने पर क्रमशः विष्णुसंहस्त्रनाम', शिवसहस्त्रनाम और दुर्गाशतनाम सहस्त्रनाम आदि ग्रन्थों मे गुण–कर्मानुसार एक हजार नामों से अभिहित किये गये है। उसी प्रकार गकारादि श्रीगणपति सहस्त्रनामस्तोत्रम[1] में श्रीगणेश के एक हजार नाम दिये गये है। इसके अतिरिक्त 'श्रीवक्रतुण्डमहागणपति सहस्त्रनामावलिः' और गणेश पुराण के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध 'गणपतिसहस्त्रनाम' आदि ग्रन्थों मे श्री गणेश के एक हजार नाम है। गणेश पुराण में उपासनाखण्ड के 'श्री गणपत्यष्टोत्तरशतनाम' नामक स्तोत्र में गणेश के सौ नाम दिये गये है। गणेश पुराण में दिये गये गणेश कवच में भी गणेश के विविध नाम आयें है।

वैदिक वांड्.मय में गणेश के नाम एवं स्वरूप

ऋग्वेद और यजुर्वेद के 'गणानां त्वां गणपति हवामहें' मंत्र मे गणपति शब्द के लिये कविनाकवि, ज्येष्ठराज, ब्रह्मणस्पति और प्रियपति, निधिपति आदि नाम प्रयुक्त हुये है। इन्ही वेदों मे उनके माधवन, द्वैमातुर, और वक्रतुण्ड नाम भी मिलते है। लेकिन इन मंत्रों मे गणपति शब्द का प्रयोग 'ब्रह्मणस्पति' की उपाधि के रूप मे आया है। सायण भी लिखते है– यह गणेश के लिये नही ब्रह्मणस्पति के लिये है जो देवादि गुणों के अधिपति है। ऋग्वेद[1] में इन्द्र को गणपति के रूप में सम्बोधित किया गया है। तैत्तिरीय संहिता[2] एवं वाजसनेही संहिता में इस मंत्र का अभिप्राय अश्वमेघ के घोड़े से है न कि गणेश से। ऐतरेय ब्राह्मण[3] में स्पष्ट आया है कि 'गणानां त्वां' नामक मंत्र ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित है। तात्पर्य यह है कि पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर 'गणपति'

---

1. ऋग्वेद, वैदिक संशोधन मण्डल वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट पुना, 10, 112
2. तैत्तिरीय संहिता 4, 1, 2, 2
3. ऐतरेय ब्राह्म ए.वी.कीथ द्वारा अनुदित 4.4

नाम का प्रयोग हुआ है किन्तु पौराणिक युग के गणपति या गणेश के रूप में उनकी कल्पना नही हुई है। अतः मध्यकाल में गणेश के विलक्षण रूप के अनुरूप जो हस्तिमुख, लम्बोदर आदि वर्णित है वे वैदिक संहिता में नही पाये जाते है।

गणपति का स्पष्ट उल्लेख 'मैत्रायणी संहिता' की गणेश गायत्री तथ गणपत्यर्थशीर्ष में जिसे गणेशोपनिषद् भी कहते हैं, में मिलता है। गणेश गायत्री में उनके हस्तिमुख, एकदन्त वक्रतुण्ड तथा दन्ती[1] नाम मिलते है तो अथर्वशीर्ष के मंत्रों में उन्हें व्रातपति, गणपति, प्रथमथपति, लम्बोदर, एकदन्त, विघ्ननाशक, शिवतनय, श्री वरदमूर्ति कहा गया [2]। लेकिन विद्वानों ने गायत्री वाले इन भागों और गणेशोपनिषद् को बहुत बाद का माना है[3]। इसमें कोई सन्देह नही है कि ईसवी सन् के बहुत पहले गणपति का साहित्य में प्रवेश हो चुका था। मूर्तिकला के क्षेत्र में उनका अस्तित्व बहुत बाद में आया। कदाचित इनकी उपासना को शास्त्रीय धरातल एवं मान्यता प्राप्त करने में समय लग गया होगा। पैराणिक युग में गणपति या गणेश के जिस स्वरूप का विकास हुआ उसके अनेक तत्वों की कल्पना छठीं शताब्दी ई0पू0 में ही कर ली होगी। क्योंकि ई0पू0 छठी शताब्दी के 'वौधायन धर्मसूत्र' में गणेश के तर्पण की गणना की गयी है जैसे विघ्नविनायक, गजमुखी, एकदन्त वक्रतुण्ड, लम्बोदर आदि प्रारम्भ में गणेश मानवगृहसूत्र और याज्ञवल्क्य स्मृति में विनायक के रूप मे उद्धृत हुये। मानवग्रह्य सूत्र[4] में विनायकों का उल्लेख हुआ है। उनकी संख्या चार है– शालकटंक, कुष्माण्ड राजपुत्र, उस्मित और देवयजन।

यहां पर यह भी वर्णित है कि विनायकों द्वारा रूष्ट हो जाने पर लोगो की मनास्थिति एवं कार्यकलाप में विषमता आ जाती है। याज्ञवल्वय स्मृति में चारों विनायक एक विनायक बन जाते है और विनायक सम्प्रदाय के कालान्तरीय स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। विनायक को यहाँ पर गणों के स्वामी के रूप में ब्रह्म एवं रूद्र द्वारा नियुक्त दर्शाया गया है[5]। उसे न केवल अवरोध उत्पन्न करने वाला, प्रत्युत मनुष्य के क्रिया संस्कारों में सफलता देने वाला कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति[6] में विनायक के चार नाम है– मित, सम्मित, शालकटंक एवं कूष्माण्ड राजपुत्र।

विश्वरूप व अपरार्क[7] ने भी विनायक के चार नाम ही बताये है। किन्तु मिताक्षरा ने शालकटंक एवं कूष्माण्ड राजपुत्र के दो–दो भागों में तोड़कर दृढ़ नाम दिये है– मित, सम्मित,

1. कृष्णयजुर्वेद मैत्रायणी संहिता 2/9/16 तैत्तिरीय आरण्यक 10/1/6
2. श्री गपत्यथर्वशीर्षम् 10
3. जोशी नीलकण्ड पुरूषोत्तम पृष्ठ 167
4. मानवगृहसूत्र, संपा, रामकृष्ण हर्जाजी, 2.4
5. याज्ञवल्क्य स्मृति 1.27
6. याज्ञवल्क्य 1.285
7. याज्ञवल्क्य स्मृति पर अपरार्क की कमेन्ट्री

शाल, कटंकट, कूष्माण्ड एवं राजपुत्र[1] अतः यह कहा जा सकता है कि गणेश वैदिक देवों की पंक्ति में किसी देशोभ्दव जाति से आये और रूद्र (शिव) के साथ जुड़ गये। याज्ञवल्क्य ने विनायक की प्रसिद्ध उपाधियों जैसे– एकदन्त, गजानन लम्बोदर आदि की चर्चा नही की।

छठीं–सातवीं शताब्दी के लगभग गाणपत्य सम्प्रदाय के अस्तित्व में आने के बाद गणपति–स्वरूप के विभिन्न पक्ष अस्तित्व में आये। उनके स्वरूप की कुछ विशिष्टायें पहले से ही आकार लेने लगी थी। गाणपत्य सम्प्रदाय से सम्बंधित साहित्य मे वेदमंत्रों को गणेश से जोड़ते हुये उन्हें इनके लिये प्रयोग किया गया, जिससे गणेश का स्तर, देवसमूह में विशिष्ट हुआ। ऋग्देव, कविनांकवि, ज्येष्ठराज, ब्रह्मणस्पति, माधवन, द्वैमातुर तथा यजुर्वेद के देवता प्रियपतिनं, निधिपतिं वक्रतुण्ड आदि उपाधियाँ गाणपत्य उपनिषदों में गणेश के लिये प्रयुक्त है। गााणपत्य साहित्य ने गणेश के स्वरूप के विकास में भी वैदिक देवों के स्वरूप से ही तत्व ग्रहण किया। उदाहरणार्थ अंकुश, वज्र व कमल इन्द्र से व्याघ्र चर्म और अर्ध चन्द्रमा शिव से पाश वरूण से, कुठार ब्रह्मणस्पति से ग्रहण किये गये। इस तरह उनका स्वरूप वैदिक देवों के सदृश विकसित हुआ।

पुराणों में गणेश के नाम एवं स्वरूप –

परवर्ती विद्वानों ने भी अपने ग्रन्थों मे श्री गणेश के अनेकों नाम दिये है। काशी के जंगमवाड़ी मठ के श्री शिवलिंग शिवाचार्य ने श्री गणेशाष्टोत्तरशतनामवलिः नामकी पुस्तक में 108 नाम दिये है अमरकोश के एक श्लोंक में भी गणेशजी के आठ नाम दिये गये है। जो इस प्रकार है– विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर और गजानन। इनमें से कुछ नाम वेदों में प्रसिद्ध आठ नामों से साम्य रखते है और कुछ उनके प्रमुख आठ अवतरों के समान है। वेदों मे वर्णित आठ नाम है– गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजववत्रं, गुहाग्रजम। प्रमुख आठ अवतार है– वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज और धूम्रवर्ण।

वेदों के एकदन्त, हेरम्ब और लम्बोदर ये तीन नाम अमरकोश मे मिलते है तो आठ अवतारों के एकदन्त, गजानन, लम्बोदर और विघ्नराज नाम मिलते है। इन तीनों मे दो–दो नामों को क्रमशः द्वैमातुर, विनायक, गजववत्र, गुहाग्रज और वक्रतुण्ड, धूम्रवर्ण का विशिष्ट विवरण प्राप्त होता है। स्थानाभाव के कारण उनके आठ अवतारस्वरूप नामों की संक्षिप्त व्याख्या इस प्रकार है– वक्रतुण्ड– उनका यह रूप ब्रह्मरूप से सम्पूर्ण शरीरों को धारण करने वाला मत्सरासर का वध करने वाला तथा सिंहवाहन पर चलने वाला है।

1. काणे पी.वी. पृष्ठ 187 धर्मशास्त्र का इतिहास

एकदन्त– इसमें वह मदासुर का वध करने वाले और मूषकसवार बतलाये गये है।

महोदर– भगवान श्री गणेश महोदर नामसे विख्यात अवतार ज्ञान–ब्रह्म का प्रकाशक है। उन्हें मोहासुर का विनाशक तथा उनका मूषक–वाहन बताया गया है।

गजानन– इसमें वह सांख्ययोगियों को सिद्धि देने वाले और लोभासुर के संहार तथा मूषक सवार बतलाये गये है।

लम्बोदर– उनका यह रूप क्रोधासुर के हन्ता और मूषकवाहन के रूप में वर्णित है। इसी के साथ उनका लम्बोदर अवतार सत्स्वरूप तथा शक्तिब्रह्म का धारक है।

विकट– इस नाम का प्रसिद्ध अवतार कामासुर का संहारक है, वह मयूर वाहन एवं सौरब्रह्म का धारक माना गया है।

विघ्नराज–भगवान गणेश का'विघ्नराज नाम अवतार विष्णु ब्रह्म का वाचक है। वह शेषवाहन पर चलने वाला तथा ममतासुर का संहारक है।

धूम्रवर्ण– उनका यह अवतार अभिमानासुर का नाश करने वाला है, वह शिवब्रह्म–स्वरूप है। उसे भी मूषकवाहन ही कहा गया है।

उपर्युक्त वर्णित आठों अवतारों के विस्तृत कथानक गणेशपुराण के अष्टम खण्ड में दिये गये है।[1] गणेश पुराण के क्रीडा खण्ड में भी परमतत्व गजानन के अवतार में उनका सगुण, साकार स्वरूप वर्णित हुआ है। इसमें उनके चार अवतार श्री महोत्कट, विनायक श्री मयूरेश्वर, श्री गजानन, और श्री धूम्रकेतु, युगभेद के साथ भिन्न–भिन्न स्वरूपों में वर्णित है।

श्री महोत्कट विनायक– उनका यह रूप सतयुग में वर्णित बतलाया गया है। इसमें वह कश्यप के पुत्र, नरांतक एवं देवातंक के संहारक, सिंहारूढ़, दस भुजाओं वाले तथा तेजोरूप वर्णित है[2]। इसी में उन्हें ब्रह्म द्वारा वैदिक नाम 'ब्रह्मणस्यति' प्रदान किया गया था। इसी के साथ भारभूति, सुरानंद, सर्वप्रिय, विरूपाक्ष, भालचन्द्र, परशु, मालाधर, फणिराज आसन, धनंजय और प्रभंजन नाम क्रमशः कुबेर, वरूण, शिव, शिव, परशुराम की माता सागर, शेष, अग्नि और वायु से प्राप्त किये।

श्री मयूरेश्वर– उनका यह नाम त्रेतायुग में प्रसिद्ध हुआ। इसमें वह पार्वतीपुत्र के रूप में गणेश व हेरम्ब नाम से भी प्रसिद्ध थे। उनका यह नाम सिन्धु राक्षस का वध करने वाला मयूर वाहरन, ' भुजाओं वाला और शशिवर्ण रूप में ध्यानित है[3]।

श्री गजानन– द्वापरयुग में सिन्दूर राक्षस के विनाश हेतु विनायक ने पार्वती पुत्र के रूप में

---

1. चमनलाल गौतम 'गणेश पुराण' ख्वाजा कुतुब (वेदनगर) बरेली अष्टमखण्ड प्रथम अध्याया, पृ0 340
2. गणेश पुराण–5, 6, 40 वां अध्याय
3. गणेश पुराण– 2, 73–126

गजानन नाम से जन्म लिया इसमें वह मूषक वाहन चार भुजाओं वाले, रक्त वर्ण और वरेण्य के पुत्र के रूप में वर्णित है[1]।

श्री धूम्रकेतू–

कलियुग में अधर्म के नाश व धर्म की स्थापना हेतु विनायक धूम्रकेतु के रूप में अवतार ग्रहण करेंगे[2]। इसमें वह दो भुजाओं और सर्वभावज्ञ के रूप में ध्यानित है। गणेश पुराण में निम्नलिखित ध्यान इस प्रकार वर्णित है–

ध्यायेत् सिंहगतं विनायममुं, दिग्बाहुमाद्ये युगे
त्रेतायां तु मयूवाहनममुं षड् बाहुकं सिद्धिदम्।

द्वापारे तु गजाननं युगभुजु रक्ताङ्गरागं विभुं
तुर्ये तु द्विभुजं सिताङ्गरूचिरं सर्वार्थदं सर्वदा।।

गणेश पुराण के क्रीडाखण्ड के अन्तिम अध्याय में बनारस के 56 गणेश रूपों का वर्णन मिलता है। गणेश के सात आवरणों की चर्चा हैं जिनमें 56 विनायक विद्यमान है–

प्रथम आवरण– मैं दुर्गा विनायक, भीमचण्डी विनायक, देहलीगणप, उदण्ड विनायक, पाशपाणि, सर्वविघ्नहरण विनायक।

द्वितीय आवरण–लम्बोदर, कूटदन्त, शूलंटक, कूष्माण्ड, मुडविनायक, विकटद्विज विनायक, राजपुत्र, व प्रणवाक्य विनायक।

तृतीय आवरण–वक्रतुण्ड, एकदंत, त्रिमुख विनायक, पंचास्य विनायक, हेरम्ब, मोदकप्रिय।

चतुर्थ आवरण–सिंहतुण्ड विनायक, पुण्यताक्ष, क्षिप्रप्रसाद, चिंतामणि, दंतहस्त, प्रचण्ड और दण्डमुण्ड विनायक।

पॉचवा आवरण–स्थूलदंत, कलिप्रिय, चतुर्दन्त, द्वितुण्ड, गजविनायक, काल विनायक, मार्गेशालय विनायक।

छठा आवरण– मणिकार्णिका विनायक, आशासृष्टि विनायक, यक्षारण्य, गजकर्ण, चित्रघंट व सुमंगलमित्र विनाय।

सातंवा आवरण–मोद, प्रमोद, सुमुख, दुर्मुख, गणय, एवं ज्ञान विनायक।

इसके अतिरिक्त अविमुक्त, मोक्षदाता, भगीर विनायक, हरिश्चन्द्र विनायक, कपर्दी व

---

1. गणेश पुराण–2, 127–137
2. गणेश पुराण– 2, 149

बिन्दु विनायक के नामों का भी उल्लेख हुआ है। गणेश पुराण के ऐतिहासिक भूगोल में वाराणसी क्षेत्र का विवरण यह स्पष्ट करता है कि गणेशपुराण के रचनाकाल तक वाराणसी गाणपत्य सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। इसमें गणेश के विविध स्वरूपों एवं नामों का उल्लेख प्रतिमा लक्षण पर प्रकाश डालते है।

पदम् पुराण में उनके 12 नामों का उल्लेख भी मिलता है। गजपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्बर, एकदन्त, गणाधिप विनायक, चारूकर्ण, पाशुपाल, भवत्तनय यह नाम उनके कुछ मूर्ति विज्ञानी स्वरूप की भी अभिव्यक्ति करतें है। हेरम्ब गणेश इसी सन्दर्भ का प्रतीक स्वरूप है। इस पुराण मे टेडीशुण्ड व विशाल शरीर वाले एवं लिंग स्वरूप का भी उल्लेख प्राप्त होता है[1]।

अग्नि पुराण में जहां गणेश के प्रतिमा शास्त्रीय स्वरूप का उल्लेख इस प्रकार मिलता है। कि वे गजमुखी, वक्रतुण्ड, एकदन्त बड़े उदर वाले, धूम्रवर्णी चतुर्भुजी है। वहीं गणेश के अनेक नामों का उल्लेख भी इस पुराण में प्राप्त होता है। कुछ नाम उनके प्रतिमा के स्वरूप को उद्घाटित करते है। जैसे वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजवक्र, लम्बकुक्षी, धूम्रवर्ण[2]।

गरूड़ पुराण[3] में गणेश के बारह नाम दिये गये है। जिनमें एकदन्त, वक्रतुण्ड, त्रयम्बक (त्रिनेत्र,) नीलग्रीवा, लम्बोदर, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र, हस्तिुख जैसे नाम उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप की ओंर इंगित करता है।

स्कन्द पुराण[4] में गणेश के पंचमुखी, दशभुजी और त्रिनेत्र स्वरूप का वर्णन करता है।

ब्रह्यवैवर्त पुराण में उनके आठ नाम– गणेश, एकदन्त, हेरम्बर, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजववत्र और गुहाग्रज है[5]। इनमें से कुछ नाम उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप जैसे लम्बोदर, एकदन्त शूपकर्ण का उल्लेख करते है[6]।

मुद्गल पुराण में भी गणेश के स्वरूप से सन्दर्भित विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। यह पुराण गणेश के नौ विभिन्न स्वरूपों का विवरण देता है, जिनमें अधिकांश प्रतिशास्त्रीय स्वरूप ध्यान से जुड़े हुये है। गणेश के स्वरूप को विवेचित करते हुये एक स्थल पर इसी में उन्हें मनुष्य

1. पदम्पुराण एम.सी.आप्टे, आनंदाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली प्र0 44 से 36 तक
2. अग्नि पुराण आनंदाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली पूजा पृ0 7, 23, 26
3. गरूण पुराण वेकटेश्वर प्रसे, वाम्बे, 129, 25, 26
4. स्कन्द पुराण, प्रथमखण्ड, प्रथम अध्याय, 11 श्लोक
5. ब्रह्यवैर्क्तपुराण, 3/44/85
6. ब्रह्यवैर्क्तपुराण, 13/5

व गज के शरीर का मिला–जुला रूप बताया गया है। मुद्गल पुराण[1] में गणेश को हेरम्ब, सूर्यकर्ण, एकदन्त, ढुढ़िं कहा गया है। उन्हें सिद्धि और बुद्धि का पति भी कहा गया है।

आगम ग्रन्थों एवं अन्य साहित्यिक तथा शिल्पग्रन्थों मे श्री गणेश के नाम एवं स्वरूप–

पुराणों में ही नहीं अपितु आगम ग्रन्थों में भी गणेश के मूर्तिविज्ञानी स्वरूप और नामों का विवेचन है। अजितागम में गणेश में गणेश के दो प्रतिमास्वरूप नामों का वर्णन मिला है। विनायक और वीरभद्र गणेश। सर्वप्रथम यह गणेश को उस विनायक के रूप में विवेचित करता है जो गजमुखी, त्रिनेती, कर्णमुकुट धारण किये हुये है। हाथ में तंक (कुल्हाड़ी) पाश, दन्त, और लडडू है। वे एकदन्त, बड़े होठों वाले नागयज्ञोपवीत, रक्त वस्त्र धारण करते है[2] |दूसरे स्वरूप का विवेचन करते हुये यह आगमन वीरभद्र गणेश[3] का उल्लेख करता है वे चतुर्भुजी त्रिनेत्री है। लोहे का पाश हाथ मे पकड़े हुये है।

अंशु भेदागम[4] में भी गणेश के स्वरूप का वर्णन विनायक नाम से मिलता है जो कमल पर आसीन है तथा अपने दायें हाथों मे स्वदन्त और अंकुश, बाये हाथों में कपित्थ और मोदक लिये हुये है। उत्तरकामिकागमं[5] में गणेश को गणों के नेता के रूप में विवेचित किया गया है। वे गजमुखी, महोदर, नागयज्ञोपवीत युक्त है। गणेश यहॉ श्यामवर्ण के तथा उनके वस्त्र रक्त वर्ण के बताये गये है।

पुराण व आगम ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक तथा शिल्पग्रन्थों मे भी गणेश के प्रतिमास्वरूप का वर्णन मिलता है। अमरकोश[6] में उनके एकदन्त, लम्बोदर आदि नाम उनके स्वरूप से सम्बंधित विवेचना प्रस्तुत करते है।

अपराजितपृच्छा[7] में गणेश का राजमुखी, त्रिनेत्रधारी, एकदन्त, चतुर्भुजी व मानवीय शरीर युक्त और नागयज्ञोपवीतधारी स्वरूप वर्णित है। रूपमण्डन[8] में गणेश के हेरम्ब और वक्रतुण्ड नाम उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप की विवेचना करते है। हेरम्ब गणेश के स्वरूप मे वे पंचमुखी और त्रिनेत्री बतलाये गये है। और वक्रतुण्ड स्वरूप में उन्हें महोदर और त्रिनेत्री स्वरूप में दर्शाया गया है।

---

1. मुदगल पुराण, सप्तमखण्ड, 8 अध्याय, 13 से 17 श्लोक
2. अजितागम क्रिया सिद्ध 36, 302–303
3. अजितागम क्रियासिद्ध 36, 336–338
4. अंशेभेदागम, वाल्यूम भाग–11 प्रष्ठ 2–3
5. अत्तरकामिकोगम, टी. ए, गोपीनाथ से उद्धृत
6. अमरकोश 1, 11–38
7. अपराजित पृच्छा– 212, 35–37
8. रूपमण्डन बलराम श्रीवास्तव, कलकत्ता, 5, 15 से 18 तक

देवतामूर्ति प्रकरण[1] नामक ग्रन्थ में गणेश के प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप का हेरम्ब, गजानन, वक्रतुण्ड, उच्छिष्ट गणपति, क्षिप्रगणपति का स्वरूप व्याख्यायित किया गया है। हेरम्ब को वर्मिलयन लालरंग व अष्टभुजी, गजानन को रक्तवर्ण का बताया गया है।

शिल्परत्न[2] में बीजगणपति के पॉच अलग–अलग प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप के नाम हेरम्ब, गणपति, बालगणपति, शक्ति गणपति, विनायक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

तन्त्र साहित्य में भी गणपति के स्वरूप का बृहद् विवेचन मिलता है। शारदातिलक[3] में गणेश के महागणपति, वीरगणपति शक्ति गणपति और हेरम्ब नाम उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप में प्राप्त होते है।

इन ग्रन्थों मे गणेश के विभिन्न नाम– जैसे बीजगणपति, बालगणपति, तरूणगणपति, वीर विघ्नेश, शक्ति गणपति, लक्ष्मी गणेश, महागणेश, हरिद्रा गणपति, नृतगणपति, उच्छिष्ट गणपति आदि विविध स्वरूपों में प्राप्त है। इनमें शक्ति उन्मत्त तथा उच्छिष्ट गणपति वामाचार तांत्रिक पूजा से जुड़े है।

इसके अतिरिक्त नित्योत्सव, मन्त्रमहोदधि, शुक्रनीति, मंत्र रत्नाकर क्रिया–क्रमद्योति, श्री तत्वनिधि आदि में भी गणपति के विभिन्न नाम प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप में वर्णित है।

अमरकोश में वर्णित श्री गणेश के आठ नामों में से 'गजानन' और 'द्वैमातुर' ये दो नाम विशिष्ट रहस्यात्मक है। इन दोनो नामों के स्वरूपात्मक रहस्य को पैराणिक आख्यान द्वारा समझा जा सकता है एक बार देवराज इन्द्र 'पुष्पभद्रा' नदी के तट पर आये। राजथी से समन्वित मदोन्मत्त कामातुर के रूप में वे इधर–उधर देख रहे थे। उस नदी के तीर पर एक अति मनोरम पुष्पोद्यान था और वहॉ थी पूर्ण एकान्त निर्जनता। उस समय महेन्द्र ने चन्द्रलोक से आती हुई परम सुन्दरी अप्सरा रम्भा को देखा। रम्भा की स्वीकृति पाकर देवेन्द्र उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। स्थल–क्रीड के अनन्तर दोनों ने जलक्रीड़ा की। इसी मध्य वहॉं अकस्मात महर्षि दुर्वासा आ धमके। वे वैकुण्ठ से शिवलोक जा रहे थे। महेन्द्र नें उन्हें सादर प्रणाम किया और महर्षि से आशीवर्चन पाये। मुनीन्द्र दुर्वासा ने नारायण से प्राप्त एक पारिजात–पुष्प महेन्द्र को देकर कहा– ''यह पुष्प सम्पूर्ण विघ्नों का हरणकर्ता है। जो इसे सादर अपने मस्तक पर धारण करता है, वह सर्वथा तेजस्वी, बुद्धिमान,

1. देवता मूर्ति प्रकरण डॉ0 निर्मला यादव 8–28
2. शिल्परत्न, श्री कुमार प्रणीत, उत्तर भाग 25 से 74 तक
3. शारदातिलक, संस्कृत सीरीज तथा तांत्रिक टैक्स्ट 13, 35 से 107 तक

विक्रमी, बलशाली, समस्त देवों से अधिक श्री सम्पन्न तथा हरि–तुल्य पराक्रमी होता है और जो पामर अहंकावश इस हरिप्रसादरूप पुष्प को सादर सिर पर धारण नही कर अपमानित करता है, वह अशेष श्री–सम्पत्ति से भ्रष्ट होकर स्वजनों से च्युत हो जाता है[1]। यह कहकर महर्षि दुर्वासा शिवलोक को चलते बने। इन्द्र ने अहंकार वश उस पुष्प को अपने सिर पर न धारण कर रम्भा के समक्ष ऐरावत हाथी के मस्तक पर रखा दिया। इससे तुरंत शक्र भी भ्रष्ट हो गये। इन्द्र को श्री भ्रष्ट देखकर रम्भा उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। गजराज इन्द्र को नीचे गिराकर अनन्त महारण्य में चला गया और हथिनी के साथ बिहार करने लगा। उस वन में उसके बहुत से बच्चे हुए। इसी समय श्री हरि ने उस हाथी का मस्तक काटकर बालक गणेश की शनैश्चर की दृष्टि से कटी गर्दन में लगा दिया।

सम्भवतः इसी कारण श्री गणेश 'द्वेमातुर' कहे गये 'द्वयोर्मात्रोरपत्यं पुमान द्वेमातुरः।' अर्थात् उनकी एक माता जननी पार्वती और दूसरी माता वह हथिनी हुई, जिसके पुत्र का मस्तक गणेश में योजित किया गया था। उसी समय से वे 'गजानन' की संज्ञा से भी घोषित हुए।

मंगल पाठों में श्री गणेश के विविध नाम एवं उनका स्वरूप

गुप्तकाल से पंचदेवों मे श्री गणेश का अप्रितम महत्व बढ़ गया। हिन्दू–समाज विशेषतः सनातन धर्मानुयायी समाज का कोई भी कार्य भगवान श्री गणेश के अग्रपूजन के बिना न आरम्भ होता है और न इसके बिना उसकी सफलता की पूर्णता की आशा की जाती है। प्रत्येक कृत्य को मंगलमय एवं परिपूर्ण बनाने के उद्देश्य से आरम्भ में श्री गणेश के बारह नामों के पाठ का निर्देश दिया गया है। जिनमें बारह नामों का एक पाठ इस प्रकार है–

सुमुखश्चैकन्दतश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशों विनायकः।।

धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि य पठेच्छृणुयादपि।।

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते।।

इन श्लोकों का भाव यह है कि जो व्यक्ति विद्यारम्भ के अवसर पर विवाह, के समय

1. ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, 3/20/54–57

नगर में अथवा नव निर्मित भवन में प्रवेश करते समय, यात्रादि में कहीं बाहर जाते समय, संग्राम के अवसर पर अथवा किसी भी प्रकार की विपत्ति के समय यदि श्रीगणेश के बारह नामों का स्मरण करता है तो उसके उद्देश्य अथवा मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। श्री गणेश के ये बारह नाम निम्नलिखित है–

1– सुमुख, 2–एकदन्त, 3– कपिल, 4– गजकर्ण, 5– लम्बोदर, 6– विकट, 7– विघ्ननाशन, 8– विनायक, 9– धूम्रकेतु, 10– गणाध्यक्ष, 11– भालचन्द्र, 12– गजानन।

सामान्यतः इन नामों मे श्री गणेश क्रमशः सुन्दर मुख वाले, एक दॉत वाले, कपिलवर्ण, हाथी के समान कान वाले, लम्बे पेट वाले, भयंकर विघ्ननाशन, विशिष्ट नायकों के गुणो से युक्त, धुऍ के रंग की पताका वाले, गणों के अध्यक्ष मस्तक में चन्द्र को धारण करने वाले और हाथी के मुख वाले आदि स्वरूप में वर्णित है। लेकिन संस्कृत–साहित्य प्रेमियों ने श्रीगणेश स्वरूप के इतिहास के आध्यात्मिक, भौतिक अर्थो को उनके ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है।

1. सुमुख–द्वादश नामों मे प्रथम नाम सुमुख है अर्थात सुन्दर मुख वाला। सुन्दरता की व्याख्या आजकल गोरी चमड़ी कहलाती है। श्री गणेश के पिता का 'कर्पूरगौरम' और मॉ पार्वती का 'गौरी' विशेषण मिलता है जिससे यह स्पष्ट है कि श्री गणेश गौरवर्ण थें। लेकिन श्री गणेश का वर्ण कपिल कहा गया है इसी कारण उनका 'सुमख' जैसा विशेषण सन्देह प्रस्तुत करता है। लेकिन महाकवि माघ[1] और रघुवंश[2] के अनुसार–मनुष्य अपने भावनानुसार अपने पूज्य को सुन्दर कह सकता है। परन्तु श्री गणेश के 'सुमुख' विशेषण या नाम की विशेषता शास्त्रीय दृष्टि से इस प्रकार प्रतिपादित की गयी है। 'भगवान शिव' के प्रहार से श्री गणेश की देह का तेज सूर्य के खण्ड के समान बनकर निकला और गोल होकर मेढ़क के समान उछलकर चन्द्रमण्डल में जा मिला। शास्त्रों मे अभिरूचि रखने वाले विद्वान इस तथ्य से सुपरिचत है कि चन्द्र को सौन्दर्य का आगार माना गया है और इसी कथन की पुष्टि के लिये वेदों ने 'चन्द्रमा' मनसो जातः' आदि वाक्य कहकर विश्रात्मा की शुचिता, मनोहारिता का अन्तर्भाव उसमें दिखाया है। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि चन्द्रमण्डल में विलीन उनका तेज तब उन्हें पुनर्जीवित करने के अवसर पर लौटा, तब वह अपने साथ चन्द्र की सम्पूर्ण विशेषताऍ भी लेता आया और श्री गणेश को 'सुमुख' नाम दिलाने में सफल रहा।

---

1. क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः। शिशुपालवध– 4/17
2. भिन्नरूचिर्हि लोकः, रघुवंश 6/30

यहाँ कोई प्रश्न पूछ सकता है कि ''हाथी की सूड़'' छोटी–छोटी आँखे, लंबे–लंबे सूप जैसे कान आदि से युक्त मुख को क्या 'सुमुख' कहा जा सकता है। उत्तर में निवेदन है कि जिनकी दृष्टि में चर्म के रंग–रूप का ही सर्वोपरि महत्व है, उनकी दृष्टि में तो सत्य ही ऐसी रूप रेखा वाला कुरूप ही कहलायेगा, परन्तु जो चर्म से गुणों को अधिक महत्व देते है, वे उसे सुरूप ही नही, श्रेष्ठ भी कहेगे। छोटी आँखे गम्भीरता एवं दीर्घ नासिका बुद्धिमत्ता की सूचक होती है और दीर्घकर्ण बहुज्ञता को प्रकट करने वाले होते है। आधुनिक आकृति–ज्ञान के विद्वान भी इस कथन को सर्वांश में तथ्यपूर्ण स्वीकार करते है। अतः सत्य ही श्री गणेश का 'सुमुख' नाम अन्वर्थक है, विशेषतः इसलिये कि वे अपनी सूँड़ द्वारा ब्रह्मा–विष्णु–महेश के समन्वित् रूप अ, उ, म अर्थात ऊँ को बना–बनाकर अपने माता–पिता का मनोरंजन किया करते थे और जो भी अंक–विशेष भगवान के श्रवण–स्मरण आदि परिचर्यालीन हो, वह 'सु' उपसर्ग का उचित अधिकार है ही, अतः श्रीगणेश का समुख नाम अन्वर्धक है–

योऽलेखीदिव शुण्डकुण्डलविधे रोमक्षरं त्रयक्षरं
त्वाकृत्या गुणवृद्धिसंज्ञकतया विख्यातवर्णावलीम्।

नाधारो न च लेखनी न च मसी व्योम्न्येवं शुण्ड भ्रमो
नत्यौन्नत्यसुशिल्पकल्पनपरस्तातस्य मातुः पुरः।।[1]

श्री गणेश का दूसरा नाम है– 'एकदंत' इसके पीछे परशुराम के संघर्ष की घटना है। भागवती पार्वती एक बार जब स्नान कर रही थी और गणेश द्वार पर रहकर किसी को भी भीतर जाने से रोक रहे थे, तभी सहसा परशुराम वहाँ आये और भीतर जाने के लिये हठ करने लगे। बात बढ़ चली और दोनों मे ठन गयी। यद्यपि गणेश की छोटी अवस्था के कारण परशुराम पहले प्रहार करना नही चाहते थे, परन्तु गणेश के तीव्र वाक् प्रहारों से चिढ़कर उन्हें प्रथम प्रहार करना पड़ा और उसके फलस्वरूप गणेश का एक दाँत टूट गया।

यह तो हुई ऐतिहासिक बात,, अब इसके तात्विक पक्ष को लीजिये। दो वस्तुएँ सदैव द्वैत की परिचायक होती है। जब तक गणेश के मुख मे दो दाँत थे, वे अद्वैत–विधायक न थे। अतः जब और जैसे ही गणपति का एक दाँत टूटा, वे अद्वैत के प्रतीक बन गये। इस कथन का समर्थन इस रूप में होता है–

1. गणपति सम्भव 5/53

प्राग् द्वैतभ्रम एवं भाति नितराम द्वैतमेवान्तत
एतद्बोधयते रदो गणपतेरेकत्वमेवाश्रयम्।।[1]

इस प्रकार श्री गणेश का अद्वैत विधायक द्वितीय नाम 'एकदन्त' भी सार्थक हुआ।

श्री गणेश का तृतीय नाम है– 'कपिल'। यह विशेषण शब्द है जिसका हिन्दी मे अर्थ है– भूरा, तामड़ा मटमैला। अंग्रेजी मे इसे 'ब्राउन' कहते है। यदि इस शब्द को आकारान्त बना दिया जाय तो इसका रूप बनेगा 'कपिला' अर्थ होगा 'गौ'। अतः भाव स्पष्ट हो जाता है जैसे गौ धूसरवर्ण की होती हुई भी दूध, घी दही आदि पोषक पदार्थ एवं गोमय गोमूत्र आदि रोगविनायक पदार्थ प्रदान कर मानव का हित साधन करती है, उसी प्रकार कपिलवर्ण के श्री गणेश भी बुद्धिरूपी दधि, ज्ञानरूपी घ्रत, समुज्जल भावरूप दुग्ध द्वारा मावर को पुष्ट बनाते है, अथवा उसके बौद्धिक पक्ष को पुष्ट बनाने वाले पदार्थ प्रदान कर त्रिविध तापों का शमन करतें है। अतः यह तृतीय नाम भी सार्थक है।

श्री गणेश का चतुर्थ नाम है– 'गजकर्ण' अर्थात हाथी के समान कान वाला। विज्ञ पाठक जानते हैं कि श्री गणेश को भारतीय आर्यपरम्परानुयायी बुद्धि का अधिष्ठातृ देवता मानते है और इसलिये अपने आराध्य को उन्होने लम्बे कानों वाला प्रतिपादित किया है कि जिससे उनका बहुश्रुतत्व अथवा उनकी एतिद्विषयक अभिरूचि का यथावत परिज्ञान करा सकें। अर्थात् 'मनुष्य को चाहिये कि सुन तो ले सब कुछ, परन्तु कोई भी कार्य ऊँचे लोगों के साथ बिना विचार किये करे नही यह सिखाने की इच्छा से ही गणपति ने हाथी के समान लंबे कान धारण किये है।

पुराणों में श्री गणेश के गजकर्णत्व अथवा शूर्पकर्णत्व का कारण बताते हुए कहा– 'श्री गणेश योगीन्द्र–मुख से वर्ण्यमान तथा श्रेष्ठ जिज्ञासुओं से श्रूयमाण विषय को हग्दतकर सूर्य के समान पाप–पुण्यरूप रज को दूर करके ब्रह्मप्राप्ति सम्पादित कर देते है, अतः उन्हें इसी नाम से व्यवहृत किया जाता है। इस दृष्टि से श्री गणेश का यह चतुर्थ नाम भी सार्थक सिद्ध हो जाता है।

श्री गणेश का पॉचवा नाम है– 'लम्बोदार'। इसका अर्थ है लंबे अर्थात विशाल पेट वाला। गणेश–गायत्री में श्री गणेश का स्मरण इस प्रकार किया गया है–

''लम्बोदराय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।
तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।

इस नाम का उद्देश्य सांसारिक जनों को शिक्षा देना एवं उन्हे निर्विघ्न जीवन–यापन

1. गणपति सम्भव 9/53

में सक्षम बनाना है। इस संसार मे द्विविध पुरूष पाये जाते है एक व, जो प्रत्येक प्रकार की भली–बुरी बात सुनकर उसे उदरस्थ कर लेते है तथा दूसरे वे, जो किसी भी बात को पचा नहीं पाते, उगल पाते है और अपनी इस क्रिया अथवा चेष्टा द्वारा सम्पूर्ण वातावरण को विषाक्त बना देते है। अतः उक्त नाम तादृश शिक्षाविद्यायक होने के कारण न केवल अन्वर्थक, अपितु अनुकरणीय है।

इसके अनन्तर श्री गणेश का छठा नाम सामने आता है और वह है– 'विकट। 'विकट' का अर्थ होता है– भयंकर। श्री गणेश का आधा धड़ अर्थात् नीचे का भाग नर का और ऊपर का भाग अर्थात मुख हाथी का है। अतः ऐसा विकट प्राणी विकट होगा ही– यह निर्विवाद है। श्री गणेश के नाम के रूप में इसका भाव यह है कि श्री गणेश अपने नाम को सार्थक बनाते हुए सभी प्रकार के विघ्नों की निवृत्ति के लिये विघ्नों के मार्ग में 'विकट' बनकर उपस्थित रहते है, क्योकि वे जानते है– शठे शाठयं समाचरेत् अर्थात बुरे और दुष्ट व्यक्तियों का सौम्यता से नही अपितु तद्वत बनकर ही दबाया जा सकता है। अतः यह नाम भी सार्थक ही है।

श्री गणेश का सप्तम नाम है– विघ्ननाश। भगवान श्री गणेश सम्पूर्ण विघ्नों के विनाशक है। 'गणपत्यथर्वशीर्ष' के नवम मंत्र मे श्री गणेश के लिये लिखा है– विघ्ननाशिने शिवसुतारा वरदमूर्तये नमः। इसका भाव है– 'हम विघ्नों को नष्ट करने वाले, शिव के पुत्र, वर–प्रदायी मूर्तिरूप में प्रकटित श्री गणेश को नमस्कार करते है। 'स्कन्द पुराण' के अनुसार इन्द्र ने निज–भागशून्य यज्ञ के विध्वंस के लिये जब काल का आहवान किया, तब वह विघ्रासुर के रूप में प्रकटित हो अभिनन्दन राजा को मार सत्कर्मो का लोप करने लगा। तब महर्षियों ने ब्रह्माजी की प्रेरणा से श्री गणेश की स्तुति कर उनके द्वारा विघ्नासुर का उपद्रव दूर करवाया। उसी समय से गणेश पूजन स्मरणादि विरहित कार्य में विघ्न का प्रादुर्भाव अवश्य होता है– यह मान्यता स्वीकार कर कार्यारम्भ में श्री गणेश–पूजन अनिवार्य प्रतिपादित किया गया है। विघ्न भी सामान्य नही है। यह कालस्वरूप होने से भगवत स्वरूप, अतएव अतीव महिमान्वित है। इसके स्वरूप का निदर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है-- 'विशेषेण जगत्सामर्थ्य हन्तीति विघ्नः– ब्रह्मादिक की भी जगत्सर्जनादि सामर्थ्य का हरण करने वाला तत्व, किंवा सत्व को 'विघ्न' कहते है।'' इस पर यदि किसी का शासन चलता है तो श्री गणेश का ही अतः गणेश का 'विघ्नेश नाम न केवल सार्थक, अपितु उनकी लोकोत्तर महिला का भी व्यापक है।

गणेश की इस नामावली का अष्टम नाम है– 'विनायक।' इसका अर्थ है– विशष्ट नायक या विशिष्ट स्वामी। कतिपय विद्वानों ने 'वि' उपसर्ग को विघ्न का लघुस्वरूप स्वीकार कर 'विनायक' का अर्थ पूर्णतः श्री गणेश पर चरितार्थ होता है, क्योंकि ब्रह्मादि देवता अपने–अपने कार्य

में विघ्न पराभूत होने के कारण स्वेच्छाचारी नही हो सकते, परन्तु गणेश के अनुग्रह से ही विघ्नरहित होकर कार्य–सम्पादन में समर्थ होते है और यही कारण है कि पुण्याहवाचन के अवसर पर 'भगवन्तौ' विघ्न विनायकौ प्रीयेताम् कहकर विंध और उनके पराभव कर्ता श्री गणेश दोनो का स्मरण किया जाता है। इससे वि–विघ्न, नायक स्वामी–विनायक शब्द की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। शिवपुरा, ज्ञानसंहिता के अनुसार श्री गणेश के विनायक–नामकरण का कारण भगवान शंकर ने इस प्रकार बताया है– "हे पार्वती! यह कुमार मुझ नायक के बिना ही उत्पन्न होकर पुत्र बना है, अतः इसका अन्वर्थक नाम' वि–नायक' (नायक विरहित) ही संसार में विख्यात होगा–

नायकेन बिना देवि मया भूयोऽपि पुत्रकः।
यस्माजतस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः।।[1]

इस प्रकार सभी दृष्टियों से गणेश का 'विनायक' नाम भी उनकी विशेषताओं का परिचायक एवं अन्वर्थक है।

अब लीजिये नवम नाम को वह है– 'धूम्रकेतु'। धूम्रकेतु का सामान्य अर्थ है–अग्नि और शब्दार्थ है– धुएं के ध्वजवाला। श्री गणेश के संदर्भ में इसके दो भाव प्रकट होते है।

1– संकल्प विकल्पात्मक धूम–धूसर अस्पष्ट कल्पनाओं को साकार बनाने वाला तथा उन्हें मूर्तरूप दे ध्वजवत् नभोमण्डल में फहराने वाले होने के कारण गणेश का धूम्रकेतु नाम अन्वर्थक है।
2– इसी प्रकार अग्नि के समान मानव की आध्यात्मिक अथवा आधिभौतिक प्रगति के मार्ग में आने वाले विघ्नों को भस्मात् कर मानव को चरमोत्कर्ष की दिशा में उन्मुख बनाने की क्षमता से परिपूर्ण होने के कारण भी गणेश का 'धूम्रकेतु' नाम सार्थक ही प्रतीत होता है।

'गणध्यक्ष' श्री गणेश का दशम नाम है। इसके दो अर्थ है–
1– संख्या में परिगणित हो सकने योग्य सभी पदार्थो के स्वामी तथा
2– प्रमथादि गणों के स्वामी। विचार करने पर उक्त दोनों ही नाम अन्वर्थक जान पड़ते है।

गणेश के स्वामी तो श्री गणेश है ही। इस पद पर ये स्वयं भगवान शंकर द्वारा प्रतिष्ठित किये गये या गणों द्वारा इस सम्बन्ध में दोनो ही प्रकार के विवरण प्राप्त होते है। 'गणपतिसम्भव' के अनुसार जब भगवान शंकर के गज का मस्तक जोड़कर श्री गणेश को पुनर्जीवित कर दिया, तब सभी शिवगण समवेत होकर नाचते हुए अपने ऊपर उनको वरीयता देने लगे तथा 'गणपति' कहकर सम्बोधन करते हुए उनका जय–जयकार मनाने लगे[2]।

---

1. शिवपुराण 33/72–73
2. गणपति सम्भव 5/61

भारत के मूर्धन्य सनातनधर्मी विद्वानों ने सर्व–जगन्नियन्ता पूर्ण परमतत्व को ही 'गणपति–तत्व' के रूप में स्वीकार प्रतिपादित किया है। उनका यह दृष्टिकोण पूर्णतः शास्त्रसम्मत है। संस्कृत में 'गण' शब्द समूह का वाचक माना गया है– 'गणशब्द समूहस्य वाचकः परिकीर्तितः'। अतः गणपति का अर्थ है– समूहों को पालन करने वाला परमात्मा।' ' गणानां पति। गणपतिः।' देवादिकों के पति को भी 'गणपति' कहते है। इसके अतिरिक्त और भी कई रूपों में गणपति का निर्वचन प्राप्त होता है।

यथा– 'महत्वादि तत्वगणानांपतिः गणपति' 'निर्गुण–सगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपति।' एवं सर्वविधि गणों को सत्ता–स्फूर्ति देने वाला परमात्मा ही 'गणपति' है। अभिप्राय यह है कि 'आकाशस्तल्लिङ्गांत्[1] इस न्याय से जिसमें ब्रह्मतत्व के जगदुत्पत्ति स्थिति–कारणत्व– ''सर्वाणि हवा इमानि भूतान्याकाशादेव समुत्यपद्यन्ते।' इस श्रति से माना जाता है एवं इसी के आधार पर वह भी आकाशपदवाच्य पर मात्मा माना जाता है। इस दृष्टि से निष्कर्षरूप में कहा जा सकता है क्योंकि गणपति तत्व की अवगति में शास्त्र ही प्रमाण है, अतः उनके अनुसार तथा 'गण' शब्द की व्युत्पत्ति – 'गण्यन्ते बुध्यन्ते ते गणाः' के अनुसार 'गणपति' शब्द का अर्थ यही लेना चाहिये। गण–शब्द से व्यवहृत सर्वदृश्य मात्र का अधिष्ठान ही 'गणपति' है, क्योंकि शास्त्र गणपति को पूर्ण ब्रह्म प्रतिपादित करते ही है, अतः गणों के अधिपति तथा गणशब्द से व्यवहृत सर्वदृश्यमात्र के अधिष्ठानभूत होने के कारण श्रीगणेश का यह नाम भी अन्वर्थक ही है।

श्री गणेश का ग्यारहवॉ नाम है– भालचन्द्र। इसका भाव है जिसके मस्तक (भाल) पर चन्द्र हो। भगवान शंकर के मस्तक में विराजमान चन्द्रमा का ही संक्षिप्त संस्करण है। चन्द्र की उत्पत्ति विराट के मन से मानी जाती है उस चन्द्र–तत्व से सब प्राणियों के मन अनुप्राणित मानते है। अतः श्री गणेश के संदर्भ में इसका भाव यही है कि वे भाल पर चन्द्र को धारण कर उसकी शीतल–निर्मल कान्ति से विश्व के सभी प्राणियों को आप्यायित किया करते है। इसके साथ ही 'भालचन्द्र' से यह भी विदित होता है कि 'व्यक्ति का मस्तक जितना शान्त हागा, उतनी ही कुशलता के साथ वह अपना दायित्व निभा सकेगा। श्री गणेश गणपति अर्थात् प्रत्येक गणनीय वस्तु के पति है, अतः अपने भाल पर सुधाकर अथवा हिमांशु को धारणकर उन्होनं अपने मस्तिष्क को सशान्त बनाये रखने के प्रयास में सफलता पाकर तत्परक नाम धारण सफलताकामियों के लिये एक समुज्जवल मार्ग प्रशस्त किया है और बताया है कि यदि वे अपने मस्तक में चन्द्र की सी शीतलता लेकर कार्यरत होगे तो सफलता निश्चय ही उनकें पग चूमेगी।

1. ब्रह्मसूत्र 1/1/22

कुछ विद्वानों ने यह भी उत्प्रेक्षा की है कि भगवान शंकर ने भी अपने मस्तक पर चन्द्र को धारण किया है और गणेश ने भी इसी कारण वे 'शशिशेखर' कहलाते हैं और ये भालचन्द्र। इस चन्द्र–धारण का उद्देश्य जहाँ शिव के पक्ष में इतना ही है कि उनके ललाट की ऊष्मा, जो त्रिलोक को भस्मसात् करने में सक्षम है, उन्हें पीड़ित न करे, इसी हेतु से भगवान शिव ने अपने सर पर गंगा और चन्द्र दोनों को धारण कर रखा है, वही गणेश के पक्ष में इसका भाव है कि शिव–परिवार के वाहनों के सहज वैर के सम्भावित परिणाम को दृष्टिगत रख गणेश ने अपने मस्तक में चन्द्र को धारण किया है।

देवमोदकोपहार– प्रसंग में भालचन्द्र को लेकर कवि ने अच्छा मनोरंञजन किया है। जब गणेश और कार्तिकेय परस्पर मोदकों से प्रहार कर रहे थे, तब इधर गणेश और उधर शिव के गले के सर्प फुत्कार करने लगे, जिससें उनके शरीर पर रमायी हुई भस्म उड़ने लगी और देखते ही देखते अन्धकारपूर्ण रात्रि का साम्प्रज्य चतुर्दिग् में व्याप्त हो गया। इन दोनों का फुत्कारों से भालस्थ अग्नि होली की आग–सी प्रदीप्त हो उठी। उस की ऊष्मा से चन्द्र पिघलकर ऊपर से अमृत टपकाने लगा, जिससे शिव के आसन पर बिछा हुआ शेर का चर्म जीवित हो दहाड़ने लगा और यह सुनते ही नन्दीश्वर डरकर भाग खड़े हुए जिससे पार्वती को अनायास हंसी आ गयी।

इसके साथ ही भालचन्द्र से यह भी प्रतीत होता है कि चन्द्रमा है ब्राह्मणों का राजा– सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा'। और ब्राह्मण कहते है। ब्रह्म को जानने वाले को 'ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः और ब्रह्मवेत्ता सर्वोत्कृष्ट पद का अधिकारी होता ही है। अतः ब्राह्मणों के राजा को अपने भाल में स्थापित कर भगवान गणेश ने सम्पूर्ण ब्रह्मज्ञान को अपने मस्तक में सचित संस्थापित किया है और उसी के कारण वे अग्रपूजा के अधिकारी बने है, अतः यह नाम भी अन्वर्थक है, इसमें संदेह नही।

इस द्वादश नामवली का अन्तिम नाम है– 'गजानन' अर्थात हाथी के मुखवाला। गणेश के कण्ठ से ऊपर का भाग हाथी का है, इस तथ्य से सभी सुपरिचित है। नराकृति अर्धांग के साथ हाथी के मस्तक का मूल एक जीवित आश्चर्य भी कहा जा सकता है परन्तु जब गजानन के सभ अवयवों पर दृष्टिपात कर हम एक निष्कर्ष पर पहुचते है, तब आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है। मुख भाग में निम्न अवयवों विशेषतः परिगणति होते है– जिह्वा दन्त, नासिका, कान और ऑख। जिह्वा सब विघ्नों की जड़ है। यह बहिर्मुखी होने के कार परदोषगणन में विशेष रूचि लेती है, परन्तु यदि मन जिह्वाव के नुकीले भाग को दूसरों की ओर से हटाकर अपनी ओर कर ले, अर्थात् अपने दोषों का परिगणन करने लगे तो अनेकानेक झंझटों से मुक्त हो जाय। प्रकृति ने अन्य सभी

प्राणियों के विपरीत हाथी की जिह्वा को दंतमूल की ओर से कण्ठ की ओर लपलपाती हुई लगाया है अतः निर्विघ्नता विधायक विशेषता गणेश में विद्यमान रहकर उन्हें विघ्नविनाशक का अन्वर्थक आश्रय बनाती है।

दन्त के सम्बंध में यह कहावत प्रसिद्ध ही है कि 'हाथी के दॉत खाने के और तथा दिखाने के ओर होते है' गणेश के दॉत भी इस बात के परिचायक हैं कि बुद्धिमान व्यक्ति को ऊपरी दिखावा आन्तरिक भावों से सर्वथा भिन्न रखना चाहिये, विशेषतः उस स्थिति में, जबकि उसका सामना किसी सबल से हो। परन्तु यह नीति केवल महाभारत के शब्दों मे 'मायाचारो मायया बाधितव्यः' के अनुसार एक सीमा तक ही आचरणीय है, सर्वथा एवं सर्वदा अनुकरणीय नही। इसलिये हाथी का मुख होते हुए भी दिखावे के दॉत केवल एक ही गणेश के साथ सम्पृक्त कर उन्हें 'एकदन्त' पद से व्यवहत किया जाता है।

'नाक' प्रतिष्ठा की घोतक है। लम्बी नाक, नाक कट जाना, नाक बचाना आदि वाक्य प्रतिष्ठा के रक्षवादि से ही सम्बद्ध है। इसी नाक की प्रतिष्ठा के लिय ही व्यक्ति अनेकानेक उपाय करता है और उन कार्यो से बचता है जिससे उसकी नाक कट जाये। इस प्रकार गणेश की दीर्घनासिका मानव को नाक की सुदीर्घ प्रतिष्ठा की रक्षा का संदेश देकर उसे प्रतिष्ठित कार्य व्यापार की ओर अग्रसर बनाती हुई स्वयं अपनी महत्ता का स्थापन कर देती है।

लम्बे चौड़े कान सार–सँभार ग्रहणक्षमता एवं निन्दा पाचन की क्षमता के परिचायक है।

हाथी के नेत्र प्रकृति ने कुछ इस प्रकार बनाये है कि उसे छोटी वस्तु भी बड़ी दिखाई देती है। श्री गणेश की ऑखे हाथी की होने के कारण हमें बताती है कि मानव का दृष्टिकोण उदार होना चाहिये। उसे अपने गुणों की अपेक्षा अन्य के गुणों को अधिक विकसित रूप में देखना चाहिये। तभी वह एक आदर्श की स्थापना में सफल हो सकेगा। इसके साथ ही गणेश के लघु नेत्र यह भी संदेश देते है कि वे ऑखे छोटी होती हुई भी विशाल और श्रेष्ठ है, जो लघु प्राण को भी बृहद् या महान के रूप मे देखती आत्मसात् करती और समाहत करती है।

इस प्रकार अनेकानेक विशेषताओं से परिपूर्ण होने के कारण श्री गणेश को 'गजानन' शब्द से अभिहित किया गया है, जो सर्वांश में सार्थक है। परन्तु यह होते हुए भी गणेश के कण्ठ से पाद तक के शरीर को नराकृति प्रतिपादित किया गया है और यह इसलिये कि प्रकृति में केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो स्पष्टवक्ता, उदारमना, विभिन्न कार्यसम्पादक एवं भुक्ति–मुक्ति–साधक कहा जा सकता है। अतः श्रीगणेश के मानव शरीर द्वारा श्री ततद् विशेषताओं का दिग्दर्शन कराने के लिये उनका आकण्ठ शरीर नर का प्रतिपादित किया गया है।

'गणपति सम्भव' में गज–मनुज–योजन का उद्देश्य भगवान शंकर ने इस प्रकार बताया है– हे उमे। हाथी और मनुष्य की आयु 120 वर्ष की अर्थात समान निश्चित की गयी है, उसकी को समझाने के लिये तुम्हारे पुत्र के शरीर ने नर एवं गज का मिश्रित रूप धारण किया है। अतः मानव को यत्नपूर्वक वह आयु प्राप्त करनी चाहिए। लोक में हाथी की पूजा करने वाला पुरूष मान्य और धन्य होता है और जिसे हाथी स्वयं अपनी सूड से सिर पर चढ़ाये उसकी धन्यता तो असंदिग्ध है ही। मानव और गज के पारस्परिक सम्बंध को प्रकट करने के लिये ही हमारे पुत्र ने यह नर–गजात्मक रूप धारण किया है। जैसे इस के शुण्ड के हिंडोले में लक्ष्मी झूलती है, वैसे ही नर की दोनों भुजाओं मे भी झूले। जैसे श्वेतवसना सरस्वती हाथी के दॉतो मे द्विगुणरूप से अपनी छटा दिखाती है, वैसे ही नर के दन्ताग्रपर भी प्रकट करें। जैसे हाथी खूब खाता है और बंधे हुए पुरीषपिण्ड देता है, वैसे ही मानव भी उक्त दोनों क्रियाएँ करता हुआ स्वस्थ रहे। इसी भाव को साकार बनाने के लिये उभयात्मक रूप धारण कर यह हमारे पुत्र के रूप में आया है[1]।

इस प्रकार अमितौजा भगवान गणेश के द्वादश प्रमुख नामों की यथामति–यथागति व्याख्या करने के उपरान्त हम विघ्नहरण के चरणकमलों में सादर सांजलि प्रणाम, इन शब्दों के साथ समर्पित करते है–

सिन्दूरपूरपरिशोभितपूर्णशुण्डं
श्रीकुण्डतुल्ययुग कुण्डल मण्डिगण्डम्।
तुण्डेन विघ्नभयकाननभंगचण्डं
वन्दे महेशगिरिजामहिमांशुपिण्डम्।।

श्री गणेश के मंगलपाठों मे आठ से बारह नामों के बढते–बढ़तें सहस्त्रनाम तक निर्दिष्ट है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे गणेश जी की विधिवत पूजा से अपना कार्य आरम्भ करे, चाहें पूजा न करके भी गणेश जी का नामस्मरण ही कल्याणकारी है। यदि किसी मांगलिक कार्य के प्रारम्भ, मध्य और अन्त में श्री गणपति भगवान का स्मरण न होतो आरम्भ कार्य का निर्विघ्न समापन कठिन हो जाता है। गणेश के आदि पूज्य होने के पीछे भी राम नाम की महिमा की कथा प्रचलित है। श्री गणेश ने पृथ्वी पर राम का नाम लिखकर उसक सात बार परिक्रमा कर देवताओं की परिक्रमा के होड़ मे प्रथम स्थान पा लिया था। इसी कारण रामायण में तुलसीदास ने राम नाम की महत्ता का वर्णन किया है[2]। वहॉ स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि 'राम नाम जप' का ही

1. गणपतिसम्भव– 5/50–52
2. महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूर्जिअत नाम प्रभाऊ। रामचरति मानस 1.18.2

यह प्रभाव था जिसके द्वारा गणेश जी समस्त देवता समूह में सर्वप्रथम पूज्यनीय हो गये जैसा कि वसिष्ठसंहिता में वर्णित है—

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं सर्व सच्चिदानन्द विग्रहम्।।

इसी कारण नाम जप, नाम—स्मरण तथा नाम—चिन्तन की अत्यधिक महिमा हमारें शास्त्रों में निरूपित हुयी है। शास्त्रों में पंचदेवों की उपासना पूर्ण ब्रह्म के रूप प्रस्तुत की गई है। गणेश विष्णु, शिव दुर्गा और सूर्य, इन पंचदेवों में किन्ही एक को अपना इष्ट मानकर उनके सहस्त्रनाम जप का पाठ भक्तजनों के कल्याण हेतु निर्दिष्ट है। यहां श्री गणेश के सहस्त्रनाम—रूपों की नामावली प्रस्तुत है जो कि उनकी महिमा का बखान करती है।

1 ऊँ गणेश्वराय नमः।[1]
2 ऊँ गणाध्यक्षाय नमः।
3 ऊँ गणाराध्याय नमाः।
4 ऊँ गणप्रियाय नमः।
5 ऊँ गणनाथाय नमः।
6 ऊँ गणस्वामिने नमः
7 ऊँ गणेशाय नमः।
8 ऊँ गणनायकाय नमः।
9 ऊँ गणमूर्तये नमः।
10 ऊँ गणपतये नमः।
11 ऊँ गणधिराजे नमः।
12 ऊँ गणराजे नमः।
13 ऊँ गणगोप्त्रे नमः।
14 ऊँ गणाङ्गाय नमः।
15 ऊँ गणदैवताय नमः।
16 ऊँ गणबन्धवे नमः।
17 ऊँ गणसुहदे नमः।
18 ऊँ गणाधीशाय नमः।
19 ऊँ गणेशानाय नमः।
20 ऊँ गणगीताय नमः।
21 ऊँ गणोच्छ्रयाय नमः।
22 ऊँ गण्याय नमः।
23 ऊँ गणहिताय नमः।
24 ऊँ गर्जग्दणसेनाय नमः।
25 ऊँ गणोद्वताय नमः।
26 ऊँ गणभीति प्रमथनाय नमः।
27 ऊँ गणभीत्यपहारकाय नमः।
28 ऊँ गणनार्हाय नमः।
29 गणपालनतत्पराय नमः।
30 ऊँ गणजिते नमः।
31 ऊँ गणगर्भस्थाय नमः।
32 ऊँ गणप्रवणमानसाय नमः।
33 ऊँ गणगर्वपरीहर्त्रे नमः।
34 ऊँ गणाय नमः।
35 ऊँ गणनमस्कृताय नमः।
36 ऊँ गणर्चिताङ्घ्रियुगलाय नमः।

1.स्त्रियों तथा जिनका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है उन्हें प्रत्येक नाम के पहले ऊँ के स्थान पर 'श्री' शब्द का प्रयोग करना चाहियै। जैसे— श्री गणेशाय नमः।

37 ऊँ गणप्रथाय नमः।

38 ऊँ गणप्रियसखाय नमः।

39 ऊँ गणप्रियसुहदे नमः।

40 ऊँ गणप्रियरताय नमः।

41 ऊँ गणप्रीति विवर्धनाय नमः।

42 ऊँ गणमण्डलमध्यस्थायनमः।

43 ऊँ गणकेलिपरायणाय नमः।

44 ऊँ गणाग्रण्ये नमः।

45 ऊँ गणकेतवे नमः।

46 ऊँ गणाग्रगाय नमः।

47 ऊँ गणहेतवे नमः।

48 ऊँ गणग्राहिणे नमः।

49 ऊँ गणानुग्रहकारकाय नमः।

50 ऊँ गणागणानुग्रहभुवे नमः।

51 ऊँ गणागणवरप्रदाय नमः।

52 ऊँ गणस्तुताय नमः।

53 ऊँ गणप्राणाय नमः।

54 ऊँ गणसर्वस्वदायकाय नमः।

55 ऊँ गणवल्लभमूर्तये नमः।

56 ऊँ गणभूतये नमः।

57 ऊँ गणेष्टदाय नमः।

58 ऊँ गणसौख्यप्रदात्रे नमः।

59 ऊँ गणत्रात्रे नमः।

60 ऊँ गणज्याय नमः।

61 ऊँ गणपाय नमः

62 ऊँ गणक्रीडाय नमः।

63 ऊँ गणदेवाय नमः।

64 ऊँ गणाधिपाय नमः।

65 ऊँ गणज्येष्ठाय नमः।

66 ऊँ गणरक्षणकृते नमः।

67 ऊँ गणध्याताय नमः।

68 ऊँ गणगुखे नमः।

69 ऊँ गणप्रणयतत्पराय नमः।

70 ऊँ गणागणपरित्रात्रे नमः।

71 ऊँ गणधिहरणोद्धुराय नमः।

72 गणसेतवे नमः।

73 गणनुताय नमः।

74 ऊँ गुणाकृतिधराय नमः।

75 ऊँ गुणशालिने नमः।

76 ऊँ गुणप्रियाय नमः।

77 ऊँ गुणपूर्णाय नमः।

78 ऊँ गुणाम्भोधये नमः।

79 ऊँ गुणभाजे नमः।

80 ऊँ गुणदूरगाय नमः।

81 ऊँ गुणागुणवपुषे नमः।

82 ऊँ गौणशरीराय नमः।

83 ऊँ गुणमण्डिताय नमः।

84 ऊँ गुणस्त्रष्ट्रे नमः।

85 ऊँ गुणेशानाय नमः।

86 ऊँ गुणेशाय नमः।

87 ऊँ गुणेश्रराय नमः।

88 ऊँ गणप्रोढ़ाय नमः।

89 ऊँ गणभर्त्रे नमः।

90 ऊँ गणप्रभवे नमः।

91 ऊँ गणसेनाय नमः।

92 ऊँ गणचराय नमः।

93 ऊँ गणप्राज्ञाय नमः।

94 ऊँ गणैकराजे नमः।

95 ऊँ गण श्रेष्ठाय नमः।

96 ऊँ गणप्रेष्ठाय नमः।

97 ऊँ गणदुखप्रणाशनाय नमः।

98 ऊँ गणप्रथितनाम्ने नमः।

99 ऊँ गणाभीष्टकराय नमः।

100 ऊँ गणमान्याय नमः।

101 ऊँ गणख्याताय नमः।

102 ऊँ गणवीताय नमः।

103 ऊँ गणोत्कटाय नमः।

104 ऊँ गणपालाय नमः।

105 ऊँ गणवराय नमः।

106 ऊँ गणगौरवदायकाय नमः।

107 ऊँ गणगर्जितसंतुष्टाय नमः।

108 ऊँ गणस्वच्छन्दगाय नमः।

109 ऊँ गणराजाय नमः।

110 ऊँ गणश्रीदाय नमः।

111 ऊँ गणाभयकराय नमः।

112 ऊँ गणमूर्धाभिषित्काय नमः।

113 ऊँ गणसैन्यपुरः सराय नमः।

114 ऊँ गुणातीताय नमः।

115 ऊँ गुणमयाय नमः।

116 ऊँ गुणत्रयविभागकृते नमः।

117 ऊँ गुणिने नमः।

118 ऊँ गुणवते नमः।

119 ऊँ गुणसम्पन्नाय नमः।

120 ऊँ गुणानन्दितमानसाय नमः।

121 ऊँ गुणसंचारचतुराय नमः।

122 ऊँ गुणसंचयसुन्दराय नमः।

123 ऊँ गुणगौराय नमः।

124 ऊँ गणाग्रथाय नमः।

125 ऊँ गणनाम्न नमः।

126 ऊँ गुणसृष्टजगत्संघाय नमः।

127 ऊँ गुणसंघाय नमः।

128 ऊँ गुणैकराजे नमः।

129 ऊँ गुणप्रवृष्टाय नमः।

130 ऊँ गुणभुवे नमः।

131 ऊँ गुणीकृतचराचराय नमः।

132 ऊँ गुणप्रवणसंतुष्टाय नमः।

133 ऊँ गुणहीनपराड्मुखाय नमः।

134 ऊँ गुणैकभुवे नमः।

135 ऊँ गुणश्रेष्ठाय नमः।

136 ऊँ गुणज्येष्ठाय नमः।

137 ऊँ गुणप्रभवे नमः।

138 ऊँ गुणज्ञाय नमः।

139 ऊँ गुणसम्पूज्याय नमः।

140 ऊँ गुणैकसदनाय नमः।

141 ऊँ गुणप्रणयवते नमः।

142 ऊँ गौणप्रकृतये नमः।

143 ऊँ गुणभाजनाय नमः।

144 ऊँ गुणिप्रणतपादाब्जाय नमः।

145 ऊँ गुणिगीताय नमः।

146 ऊँ गुणोज्ज्वलाय नमः।

147 ऊँ गुणप्रदाय नमः।

148 ऊँ गुणकृते नमः।

149 ऊँ गुणसम्बन्धाय नमः।

150 ऊँ गुणभृते नमः।

151 ऊँ गुणवन्धनाय नमः।

152 ऊँ गुणह्रद्यात नमः।

153 ऊँ गुणाधराय नमः।

154 ऊँ गुणसंवृतचेतनाय नमः।

155 ऊँ गुणकृते नमः।

156 ऊँ गुणभृे नमः।

157 ऊँ गुणाग्रयाय नमः।

158 ऊँ गणपारदृशे नमः।

159 ऊँ गुणप्रचारिणे नमः।

160 ऊँ गुणयुजे नमः।

161 ऊँ गुणागुणविवेककृते नमः।

162 ऊँ गुणाकराय नमः।

163 ऊँ गुणकराय नमः।

164 ऊँ गुणप्रवणवर्धनाय नमः।

165 ऊँ गणगूढचराय नमः।

166 गौणसर्वसंचारचेष्टिताय नमः।

167 ऊँ गुणदक्षिणसौहार्दाय नमः।

168 ऊँ गुणलक्षणतत्वविदे नमः।

169 ऊँ गुणहारिणे नमः।

170 ऊँ गुणकलाय नमः।

171 ऊँ गुणसंधसखाय नमः।

172 ऊँ गुणसंस्कृत संसाराय नमः।

173 ऊँ गुणतत्व विवेचकाय नमः।

174 ऊँ गुणगर्वधराय नमः।

175 ऊँ गौण सुखदुःखोदयाय नमः।

176 ऊँ गुणाय नमः।

177 ऊँ गुणाधीशाय नमः।

178 ऊँ गुणलयाय नमः।

179 ऊँ गुणवीक्षणलालसाय नमः।

180 ऊँ गुणगौरवदात्रे नमः।

181 ऊँ गुणदात्रे नमः।

182 ऊँ गुणस्थायिने नमः।

183 ऊँ गुणदायिने नमः।

184 ऊँ गुणोत्कटाय नमः।

185 ऊँ गुणचक्रधराय नमः।

186 ऊँ गौणावतराय नमः।

187 ऊँ गुणबान्धवाय नमः।

188 ऊँ गुणबन्धवे नमः।

189 ऊँ गुणप्रज्ञाय नमः।

190 ऊँ गुणप्राज्ञाय नमः।

191 ऊँ गुणालयाय नमः।

192 ऊँ गुणधात्रे नमः।

193 ऊँ गुणप्राणाय नमः।

194 ऊँ गुणगोपाय नमः।

195 ऊँ गुणाश्रयाय नमः।

196 ऊँ गुणयायिने नमः।

197 ऊँ गुणाधायिने नमः।

198 ऊँ गुणपाय नमः।

199 ऊँ गुणपालकाय नमः।

200 ऊँ गुणाह्वततनवे नमः।

201 ऊँ गौणाय नमः।

202 ऊँ गीर्वाणाय नमः।

203 ऊँ गुणगोखाय नमः।

204 ऊँ गुणवत्पूजितपदाय नमः।

205 ऊँ गुणवत्प्रीतिदायकाय नमः।

206 ऊँ गुणवत्गीतकीर्तये नमः।

207 ऊँ गुणवद्बद्धसौहृदाय नमः।

208 ऊँ गुणवद्वरदाय नमः।

209 ऊँ गुणवत्प्रतिपालकाय नमः।

210 ऊँ गुणवद्‌गुणसंतुष्टाय नमः।

211 ॐ गुणवद्रचितस्तवाय नमः।

212 ॐ गुणवद्रक्षणपराय नमः।

213 ॐ गुणवत्प्रणयप्रियाय नमः।

214 ॐ गुणवच्चक्रसंचाराय नमः।

215 ॐगुणवत्कीर्तिवर्धनाय नमः।

216 ॐ गुणवग्दुचित्तस्थाय नमः।

217 ॐ गुणवग्दुणरक्षकाय नमः।

218 ॐ गुणवत्पोषणकराय नमः।

219 ॐ गुणवच्छत्रुसूदनाय नमः।

220 ॐ गुणवत्सिद्धिदात्रे नमः।

221 ॐ गुणबग्दौखप्रदाय नमः।

222 ॐ गुणवत्प्रणस्वान्ताय नमः।

223 ॐ गुणवद्गुणभूषणाय नमः।

224 ॐ गुणवत्कुलविद्वेषविनाशकरणक्षमाय नमः।

225 ॐ गुणिस्तुतगुणाय नमः।

226 ॐ गर्जत्प्रलयाम्बुदनिः स्वनाय नमः।

227 ॐ गजाय नमः।

228 ॐ गजपतये नमः।

229 ॐ गजद्गजयुद्धविशारदाय नमः।

230 ॐ गजास्याय नमः।

231 ॐ गर्जकर्णाय नमः।

232 ॐ गजराजाय नमः।

233 ॐ गजाननाय नमः।

234 ॐ गजरूपधराय नमः।

235 ॐ गर्जद्गजयूथोद्धुरध्वनये नमः।

236 ॐ गजाधीशाय नमः।

237 ॐ गजाधाराय नमः।

238 ॐ गजासुरजयोद्धुराय नमः।

239 ॐ गजदन्ताय नमः।

240 ॐ गजगर्जिताय नमः।

241 ॐ गजामयहराय नमः।

242 ॐ गजपुष्टि प्रदायकाय नमः।

243 ॐ गजोत्पत्तये नमः।

244 ॐ गजत्रात्रे नमः।

245 ॐ गजहेतवे नमः।

246 ॐ गजाधिपाय नमः।

247 ॐ गजमुख्याय नमः।

248 ॐ गजकुल प्रवराय नमः।

249 ॐ गजदैत्यघ्ने नमः।

250 ॐ गजकेतवे नमः।

251 ॐ गजाध्यक्षाय नमः।

252 ॐ गजसेतवे नमः।

253 ॐ गजाकृतये नमः।

254 ॐ गजवन्द्याय नमः।

255 ॐ गजप्राणाय नमः।

256 ॐ गजसेव्याय नमः।

257 ॐ गजप्रभवे नमः।

258 ॐ गजमत्ताय नमः।

259 ॐ गजेशानाय नमः।

260 ॐ गजेशाय नमः।

261 ॐ गजपुङ्गवाय नमः।

262 ॐ गजदन्तधराय नमः।

263 ॐ गुंजन्मधुपाय नमः।

264 ॐ गजवेषभृते नमः।

265 ॐ गजच्छन्नाय नमः।

266 ॐ गजाग्रस्थाय नमः।

267 ॐ गजयायिने नमः।

268 ॐ गजाजयाय नमः।

269 ॐ गजवराय नमः।

270 ॐ गजकुम्भाय नमः।

271 ॐ गजध्वनये नमः।

272 ॐ गजमायाय नमः।

273 ॐ गजमयाय नमः।

274 ॐ गजश्रिये नमः।

275 ॐ गानकुशलाय नमः।

276 ॐ गानतत्वविवेचकाय नमः।

277 ॐ गानरलाधिने नमः।

278 ॐ गानरसाय नमः।

279 ॐ गानज्ञान परायणाय नमः।

280 ॐ गानागमज्ञाय नमः।

281 ॐ गानाङ्गाय नमः।

282 ॐ गानप्रवणचेतनाय नमः।

283 ॐ गानकृते नमः।

284 ॐ गानचतुराय नमः।

285 ॐ गानविद्याविशारदाय नमः।

286 ॐ गानध्येयाम नमः।

287 ॐ गानगम्याय नमः।

288 ॐ गानध्यानपरायणाय नमः।

289 ॐ गाानभुवे नमः।

290 ॐ गानशीलाय नमः।

291 ॐ गानशालिने नमः।

292 ॐ गणश्रमाय नमः।

293 ॐ गानविज्ञानसम्पन्नाय नमः।

294 ॐ गानश्रवणलालसाय नमः।

295 ॐ गानयत्ताय नमः।

296 ॐ गानमयाय नमः।

297 ॐ गानप्रणयवते नमः।

298 ॐ गजराजे नमः।

299 ॐ गजयूथस्थाय नमः।

300 ॐ गजगंजकभंजकाय नमः।

301 ॐ गर्जितोज्झितदैत्यासवे नमः।

302 ॐ गर्जितत्रात विष्टपाय नमः।

304 ॐ गानज्ञाय नमः।

305 ॐ गानभूषणाय नमः।

306 ॐ गानसिन्धवे नमः।

307 ॐ गानपराय नमः।

308 ॐ गानप्राणाय नमः।

309 ॐ गणाश्रयाय नमः।

310 ॐ गानैकभुवे नमः।

311 ॐ गानदृष्टाय नमः।

312 ॐ गानचक्षुषे नमः।

313 ॐ गणैकदृशे नमः।

314 ॐ गानमत्ताय नमः।

315 ॐ गानरूचये नमः।

316 ॐ गानविदे नमः।

317 ॐ गानवित्प्रियाय नमः।

318 ॐ गानान्तरात्मने नमः।

319 ॐ गानाढयाय नमः।

320 ॐ गानभ्राजत्सभाय नमः।

321 ॐ गानमायाय नमः।

322 ॐ गानधराय नमः।

323 ॐ गानविद्याविशोधकाय नमः।

324 ॐ गानहितध्नाय नमः।

325 ॐ गानेन्द्राय नमः।

326 ॐ गानलीनाय नमः।

327 ॐ गीतप्रियाय नमः।

328 ऊँ गानध्यात्रे नमः।

329 ऊँ गानबुद्धये नमः।

330 ऊँ गानोत्सुक मनसे नमः।

331 ऊँ गानोत्सुकाय नमः।

332 ऊँ गानभूमये नमः।

333 ऊँ गानसीम्ने नमः।

334 ऊँ गुणोज्जवलाय नमः।

335 ऊँ गानाङ्गज्ञानवते नमः।

336 ऊँ गानमानवते नमः।

337 ऊँ गानपेशलाय नमः।

338 ऊँ गानवत्प्रणयाय नमः।

339 ऊँ गानसमुद्राय नमः।

340 ऊँ गुरूस्तुताय नमः।

341 ऊँ गुरूगुणाय नमः।

342 ऊँ गुरूमायाय नमः।

343 ऊँ गुरूप्रियाय नमः।

344 ऊँ गुरूकीर्तये नमः।

345 ऊँ गुरूभुजाय नमः।

346 ऊँ गुरूवक्षसे नमः।

347 ऊँ गुरूप्रभाय नमः।

348 ऊँ गुरूलक्षण सम्पन्नाय नमः।

349 ऊँ गुरूद्रोहपराङ्मुखाय नमः।

350 ऊँ गुरूविधाय नमः।

351 ऊँ गुरू प्राणाय नमः।

352 ऊँ गुरूबाहुबलोच्छ्रयाय नमः।

353 ऊँ गुरूदैत्यप्राणहराय नमः।

354 ऊँ गुरूदैत्यापहारकाय नमः।

355 ऊँ गुरूगर्वहराय नमः।

356 ऊँ गुह्मवराय नमः।

357 ऊँ गाानाधीशाय नमः।

358 ऊँ गानलयाय नमः।

359 ऊँ गानाधाराय नमः।

360 ऊँ गतीश्रवराय नमः।

361 ऊँ गाानवन्मानदाय नमः।

362 ऊँ गानभूतये नमः।

363 ऊँ गानैकभूतिमते नमः।

364 ऊँ गानतानतताय नमः।

365 ऊँ गानतानदानविमोहिताय नमः।

366 ऊँ गुरवे नमः।

367 ऊँ गुरूदरश्रोणये नमः।

368 ऊँ गुरूतत्वार्धदर्शनाय नमः।

369 ऊँ गुरूमानप्रदायकाय नमः।

370 ऊँ गुरूधर्मसदासध्याय नमः।

371 ऊँ गुरूधर्म निकेतनाय नमः।

372 ऊँ गुरूदैत्य कुलच्छेत्त्रे नमः।

373 ऊँ गुरूसैन्याय नमः।

374 ऊँ गुरूघुतये नमः।

375 ऊँ गुरूधर्माग्रगण्याय नमः।

376 ऊँ गुरू धर्मधुरन्धराय नमः।

377 ऊँ गरिष्ठाय नमः।

378 ऊँ गुरूसंतापशमनाय नमः।

379 ऊँ गुरूपूजिताय नमः।

380 ऊँ गुरूधर्मधराय नमः।

381 ऊँ गौर धर्माधाराय नमः।

382 ऊँ गदापहाय नमः।

383 ऊँ गुरूशास्त्र विचारज्ञाय नमः।

384 ऊँ गुरूशास्त्रकृतोद्यमाय नमः।

385 ऊँ गुरूशास्त्रार्थ निलयाय नमः।

386 ॐ गुरुदर्पघ्न नमः।
387 ॐ गुरुगौरवदायिने नमः।
388 ॐ गुरुभीत्य पहारकाय नमः।
389 ॐ गुरुशुण्डाय नमः।
390 ॐ गुरुस्कन्धाय नमः।
391 ॐ गुरुजघ्ड·ंय नमः।
392 ॐ गुरुप्रथाय नमः।
393 ॐ गुरुभालाय नमः।
394 ॐ गुरुगलाय नमः।
395 ॐ गुरुश्रिये नमः।
396 ॐ गुरुगर्वनुदे नमः।
397 ॐ गुरुरवे नमः।
398 ॐ गुरुपीनासाय नमः।
399 ॐ गुरुप्रणयलालसाय नमः।
400 ॐ गुरुमुख्याय नमः।
401 ॐ गुरुकुलस्थायिने नमः।
402 ॐ गुरुगुणाय नमः।
403 ॐ गुरुसंशय भेत्त्रे नमः।
404 ॐ गुरुविक्रम संचाराय नमः।
405 ॐ गुरुदृशे नमः।
406 ॐ गुरुविक्रमाय नमः।
407 ॐ गुरुक्रमाय नमः।
408 ॐ गुरुप्रेष्ठाय नमः।
409 ॐ गुरुपाखण्डखण्डकाय नमः।
410 ॐ गुरुगर्जितसम्पूर्ण ब्रह्माण्डाय नमः।
411 ॐ गुरुगर्जिताय नमः।
412 ॐ गुरुपुत्रप्रियसखाय नमः।
413 ॐ गुरुपुत्र भयापहाय नमः।
414 ॐ गुरुपुत्र परित्रात्रे नमः।
415 ॐ गुरुशास्त्रालयाय नमः।
416 ॐ गुरुमन्त्राय नमः।
417 ॐ गुरुश्रेष्ठाय नमः।
418 ॐ गुरुमंत्रफलप्रदाय नमः।
419 ॐ गुरुस्त्रीगमनोद्दामप्रायश्चितनिवारकाय नमः।
420 ॐ गुरुसंसार सुखदाय नमः।
421 ॐ गुरुसंसारदुःख भिदेनमः।
422 ॐ गुरुश्लाघ्यापराय नमः।
423 ॐ गौरभानुखण्डावतंसभृते नमः।
424 ॐ गुरुप्रसन्नमूर्तये नमः।
425 ॐ गुरुशापिविमोचकाय नमः।
426 ॐ गुरुकान्तयै नमः।
427 ॐ गुरुमयाय नमः।
428 ॐ गुरुशासनपालकाय नमः।
429 ॐ गुरुतंत्राय नमः।
430 ॐ गुरुप्रज्ञाय नमः।
431 ॐ गुरुभाय नमः।
432 ॐ गुरुदैवताय नमः।
433 ॐ गौरीशनन्दनाय नमः।
434 ॐ गौरीप्रियपुत्राय नमः।
435 ॐ सदाधराय नमः।
436 ॐ गौरवरप्रदाय नमः।
437 ॐ गौरीप्रणयाय नमः।
438 ॐ गौरसच्छवये नमः।
439 ॐ गौरीगणेश्वराय नमः।
440 ॐ गौरीप्रवणाय नमः।
441 ॐ गौरभावनाय नमः।
442 ॐ गौरात्मने नमः।
443 ॐ गौरकीर्तयें नमः।

444 ॐ गुरू पुत्रवर प्रदाय नमः।
445 ॐ गुरूपुत्रार्तिशमनाय नमः।
446 ॐ गुरूपुत्राधिनाशनाय नमः।
447 ॐ गुरूपुत्रप्राणदात्रे नमः।
448 ॐ गुरूभक्तिपरायणाय नमः।
449 ॐ गुरूविज्ञान विभवाय नमः।
450 ॐ गौर भानुवरप्रदाय नमः।
451 ॐ गौरभानुस्तुताय नमः।
452 ॐ गौरभानुत्रासापहारकाय नमः।
453 ॐ गौरभानुप्रियाय नमः।
454 ॐ गौरभानवे नमः।
455 ॐ गौरववर्धनाय नमः।
456 ॐ गौरभानुपरित्रात्रे नमः।
457 ॐ गौरभानुसुखाय नमः।
458 ॐ गौरभानुप्रभवे नमः।
459 ॐ गौरभानुभीति प्रणाशनाय नमः।
460 ॐ गौरीतेज समुत्पन्नाय नमः।
461 ॐ गौरीहृदयनन्दनाय नमः।
462 ॐ गौरीस्तनन्धयाय नमः।
463 ॐ गौरीमनोवञ्छित सिद्धिकृते नमः।
464 ॐ गौराय नमः।
465 ॐ गौरगुणाय नमः।
466 ॐ गौर प्रकाशाय नमः।
467 ॐ गौर भैरवाय नमः।
468 ॐ गोपगोपाय नमः।
469 ॐ गोपाय नमः।
470 ॐ गोकुलवर्धनाय नमः।
471 ॐ गोचराय नमः।
472 ॐ गोचराध्यक्षाय नमः।
473 ॐ गौरभावाय नमः।
474 ॐ गरिष्ठदृशे नमः।
475 ॐ गौतमाय नमः।
476 ॐ गौतमीनाथाय नमः।
477 ॐ गौतमीप्राणवल्लभाय नमः।
478 ॐ गौतमाभीष्टवरदाय नमः।
479 ॐ गौतमाभयदायकाय नमः।
480 ॐ गौतमप्रणयप्रह्वाय नमः।
481 ॐ गौतमाश्रमदुःखघ्ने नमः।
482 ॐ गौतमीतीरसंचारिणे नमः।
483 ॐ गौतमीतीर्थनायकाय नमः।
484 ॐ गौतमापत्परिहराय नमः।
485 ॐ गौतमाधिविनाशनाय नमः।
486 ॐ गोपतये नमः।
487 ॐ गोधनाय नमः।
488 ॐ गोपाय नमः।
489 ॐ गोपालप्रियदर्शनाय नमः।
490 ॐ गोपालाय नमः।
491 ॐ गोगणाधीशाय नमः।
492 ॐ शोकश्मलनिवर्तकाय नमः।
493 ॐ गोसहस्त्राय नमः।
494 ॐ गोपवराय नमः।
495 ॐ गोपगोपीसुखावहाय नमः।
496 ॐ गोवर्धनाय नमः।
497 ॐ गोत्रविख्यातनाम्ने नमः।
498 ॐ गोत्रिणे नमः।
499 ॐ गोत्रप्रपालकाय नमः।
500 ॐ गोत्रसेतवे नमः।
501 ॐ गोत्रकेतवे नमः।

502 ॐ गोचरप्रीतिवृद्धिकृतेनमः।

503 ॐ गोमिने नमः।

504 ॐ गोकष्टसंत्रात्रे नमः।

505 ॐ गोसंतापनिवर्तकाय नमः।

506 ॐ गोष्ठाय नमः।

507 ॐ गोष्ठाश्रयाय नमः।

508 ॐ गोष्ठपतये नमः।

509 ॐ गोधनवर्धनाय नमः।

510 ॐ गोष्ठप्रियाय नमः।

511 ॐ गोष्ठमयाय नमः।

512 ॐ गोष्ठामयनिवर्तकाय नमः।

513 ॐ गोलोकाय नमः।

514 ॐ गोलकाय नमः।

515 ॐ गोभृते नमः।

516 ॐ गोभर्त्रे नमः।

517 ॐ गोसुखावहाय नमः।

518 ॐ गोदुहे नमः।

519 ॐ गोधुग्गण प्रेष्ठाय नमः।

520 ॐ गोदोग्ध्रे नमः।

521 ॐ गोमयप्रियाम नमः।

522 ॐ गोत्राय नमः।

523 ॐ गोत्रपतये नमः।

524 ॐ गोत्रप्रभवे नमः।

525 ॐ गोत्रभयावहाय नमः।

526 ॐ गोत्रवृद्धिकराय नमः।

527 ॐ गोत्रप्रियाय नमः।

528 ॐ गोत्रार्तिनाशनाय नमः।

529 ॐ गोत्रोद्धारपाय नमः।

530 ॐ गोत्रप्रबराय नमः।

531 ॐ गोत्रहेतवे नमः।

532 ॐ गतक्लमाय नमः।

533 ॐ गोत्रत्राणकराय नमः।

534 ॐ गोत्रपतये नमः।

535 ॐ गोत्रेशपूजिताय नमः।

536 ॐ गोत्रभिदे नमः।

537 ॐ गोत्रभित्त्रात्रे नमः।

538 ॐ गोत्रभिद्वरदायकाय नमः।

539 ॐ गोत्रभित्पूजितपदाय नमः।

540 ॐ गोत्रभिच्छत्रुसूदनाय नमः।

541 ॐ गोत्रभित्प्रीतिदाय नमः।

542 ॐ गोत्रभिदे नमः।

543 ॐ गोत्रपालकाय नमः।

544 ॐ गोत्रभिद्गीतचरिताय नमः।

545 ॐ गोत्रभिद्राज्यरक्षकाय नमः।

546 ॐ गोत्रभिज्जयदायिने नमः।

547 ॐ गोत्रभित्प्रणयाय नमः।

548 ॐ गोत्रभिद्भयसम्भेत्त्रे नमः।

549 ॐ गोत्रभिन्मानदायकाय नमः।

550 ॐ गोत्रभिद्गोपनपराय नमः।

551 ॐ गोत्रभित्सैन्यनायकाय नमः।

552 ॐ गोत्राधिपप्रियाय नमः।

553 ॐ गोत्रपुत्रीपुत्राय नमः।

554 ॐ गिरिप्रियाय नमः।

555 ॐ ग्रन्थज्ञाय नमः।

556 ॐ ग्रन्थकृते नमः।

557 ॐ ग्रन्थग्रन्थिभिदे नमः।

558 ॐ ग्रन्थविघ्नघ्ने नमः।

559 ॐ ग्रन्थादये नमः।

560 ॐ गोत्रदैवताय नमः।

561 ॐ ग्रन्थश्रवणलोलुपाय नमः।

562 ॐ ग्रन्थाधीनक्रियाय नमः।

563 ॐ ग्रन्थप्रियाय नमः।

564 ॐ ग्रन्थार्थतत्वविदे नमः।

565 ॐ ग्रन्थसंशयसंछेदिने नमः।

566 ॐ ग्रन्थवक्त्रे नमः।

567 ॐ ग्रहाग्रण्ये नमः।

568 ॐ ग्रन्थगीत गुणाय नमः।

569 ॐ ग्रन्थगीताय नमः।

570 ॐ ग्रन्थाद्विपूजिताय नमः।

571 ॐ ग्रन्थारम्भस्तुताय नमः।

572 ॐ ग्रन्थग्रहिणे नमः।

573 ॐ ग्रन्थार्थपारदृशे नमः।

574 ॐ ग्रन्थदृशे नमः।

575 ॐ ग्रन्थविज्ञानाय नमः।

576 ॐ ग्रन्थसंदर्भशोधकाय नमः।

577 ॐ ग्रन्थकृत्यूजिताय नमः।

578 ॐ ग्रन्थकराय नमः।

579 ॐ ग्रन्थपरायणाय नमः।

580 ॐ ग्रन्थपरायणपराय नमः।

581 ॐ ग्रन्थसंदेहभंजकाय नमः।

582 ॐ ग्रन्थकतृरक्षत्रे नमः।

583 ॐ ग्रन्थकृद्धनिन्दताय नमः।

584 ॐ ग्रन्थानुरक्ताय नमः।

585 ॐ ग्रन्थज्ञाय नमः।

586 ॐ ग्रन्थानुग्रहदायकाय नमः।

587 ॐ ग्रन्थान्तरात्मने नमः।

588 ॐ ग्रन्थार्थपण्डिताय नमः।

589 ॐ गन्थसंचाराय नमः।

590 ॐ ग्रहाग्रगाय नमः।

591 ॐ ग्रन्थपूजाय नमः।

592 ॐ ग्रन्थगेयाय नमः।

593 ॐ ग्रन्थग्रंथन लालसाय नमः।

594 ॐ ग्रन्थभूमये नमः।

595 ॐ ग्रहश्रेष्ठाय नमः।

596 ॐ ग्रहकेतवे नमः।

597 ॐ ग्रहाश्रयाय नमः।

598 ॐ ग्रन्थकाराय नमः।

599 ॐ ग्रन्थकारमान्याय नमः।

600 ॐ ग्रन्थप्रसारकाय नमः।

601 ॐ ग्रन्थश्रमज्ञाय नमः।

602 ॐ ग्रन्थाङ्गाय नमः।

603 ॐ ग्रन्थभ्रमनिवारकाय नमः।

604 ॐ ग्रन्थप्रवणसर्वाङ्गांय नमः।

605 ॐ ग्रान्थप्रणयतत्पराय नमः।

606 ॐ गीताय नमः।

607 ॐ गीतगुणाय नमः।

608 ॐ गीतकीर्तये नमः।

609 ॐ गीतविशारदाय नमः।

610 ॐ गीतस्फीतयशसे नमः।

611 ॐ गीतप्रणयाय नमः।

612 ॐ गीतचंचुराय नमः।

613 ॐ गीतप्रसन्नाय नमः।

614 ॐ गीतात्मने नमः।

615 ॐ गीतलोलाय नमः।

616 ॐ गतस्पृहाय नमः।

617 ॐ गीताश्रयाय नमः।

618 ॐ ग्रन्थसौहृदाय नमः।

619 ॐ ग्रन्परांगमाय नमः।

620 ॐ ग्रन्थगुणविदे नमः।

621 ॐ ग्रन्थविग्रहाय नमः।

622 ॐ ग्रन्थसेतवे नमः।

623 ॐ ग्रन्थहेतवे नमः।

624 ॐ ग्रन्थकेतवे नमः।

625 ॐ गताश्रयाय नमः।

626 ॐ गीतासाराश नमः।

627 ॐ गीताकृते नमः।

628 ॐ गीताकृदविघ्ननाशनाय नमः।

629 ॐ गीताशक्ताय नमः।

630 ॐ गीतलीनाय नमः।

631 ॐ गीताविगतसंज्वराय नमः।

632 ॐ गीतैकदृशे नमः।

633 ॐ गीतभूतये नमः।

634 ॐ गीतप्रीताय नमः।

635 ॐ गतालसाय नमः।

636 ॐ गीतवाद्यपटवे नमः।

637 ॐ गीतप्रभवे नमः।

638 ॐ गीतार्थतत्वविदे नमः।

639 ॐ गीतागीतविवेकज्ञाय नमः।

640 ॐ गीताप्रवणचेतनाय नमः।

641 ॐ गतभिये नमः।

642 ॐ गतविद्वेषाय नमः।

643 ॐ गतसंसारबन्धनाय नमः।

644 ॐ गतमायाय नमः।

645 ॐ गतत्रासाय नमः।

646 ॐ गतदुःखाय नमः।

647 ॐ गीतमयाय नमः।

648 ॐ गीततत्वार्थकोविदाय नमः।

649 ॐ गीतसंशयसंछेत्त्रे नमः।

650 ॐ गीतसंगीत शासनाय नमः।

651 ॐ गीतार्थज्ञाय नमः।

652 ॐ गीततत्वाय नमः।

653 ॐ गीतातत्वाय नमः।

654 ॐ गतागतनिवारकाय नमः।

655 ॐ गतव्यथाय नमः।

656 ॐ गायकाय नमः।

657 ॐ गतापायाय नमः।

658 ॐ गतदोषाय नमः।

659 ॐ गतेपराय नमः।

660 ॐ गतसर्वविकाराय नमः।

661 ॐ गतगर्जितकुंजराय नमः।

662 ॐ गतकम्पिभूपृष्ठाय नमः।

663 ॐ गतरूजे नमः।

664 ॐ गतकल्मषाय नमः।

665 ॐ गतदैन्याय नमः।

666 ॐ गतस्तैन्याय नमः।

667 ॐ गतमानाय नमः।

668 ॐ गतश्रमाय नमः।

669 ॐ गतक्रोधाय नमः।

670 ॐ गतग्लानये नमः।

671 ॐ गतम्लानाय नमः।

672 ॐ गतभ्रमाय नमः।

673 ॐ गताभावाय नमः।

674 ॐ गतभवाय नमः।

675 ॐ गततत्वार्थसंशयाम नमः।

676 ॐ गतज्वराय नमः।

677 ॐ गतासुहृदे नमः।

678 ॐ गताज्ञानाय नमः।

679 ॐ गतदुष्टाशयाय नमः।

680 ॐ गताय नमः।

681 ॐ गतसंकल्पाय नमः।

682 ॐ गतार्तये नमः।

683 ॐ गतदुष्टविचेष्टिताय नमः।

684 ॐ गताहङ्कारसंचाराय नमः।

685 ॐ गतदर्पाय नमः।

686 ॐ गताहिताय नमः।

687 ॐ गतविघ्नाय नमः।

688 ॐ गतभयाय नमः।

689 ॐ गायकेष्टफल प्रदाय नमः।

690 ॐ गायकप्रणयिने नमः।

691 ॐ गात्रे नमः।

692 ॐ गायकाभयदायकाय नमः।

693 ॐ गायकप्रवणस्वान्ताय नमः।

694 ॐ गायकाय प्रथमाय नमः।

695 ॐ गायकोद्गीतसम्प्रीताय नमः।

696 ॐ गायकोत्कटविघ्नघ्ने नमः।

697 ॐ गानगेयाय नमः।

698 ॐ गायकेशाय नमः।

699 ॐ गायकान्तसंचराय नमः।

700 ॐ गायकप्रियदाय नमः।

701 ॐ गायकाधीनविग्रहाय नमः।

702 ॐ गेयाम नमः।

703 ॐ गेयगुणाय नमः।

704 ॐ गुयचरिताय नमः।

705 ॐ गयासुरशिररछेत्रे नमः।

706 ॐ गयासुखवरप्रदायं नमः।

707 ॐ गयावासाय नमः।

708 ॐ गयानाथाय नमः।

709 ॐ गयावासिनमस्कृताय नमः।

710 ॐ गयातीर्थफलाध्यक्षाय नमः।

711 ॐ गयायात्राफलप्रदाय नमः।

712 ॐ गयामयाय नमः।

713 ॐ गयाक्षेत्राय नमः।

714 ॐ गयाक्षेत्रनिवासकृते नमः।

715 ॐ गयावासिस्तुताय नमः।

716 ॐ गायन्मधुव्रतलसत्कटाय नमः।

717 ॐ गायकवराय नमः।

718 ॐ गंगाधराराध्याय नमः।

719 ॐ गतस्मयाय नमः।

720 ॐ गंगाधरप्रियाय नमः।

721 ॐ गंगाधराय नमः।

722 ॐ गंगाम्बुसुन्दराय नमः।

723 ॐ गंगाजलरसास्वादचतुराय नमः।

724 ॐ गंगातीरयाय नमः।

725 ॐ गंगाजलप्रणयवते नमः।

726 ॐ गङ्गातीर विहारकृते नमः।

727 ॐ गंगाप्रियाय नमः।

728 ॐ गंगाजलावगाहनपराय नमः।

729 ॐ गन्धमादनसंवासाय नमः।

730 ॐ गन्धमादनकेलिकृते नमः।

731 ॐ गन्धानुलिप्तसर्वाङ्गायय नमः।

732 ॐ गन्धलुब्धमधुव्रताय नमः।

733 ॐ गन्धाय नमः।

734 ऊँ गेयतत्वविदे नमः।

735 ऊँ गायकत्रासघ्ने नमः।

736 ऊँ ग्रन्थाय नमः।

737 ऊँ ग्रन्थत्तत्वविवेचकाय नमः।

738 ऊँ गाढानुरागाय नमः।

739 ऊँ गाढाङ्गाय नमः।

740 ऊँ गाढावंगाढजलधये नमः।

741 ऊँ गाढगंङ्गाजलाय नमः।

742 ऊँ गाढप्रज्ञाय नमः।

743 ऊँ गतामयायं नमः।

744 ऊँ गाढप्रत्यर्थिसैन्याय नमः।

745 ऊँ गाढानुग्रहत्पराय नमः।

746 ऊँ गाढश्लेषरसाभिज्ञाय नमः।

747 ऊँ गाढनिर्वृतिसाधकाय नमः।

748 ऊँ गंङ्गाधरेष्टवरदाय नमः।

749 ऊँ गंगाधरभयापहाय नमः।

750 ऊँ गंगाधरगुरवे नमः।

751 ऊँ गंगाधरध्यातपदाय नमः।

752 ऊँ गंगाधरस्तुताय नमः।

753 ऊँ गन्धर्व प्रतिपालकाय नमः।

754 ऊँ गन्धर्वगीत चरिताय नमः।

755 ऊँ गन्धर्वप्रणयोत्सुकाय नमः।

756 ऊँ गन्धर्वगान श्रवणप्रणयिने नमः।

757 ऊँ गर्वभंजनाय नमः।

758 ऊँ गन्धर्वत्राणसन्नद्धाय नमः।

759 ऊँ गन्धर्वसमरक्षमाय नमः।

760 ऊँ गन्धर्वस्त्री भिरासध्याय नमः।

761 ऊँ गानाय नमः।

762 ऊँ गानपटवे नमः।

763 ऊँ गन्धर्वराजाय नमः।

764 ऊँ गन्धर्वप्रियकृते नमः।

765 ऊँ गन्धर्वविद्यातत्वज्ञाय नमः।

766 ऊँ गन्धर्वप्रतिवर्धनाय नमः।

767 ऊँ गकारबीजनिलयाय नमः।

768 ऊँ गकाराय नमः।

769 ऊँ गर्विगर्वनुदे नमः।

770 ऊँ गन्धर्वगणंससेव्याय नमः।

771 ऊँ गन्धर्ववरदायकाय नमः।

772 ऊँ गन्धर्वाय नमः।

773 ऊँ गन्धमातङ्गाय नमः।

774 ऊँ गन्धर्वकुल दैवताय नमः।

775 ऊँ गन्धर्वगर्वसंछेत्त्रे नमः।

776 ऊँ गन्धर्ववरदर्पघ्ने नमः।

777 ऊँ गन्धर्वप्रवणस्वान्ताय नमः।

778 ऊँ गन्धर्वगणसंस्तुताय नमः।

779 ऊँ गन्धर्वार्चित पादाब्जाय नमः।

780 ऊँ गन्धर्वभयहारकाय नमः।

781 ऊँ गन्धर्वाभयदाय नमः।

782 ऊँ गीर्वाणभयनाशकृते नमः।

783 ऊँ गीर्वाणग्रुणसंवीताय नमः।

784 ऊँ गीर्वाणरातिसूदनाय नमः।

785 ऊँ गीर्वाणधम्ने नमः।

786 ऊँ गीर्वाणगोप्त्रे नमः।

787 ऊँ गीर्वागर्वह्रदे नमः।

788 ऊँ गीर्वाणार्ति हराय नमः।

789 ऊँ गीर्वाणवरदायकाय नमः।

790 ऊँ गीर्वाणशरणाय नमः।

791 ऊँ गीतनाम्ने नमः।

792 ऊँ गच्छाय नमः।

793 ऊँ गच्छपतये नमः।

794 ऊँ गच्छनायकाय नमः।

795 ऊँ गच्छगर्वघ्ने नमः।

796 ऊँ गच्छराजाय नमः।

797 ऊँ गच्छेशाय नमः।

798 ऊँ गच्छराजनमस्कृताय नमः।

799 ऊँ गच्छप्रियाम नमः।

800 ऊँ गच्छगुरवे नमः।

801 ऊँ गच्छत्राणकृतोद्यमाय नमः।

802 ऊँ गच्छप्रभवे नमः।

803 ऊँ गच्छचराय नमः।

804 ऊँ गच्छप्रियकृतोद्यमाय नमः।

805 ऊँ गच्छगीतगुणाय नमः।

806 ऊँ गच्छमर्यादाप्रतिपालकाय नमः।

807 ऊँ गच्छधात्रे नमः।

808 ऊँ गच्छभर्त्रे नमः।

809 ऊँ गच्छवन्द्याय नमः।

810 ऊँ गुरोर्गुरवे नमः।

811 ऊँ गृत्साय नमः।

812 ऊँ गृत्समदाय नमः।

813 ऊँ गृत्समदाभीष्टवरप्रदाय नमः।

814 ऊँ गीर्वाणगीतचरिताय नमः।

815 ऊँ गीर्वाणगणसेविताय नमः।

816 ऊँ गीर्वाणवरदात्रे नमः।

817 ऊँ ग्राहाय नमः।

818 ऊँ ग्रहपीडा प्रणाशनाय नमः।

819 ऊँ ग्रहस्तुताय नमः।

820 ऊँ ग्रहाध्यक्षाय नमः।

821 ऊँ गीर्वाणसुन्दाय नमः।

822 ऊँ गीर्वाणप्राणदाय नमः।

823 ऊँ गन्त्रे नमः।

824 ऊँ गीर्वाणानीकरक्षकाय नमः।

825 ऊँ गुहेहापूरकाय नमः।

826 ऊँ गन्धमत्ताय नमः।

827 ऊँ गीर्वाणपुष्टिदाय नमः।

828 ऊँ गीर्वाणप्रयुतत्रात्रे नमः।

829 ऊँ गीतगोत्राय नमः।

830 ऊँ गताहिताय नमः।

831 ऊँ गीर्वाणसेवितपदाय नमः।

832 ऊँ गीर्वाणप्रथिताय नमः।

833 ऊँ गलतें नमः।

834 ऊँ गीर्वाणगोत्रप्रवराय नमः।

835 ऊँ गीर्वाणफलदायकाय नमः।

836 ऊँ गीर्वाण प्रियकर्त्रे नमः।

837 ऊँ गीर्वाणागमसारविदे नमः।

838 ऊँ गीर्वाणागमसम्पत्तये नमः।

839 ऊँ गीर्वाणव्यसनापहाय नमः।

840 ऊँ गीर्वाणप्रणयाय नमः।

841 ऊँ गीतग्रहणोत्सुकमानसाय नमः।

842 ऊँ गीर्वाणभ्रमसम्भेत्त्रे नमः।

843 ऊँ गीर्वाणगुरूपूजिताय नमः।

844 ऊँ ग्रहाय नमः।

845 ऊँ ग्रहपतये नमः।

846 ऊँ गंजायुतबलाय नमः।

847 ऊँ गण्डगुंजन्मत्तमधुव्रताय नमः।

848 ; गण्डस्थललसद्दानमिलन्मत्तालिमण्डिताय नमः।

849 ऊँ गुडाय नमः।

850 ॐ ग्रहेशाय नमः।

851 ॐ ग्रहदैवताय नमः।

852 ॐ ग्रहकृते नमः।

853 ॐ ग्रहभर्त्रे नमः।

854 ॐ ग्रहेशानाय नमः।

855 ॐ ग्रहेश्वराय नमः।

856 ॐ ग्रहाराध्याय नमः।

857 ॐ ग्रहत्रात्रे नमः।

858 ॐ ग्रहगोप्त्रे नमः।

859 ॐ ग्रहोत्कटाय नमः।

860 ॐ ग्रहगीतगुणाय नमः।

861 ॐ ग्रन्थप्रणेत्रे नमः।

862 ॐ ग्रहवन्दिताय नमः।

863 ॐ गविने नमः।

864 ॐ गवीश्वराय नमः।

865 ॐ गार्विणे नमः।

866 ॐ ग्रार्विष्ठाय नमः।

867 ॐ गर्विगर्वघ्ने नमः।

868 ॐ गवांप्रियाय नमः।

869 ॐ गवानांथाय नमः।

870 ॐ गवीशानाय नमः।

871 ॐ गवाम्पतये नमः।

872 ॐ गव्यप्रियाय नमः।

873 ॐ गवांगोप्त्रे नमः।

874 ॐ गविसम्पत्तिसाधकाय नमः।

875 ॐ गविरक्षणंसनद्धाय नमः।

876 ॐ गवांभयहराय नमः।

877 ॐ गविगर्वहराय नमः।

878 ॐ गोदाय नमः।

879 ॐ गुडप्रियाय नमः।

880 ॐ गण्डगल ददानाय नमः।

881 ॐ गुडाशनाय नमः।

882 ॐ गुडाकेशाय नमः।

883 ॐ गुडाकेशसहायाय नमः।

884 ॐ गुडलडडुभुजे नमः।

885 ॐ गुडभुजे नमः।

886 ॐ गुडभुग्गण्याय नमः।

887 ॐ गुडाकेशवरप्रदाय नमः।

888 ॐ गुडाकेशार्चितपदाय नमः।

889 ॐ गुडाकेशसखाय नमः।

890 ॐ गदाधरार्चितपदाय नमः।

891 ॐ गदाधरवर प्रदाय नमः।

892 ॐ गदायुधाय नमः।

893 ॐ गदापाणये नमः।

894 ॐ गदायुद्धविशारदाय नमः।

895 ॐ गदघ्ने नमः।

896 ॐ गददर्पघ्नोय नमः।

897 ॐ गदगर्वप्रणाशनाय नमः।

898 ॐ गदग्रस्त परित्रात्रे नमः।

899 ॐ गदाडम्बरखण्डकाय नमः।

900 ॐ गुहाय नमः।

901 ॐ गुहाग्रजाय नमः।

902 ॐ गुप्ताय नमः।

903 ॐ गुहाशायिने नमः।

904 ॐ गहाशयाय नमः।

905 ॐ गुहप्रीतिकराय नमः।

906 ॐ गूढाय नमः।

907 ॐ गूढगुल्फाय नमः।

908 ॐ गोप्रदाय नमः।
909 ॐ गीष्पतये नमः।
910 ॐ गिरीशानाय नमः।
911 ॐ गीर्देवीगीत सद्गुणाय नमः।
912 ॐ गीर्देवाय नमः।
913 ॐ गीष्प्रियाय नमः।
914 ॐ गीर्भुव नमः।
915 ॐ गीरात्मने नमः।
916 ॐ गीष्प्रियङ्कराय नमः।
917 ॐ गीर्भूमये नमः।
918 ॐ गीरसज्ञाय नमः।
919 ॐ गीःप्रसन्नाय नमः।
920 ॐ गिरीश्वराय नमः।
921 ॐ गिरीशजाय नमः।
922 ॐ गिरौशयिने नमः।
923 ॐ गिरिराजसुखावहाय नमः।
924 ॐ गिरिराज र्चितपदाय नमः।
925 ॐ गिरिराजनमस्कृताय नमः।
926 ॐ गिरिराजगुहाविष्टाय नमः।
927 ॐ गिरिराजभयप्रदाय नमः।
928 ॐ गिरिराजेष्ट वरदाय नमः।
929 ॐ गिरिराज प्रपालकाय नमः।
930 ॐ गिरिराज सुतासूनवे नमः।
931 ॐ गिरिराजजयप्रदाय नमः।
932 ॐ गिरिव्रजवनस्थायिने नमः।
933 ॐ गिरिव्रजचराय नमः।
934 ॐ गर्गाय नमः।
935 ॐ गर्गप्रियाय नमः।
936 ॐ गर्गदेवाय नमः।
937 ॐ गर्गनमस्कृताय नमः।
938 ॐ गुणैकद्दशेः नमः।
939 ॐ गर्गमानप्रदाय नमः।
940 ॐ गर्गारिभंजकाय नमः।
941 ॐ गर्गवर्गपरित्रात्रे नमः।
942 ॐ गर्गसिद्धि प्रदायकाय नमः।
943 ॐ गर्गग्लानिहराय नमः।
944 ॐ गर्गभ्रमह्मदे नमः।
945 ॐ गर्गसंगताय नमः।
946 ॐ गर्गाचाययि नमः।
947 ॐ गर्गमुनये नमः।
948 ॐ गर्गसम्मान भाजनाय नमः।
949 ॐ गम्भीराय नमः।
950 ॐ गणितप्रज्ञाय नमः।
951 ॐ गणितागमसारविदे नमः।
952 ॐ गणकाय नमः।
953 ॐ गणकश्लाध्याय नमः।
954 ॐ गणकप्रणयोत्सुकाय नमः।
955 ॐ गणकप्रवणस्वान्ताय नमः।
956 ॐ गणिताय नमः।
957 ॐ गणितागमाय नमः।
958 ॐ गद्याय नमः।
959 ॐ गद्यमयाय नमः।
960 ॐ गद्यपद्यविद्याविशारदाय नमः।
961 ॐ गललग्नमहानागाय नमः।
962 ॐ गलदर्चिषे नमः।
963 ॐ गलन्मदाय नमः।
964 ॐ गलत्कुष्ठिव्यथाहन्त्रे नमः।
965 ॐ गलत्कुष्ठिसुखप्रदाय नमः।
966 ॐ गम्भीरनाभये नमः।
967 ॐ गम्भीरस्वराय नमः।

968 ऊँ गर्गभीतिहराय नमः।
969 ऊँ गर्गवरदाय नमः।
970 ऊँ गर्गसंस्तुताय नमः।
971 ऊँ गर्गगीतप्रसन्नात्मने नमः।
972 ऊँ गर्गानन्दकराय नमः।
973 ऊँ गर्गप्रियाय नमः।
974 ऊँ गर्भागमनसंनाशाय नमः।
975 ऊँ गर्भदाय नमः।
976 ऊँ गभ्रशोकनुदे नमः।
977 ऊँ गर्भत्रात्रे नमः।
978 ऊँ गर्भगोप्त्रे नमः।
979 ऊँ गर्भपुष्टिकराय नमः।
980 ऊँ गर्भश्रयाय नमः।
981 ऊँ गर्भामयनिवारकाय नमः।
982 ऊँ गरदमर्दकाय नमः।
983 ऊँ गोजयप्रदाय नमः।
984 ऊँ गर्भाधाराय नमः।
985 ऊँ गम्भीर लोचनाय नमः।
986 ऊँ गम्भीर गुणसंपन्नाय नमः।
987 ऊँ गम्भीरगतिशोभनाय नमः।
988 ऊँ गर्भप्रदाय नमः।
989 ऊँ गर्भरूपाय नमः।
990 ऊँ गर्भापद्विनिवारकाय नमः।
991 ऊँ गर्भधराय नमः।
992 ऊँ गर्भसंतोषसाधकाय नमः।
993 ऊँ गर्भगौरवसंधानसाधनाय नमः।
994 ऊँ गर्भवर्गहृदे नमः।
995 ऊँ गरीयसे नमः।
996 ऊँ गर्वनुदे नमः।
997 ऊँ गर्वमर्दिने नमः।
998 ऊँ गरदमर्दकाय नमः।
999 ऊँ गरसंतापशमनाय नमः।
1000 ऊँ गिरे नमः।[1]

श्री गणेश के सहस्त्रनामों की व्याख्या तो स्थान समयाभाव के कारण सम्भव नहीं है लेकिन प्राचीन भारतीय वाड़मय में पार्वतीनन्दन के जो आठ नाम निर्दिष्ट है– गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विध्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवस्त्र और गुहाग्रज[2]।

यहॉ केवल इन्ही आठ नामों का ही अनुसंधानात्मक विवेचन करना अभिप्रेत है–

1– गणेश :– चुरादिगणीय 'गणसंख्यानें' धातु से 'अच्' प्रत्यय करने से 'गण' शब्द निष्पन्न होता है और तब यह 'गण' शब्द शिव के प्रमथ प्रभृति 36 कोटिमतों गणों का बोधक सिद्ध होता है। इसी प्रकार अदादिगणीय 'ईश ऐश्वर्ये' धातु में 'क' प्रत्यय के योग से 'ईश'–शब्द व्युत्पन्न होता है और :गण' तथा 'ईश' ये दोनो शब्द परस्पर संहित होकर 'गणेश' शब्द की सिद्धि करते है। शब्दशास्त्रानुसार 'गणेश' का व्युत्पन्नार्थ हुआ गणों का नेता अथवा शिव का सेनाध्यक्ष। पौराणिक

1. श्री रूद्रयामले महागुप्तसार के शिवपार्वती संवाद के गकारादि श्री गणपतिसहस्त्र नामस्तोत्रं से उद्धत।
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.85

प्रतिपादनानुसार 'गणेश' शब्दगत प्रथम अक्षर 'ग' ज्ञानार्थवाचक है और द्वितीय अक्षर 'ण' निर्वाण वाचक है तथा अन्तिम 'ईश' शब्द है– स्वामिवाचक। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेश का शब्दार्थ है– ज्ञान तथा निर्वाण का स्वामी ब्रह्य, परमात्मा, परमेश्वर या परमतत्व आदि[1]।

2– एकदन्त :– 'एकदन्त' शब्द में 'एक' शब्द प्रधानार्थक है तथा 'दन्त' शब्द बलवाचक है। अतः बहुब्रीहि–समास–सम्पन्न 'एकदन्त' शब्द का अर्थ होता है– सर्वोत्कृष्ट, बलशाली[2]।

3– हेरम्ब :– 'हेरम्ब' शब्द का प्रथम अक्षर 'हे' दैन्य या अभाव वाचक तथा 'रम्ब' शब्द पालनार्थक है अतः षष्ठी–तत्पुरूषान्त 'हेरम्ब' का शब्दार्थ हुआ दीन या भक्तजनों का सर्वथा पालन कर्ता[3]।

4– विघ्ननायक– विघ्ननायक का पूर्वार्ध 'विघ्न' शब्द विपत्ति व अमंगल वाचक है और उत्तरार्ध 'नायक' शब्द–खण्डनार्थक या अपरहणार्थक है। अतएव सम्पूर्ण 'विघ्ननायक' शब्द का अभिधेयार्थ है– अशेष विपत्ति या विघ्न बाधाओं का संहारक[4]।

5– लम्बोदरः–'लम्बोदर' शब्द बहुब्रीहि समास के द्वारा सिद्ध हुआ है। इसका विग्रह होता है 'लम्बम् उदरं यस्य सः लम्बोदरः अर्थात लम्बा है उदर–पेट जिसका, वह पूर्वकाल में भगवान विष्णु के द्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिता के द्वारा समर्पित विविध प्रकार के मिष्टान्नों के खाने से गणेश का उदर लम्बा हो गया है। अतः गणेश'लम्बोदर' शब्द से अभिहित है[5]।

6– शूर्पकर्णः– 'शूर्पकर्ण' शब्द में भी बहुव्रीहि समास है और उसका अर्थ होता है–सूप के समान बड़े–बड़े कर्ण है जिनके, वे गणेश। अर्थात् जिस प्रकार सूप से अन्नों में से दूषित तत्वों को फटक कर उन्हें परिष्कृत कर दिया जाता है, उसी प्रकार श्री गणेश अपने शूर्पकणों से भक्तजनों के विघ्नों का निवाकरण कर विविध ऐश्वर्य तथा ज्ञान प्रदान करते है[6]।

7– गजवक्त्रः– 'गजवक्त्र' शब्दार्थ के प्रतिपादन में कहा गया है कि जिनके मस्तक पर मुनि के द्वारा प्रदत्त विष्णु का प्रसाद रूप पुष्प विरामान है तथा जो गजेन्द्र के मुख से युक्त हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूं[7]।

8– गुहाग्रजः– 'गुहाग्रज' शब्द में षष्ठीतत्पुरूष समास के योग से इसका तात्पर्य है कि जो गुह–स्वामि कात्तिकेय से पूर्व जन्म ग्रहणकर शिव के भवन में आविर्भूत हुए तथा समस्त देवगणों मे अग्रपूज्य हैं, उन गुहाग्रजदेव की मैं वन्दना करता हूँ। गुहाग्रज–शब्द में 'गुहः अग्रजो यस्य सः' इस

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.87
2. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.88
3. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44–89
4. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44–90
5. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44–91
6. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.92
7. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.93

प्रकार बहुव्रीहि समास करने पर श्री गणेश स्वामी कार्त्तिकेय के अनुज भी सिद्ध होते है[1]।

इस प्रकार मंगलमूर्ति आदिदेव परब्रह्म परमेश्वर श्री गणपति के अवतारों सहस्त्रनामों और द्वादश नामों का मंगलमयी वर्णन ग्रन्थों मे प्राप्त होता है, उनका पठन, श्रवण और मनन–चिन्तन तो मनुष्य के कल्याण के लिये लाभदायक होता है, साथ ही इन नामावलियों द्वारा श्री गणपति का अर्चन, पुजन भी किया जाता है। शास्त्रों में वर्णित है कि श्री गणेश के नामों का अर्चन दुर्वा, लावा, मोदक आदि सामग्रियों द्वारा अपनी विभन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु करना चाहिये।

श्री गणेश के विभिन्न नाम अपना पौराणिक एवं ऐतिहासकि महत्व तो रखते ही है उनसे बढ़कर आध्यात्मिक महत्व के है। श्री गणपति सर्वव्यापी परमात्मा सबके हृदय में नित्य विराजमान है। अतः आसुरी वृत्तियों के दमन तथा दैवी सम्पदाओं के संवर्धन के लिये परम प्रभु गणपति का मंगलमय स्मरण करना ही सबके लिये सर्वथा श्रेयस्कर है।

जनपद जालौन में उपलब्ध गणेश मूर्तियों के स्वरूप में प्राप्त कुछ सामान्य विशिष्ट नामः–

जैसा कि शास्त्रों से स्पष्ट है कि गणेश के अनेक नाम है, जैसे गणेश्वर, गजानन, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, एकदन्त आदि। जैसा कि वर्णित है–

ऊँ कार सन्नि भाननमिन्द्रुभालं मुक्ताग्रबिन्दुममलद्युति मेकदन्तम्।
लम्बोदरं कलचतुर्भुजादिदेवं ध्यायेन्महागणपति मति सिद्धकान्तम्।।

ऊँ कार सदृश हाथी के से मुखवाले जिनके ललाट पर चन्द्रमा बिन्दु तुल्य मुक्ता विराजमान है। जो बड़े तेजस्वी और एक दांत वाले है, जिनका उदर लम्बायमान हैं जिनकी चार सुन्दर भुजायें है, उन बुद्धि और सिद्धि के स्वामी आदि देव गणेश जी का ध्यान करें।

गणपति का प्रारम्भिक स्वरूप मूर्तिकला में प्रथम शताब्दी ई0 पूर्व से प्रथम शताब्दी ई0 तक का जो मिला है उसमें श्री गणेश की गजमुखी मूर्ति तो प्राप्त हुई है लेकिन यक्ष की प्रतिमायें मानी गई। गणेश की इन प्रतिमाओं में उनका ठिगना कद, छोटी टांगे, लम्बा व उभरा हुआ पेट तथा हाथी का मुख और माथा विशेषतः दिखलायी पड़ता है। लेकिन इनमें उनका शास्त्रों में वर्णित रूप टेढ़ी शुण्ड हाथी के कान और हाथी का एक दांत अंकित नही हुये है। वस्तुतः इन गणेश प्रतिमा का मूल यक्ष आकृतियों को माना है तथा उदाहरण रूप में द्वितीय शताब्दी के उष्णीय पर अंकित गजमुखी यक्षों के चित्रांकन को प्रस्तुत किया गया है जिसमें गणेश जी के सदृश ही आकारिक

1. ब्रह्मवैवर्त पुराण 3.44.94

डील–डौल वाले यक्षों का चित्रण है। इन्हें शास्त्रीय गणपति का पूर्व प्रकार माना है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार आरम्भिक युगीन गणपति प्रतिमायें यक्ष प्रतिमाओं के समान ही निर्मित हुई है[1]।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर भारतीय मूर्तिकला में गणेश का प्रादुभवि प्रारम्भिक गुप्तकाल से माना जाता है। यही से गणेश स्वरूप की शास्त्रोक्त विशेषतायें भी मिलने लगती है। समस्त भारत में श्री गणेश की मूर्तियां प्राप्त हुई है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र जनपद जालौन में उपलब्ध गणेश मूर्तियों का जो स्वरूप प्राप्त हुआ उनमें भी श्री गणेश को शूर्पकर्ण, एकदन्त लम्बोदर गजानन और वक्रतुण्ड शास्त्रानुसार ही दर्शाया गया है जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

शूर्पकर्णः– अन्य स्थानों से प्राप्त गणपति मूर्तियों के सदृश ही जालौन मूर्तियों में सामान्यतः गणेश के दोनो कान शूर्प की भॉति फैल निर्मित हुए है। गणेश–मूर्तियों की प्राचीनतम विशेषताओं में यह एक है और गुप्त–पूर्व–कालीन मूर्तियों शताब्दी की एक गणेश की मृण्मूर्ति महाराष्ट्र प्रान्त अस्मांनाबाद जिले के थेर नामक स्थान से मिली है इसमें श्री गणेश के हाथी के सदृश कर्ण है। शास्त्रों द्वारा भी सामान्यतः गणेश को विस्तृत कर्ण निर्मित करने का निर्देश हुआ है। शूर्प जैसे कान होने के कारण ही उनका नाम शूर्पकर्ण पड़ गया। उनके इस नाम की कथा इस प्रकार मिलती है। एक समय ऋषियों ने अग्नि को बुझाकर लुप्त हो जाने का शाप दिया। फलतः अग्नि नितान्त शक्तिहीन हो गई। गणेश को उनपर दया आ गई और उन्होंने शूर्प की भॉति अपने कानों को हिलाकर हवा की ओर अग्नि को पुर्नजीवित कर दिया तब से वे शूर्पकर्ण हो गए। इसी कारण जनपद जालौन के मन्दिरों मे निर्मित गणपति मूर्तियों मे उनके कान शूर्प जैसे बनाये गये, जो उनके शूर्पकर्ण नाम को सार्थक करते है।

एकदन्त :–श्री गणेश को 'एकदन्त' कहा जाता है गणेश मूर्तियों के प्रादुर्भाव के समय से ही उनमें एक ही दांत बनता आया है[2]। साहित्य में उपलब्ध अनेक प्राचीनतम विवरणों मे भी उनकी इस विशेषता का उल्लेख हुआ है और इसीलिए वे एकदन्त नाम से विख्यात हुए है[3]। उनके एकदन्त होने की कथा ब्रह्माण्डपुराण में इस प्रकार मिलती है– एक समय शिव के परशु से क्षत्रियों का संहार करके परशुराम शिव के दर्शनार्थ कैलाश आए। वहॉ द्वार पर गणेश ने उन्हें रोक दिया और उनको बताया कि शिव–पार्वती वार्तालाप कर रहे है और किसी को प्रवेश करने की अनुमति नही है। गणेश इस बात की ओर बिना को ध्यान दिए परशुराम ने अपने परशु से गणेश पर प्रहार किया,

1. वासुदेव शरण अग्रवाल, मथुरा कला अहमदाबाद पृ0 73
2. द्र0 गुप्त पूर्व कालीन मूर्तियों 'मथुरा कलां पृ0 74
3. वृहत्संहिता 58, 58 अमरकोष 1, 1, 38

जिससे उनका बायॉ दॉत टूट गया। और तब से वे एकदन्त हो गए[1]। इसलिए शास्त्रों द्वारा उनकी मूर्ति बांए दांत के न चित्रित किए जाने का निर्देश हुआ[2]। इस निर्देशानुसार गणेश–मूर्तियों मे सामान्यतः दाई ओर का एक ही दांत बनाया जाता है। जनपद जालौन की गणेश मूर्तियों में भी सामान्यत इसी निर्देश का पालन हुआ है किन्तु साथ ही बाई ओर के दांत के भग्न प्रदर्शन के अभिप्राय से उसका थोड़ा सा अंश सी चित्रित कर दिया है। इस तरह की मूर्ति किलाघाट कालपी के पातालेश्वर मन्दिर, उरई के लक्ष्मीनारायण और अड्डा मन्दिर और बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई मे विशेष रूप से प्राप्त है। संग्रहालय वाली मूर्ति में उनके दाहिने ओर का दांत तो स्पष्ट दिखलाई पड़ता है लेकिन बायी ओर शुण्ड के मुड़े होने के कारण उनका भग्न दॉत नही दिखलाई देता है। यह मूर्ति 6वीं शताब्दी की है और अकबरपुर इटौरा से प्राप्त हुई है[3]।

उपर्युक्त निर्देश के विपरीत भी अनेक मूर्तियॉ भारत में मिलती है। जिनमें दाई ओर की अपेक्षा बाई ओर का दांत चित्रित हुआ है। खजुराहों में एक ऐसी प्रतिमा उपलब्ध है जो विश्वनाथ मन्दिर में प्राप्त है और इस मन्दिर के उत्तर–पूर्वी गौण मन्दिर के गर्भग्रह के भीतर बाद में प्रतिष्ठित की गई है[4]।

लम्बोदरा :–गणेश के लम्बोदर होने की विशिष्टता उतनी ही पुरानी है, जितनी एकदन्त होने की। अन्य स्थानों से प्राप्त गणेश मूर्तियों के समान जालौन की मूर्तियों मे भी गणेश की यह विशेषता देखी जा सकती है। किलाघाट कालपी के बिहारी जी के मन्दिर, कालपी के गणेशगंज मुहल्ला के गणेश मन्दिर, गणेश मन्दिर जालौन गोविन्देश्वर मन्दिर, जालौन और महाकालेश्वर मन्दिर कोंच में गणेश की मूर्तियों मे लम्बोदर रूप विशिष्ट रूप से दर्शाया गया है। गणेश त्रिभुवन के स्वामी शिव के आकाशी तत्व है। सम्भवतः इसलिए बृहत् आकाश के प्रतिनिधि–स्वरूप गणेश का उदर बहुत बड़ा बनाया गया है, जिसमें आकाश–सागर में तैरते हुए विभिन्न प्राणियों के प्रतीक सहस्त्रों मोदक समा सके। किन्तु पद्मपुराण में मोदक महाबुद्धि का प्रतीक माना गया है।
गजानन :–गजानन होना गणेश की पहली विशेषता है और गजमुख के बिना उनकी कल्पना ही नही हो सकती है इसी कारण जनपद जालौन की सभी मूर्तियों में वे गजमुखी ही है।
वक्रतुण्डः–गणेश की वक्रतुण्ड विशेषता भी सामान्य है। अधिकांश मूर्तियों मे उनकी तुण्ड बाई ओर मुड़ी चित्रि होती है और उसके दाई ओर मुड़े प्रदर्शन बहुत कम मिलते है। जालौन मूर्तियों में सामान्यतः सम्पूर्ण शुण्ड बाई ओर मुड़कर देवता के बांए हाथ के मोदक अथवा मोदकपात्र को स्पर्श

1. गणेश पृ0 8 EHI. PP 60.61
2. खजुराहों की देव पतिमयें पृ0 50
3. जनपद जालौन में श्री गणेश के विविध स्वरूप, पृ0 25
4. खजुराहों की देव प्रतिमायें, पृ0 50.53

करने की मुद्रा में प्रदर्शित है। किन्तु यहाँ की कुछ मूर्तियों में शुण्ड दाई और मुडी और कुछ में सीधी लटकी भी चित्रित है। दाई और मुड़ी तुण्ड उरई के अडडा मन्दिर कालपी के गणेश मन्दिर और पाहूलाल देवालय में प्रदर्शित है। जिनमे श्री गणेश की शुण्ड सीधी दिखलाई गई है। इस प्रकार की मूर्ति भूतेश्वर मन्दिर कोंच, बड़ी माता मन्दिर कोंच पातालेश्वर मन्दिर कालपी मे स्थित है। किलाघाट कालपी के बिहारी जी मन्दिर की मूर्ति में श्री गणेश की शुण्ड सीधी जाकर सिरे पर वक्र हो गई है। अतः इस प्रतिमा में श्री गणेश का अद्वितीय वक्रतुण्डी रूप प्रदर्शित होता है।

इसके अतिरिक्त ललितपुर जनपद के घिसौली, जखौरा, पनारी, मसौरा खुर्द, लागौन, साकरवार और सिरसी में निर्मित श्री गणेश प्रतिमा को सूर्पकर्ण, एकदन्त लम्बोदर तथा गजानन स्वरूप में उनके लक्षणों के अनुरूप रूपायित किया गया है। जखौरा के रामजानकी मन्दिर की चतुर्भुजी मूर्ति मे श्री गणेश की वक्रतुण्ड दायी ओर मुड़कर मोदक–पात्र के ऊपर निरूपित है। राजकीय संगहालय झाँसी की मूर्तियों में भी उनका एकदन्त, सूर्पकर्ण और लम्बोदर रूप प्रदर्शित है[1]। यहाँ की वक्रतुण्ड बायी ओर ही प्रदर्शित है।

इसके अतिरिक्त गणपति मूर्तियों के ये नाम ओर उनके स्वरूप आरम्भिक चरणों मे उदयगिरी, अहिछत्र भीतरगाँव देवगढ़, राजघाट आदि स्थलों से प्राप्त मूर्तियों मे भी पाये गये। इस काल की मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित सुन्दर प्रतिमाओं में गजमुखी, लम्बोदर, शूपकर्ण और एकदन्ती है। गणेश के बायें हाथ में रखे हुये मोदक को अपने सूँड से स्पर्श करते हुये वह वक्ररूप में प्रदर्शित है। दाहिनी और मुड़ी सूड़ वाले गणेश की प्रसिद्ध मूर्ति महाराष्ट्र के सिद्धिविनायक मंदिर में दर्शनीय है।

श्री गणेश के नाम और स्वरूप का सामाजिक महत्त्व एवं आस्था

प्रत्येक मांगलिक कार्य में श्री गणपति का प्रथम पूजन होता है। पूजन का थाली में मंगलस्वरूप श्री गणपति का स्वस्तिक चिन्ह बना कर उसके ओर छोर अर्थात् अगल–बगल में दो–दो खड़ी रेखाएँ बना देते है। स्वस्तिक चिन्ह श्री गणपति का स्वरूप है और दो–दो रेखाएँ श्री गणपति की भार्यास्वरूप सिद्धि–बुद्धि एवं पुत्रस्वरूप लाभ और क्षेम है। श्री गणपति का बीजमन्त्र है। अनुस्वारयुक्त 'ग'। इसी 'ग' बीजमन्त्र की चार संख्या को मिलाकर एक कर देने से स्वस्तिक चिन्ह बन जाता है। इस चिन्ह में चार बीजमन्त्रों का संयुक्त होना श्री गणपति की जन्मतिथि चतुर्थी का घोतक है। चतुर्थी तिथि में जन्म लेने का तात्पर्य यह है कि श्री गणपति बुद्धिप्रदाता है, अतः जाग्रत्, स्वप्न, सुपुप्ति और तुरीय– इन चार अवस्थाओं में चौकी अवस्था ही ज्ञानावस्था है। इस

1. प्रतिमा संख्या 81.89, 81.176, राजकीय संग्रहालाय झाँसी

कारण बुद्धि (ज्ञान) प्रदान करने वाले श्री गणपति का जन्म चतुर्थी में होना युक्तिसंगत ही है। श्री गणपति पूजन सिद्धि, बुद्धि लाभ और क्षेम प्रदान करता है, यही भाव इस चिन्ह के आस–पास दो–दो खड़ी रेखाओं का है।

इस प्रकार मंगलमूर्ति श्री गणेशस्वरूप का प्रत्येक अंग किसी न किसी विशेषता को लिये हुये है। और उनके स्वरूप की ये विशेषतायें अत्यन्त भाव प्रधान एवं सामाजिकता से ओत–प्रोत है। इसके साथ ही साथ यह स्वरूप हमें समाज के कर्तव्यों का दिशा बोध भी कराता है।

श्री गणेश का वामन स्वरूप ठिगना है जो हमें यह ज्ञान बोध कराता है कि सामाजिक कार्यो में संलग्न व्यक्ति में अहम् नही होना चाहिये तथा समाज में अपने आप को बड़ा बनकर नहीं अपितु छोटा बनकर ही प्रस्तुत करना चाहिये। जिससे समाज के प्रत्येक व्यक्ति व वर्ग का स्नेह प्राप्त हो सके।

श्री गणेश का सिर गज का है। इसी कारण उन्हें गजमुखी कहा जाता है जोकि बुद्धि धैर्य एवं गाम्भीर्य का घोतक है। गज अन्य पशुओं की भॉति खाद्य पदार्थ को देखकर दुम नही हिलाता अपितु धीरता गम्भीरता से उसे ग्रहण करता है।

श्री गणेश के कर्ण बड़े–बड़े सूपाकार है इसी कारण वह शूर्पकर्ण कहे गये। उनका यह रूप इस बात को इंगित करता है कि व्यक्ति सुन तो सबकी ले पर उसके ऊपर धीरता एवं गम्भीरता के साथ विचार करें। ऐसे व्यक्ति ही कार्यक्षेत्र में आगे बढ़कर सफलता प्राप्त कर सकते है।

श्री गणेश का उदर लम्बा होता है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि व्यक्ति समाज में रहते हुए सबकी सुनें तथा सबकी सभी बातों को उदरस्थ करता जाये इधर–उधर चुगलखोरी न करें तथा उचित समय पर यदि आवश्यक हो तो उदरस्थ बात को प्रकाश मे लाये।

श्री गणेश को 'एकदन्त' कहा जाता है समाज की एकता के लिये अक्सर यह कहा जाता है कि वे लोग तो 'एक दांत से रोटी खाते है।' श्री गणेश का मोदक प्रिय होना भी यही इंगित करता है। अलग बूँदी का एक साथ मिलाकर मोदक बनाकर उसे ग्रहण करने से जिस प्रकार से शरीरिक पुष्टता प्राप्त होती है उसी भांति समाज के सभी विखरे पड़े लोगो को एकत्रित कर सामाजिक कार्यो में लगने से समाज में प्रगति रूपी पुष्टता दृष्टिगोचर होती है।

श्री गणेश का एक रूप मूषक वाहन के रूप में प्रदर्शित है। श्री गणेश के चूहे की सवारी क्यों। इसका तात्पर्य यह है कि चूहे की यह प्रकृति है कि बिना विचारे प्रत्येक वस्तु को कुतर कर

नष्ट कर देता है। अतः इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि समाज को तोड़ने वाली शक्तियों पर धीरज तथा गम्भीरता का अंकुश लगाकर उन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। तथा उनका सकारात्मक योगदान लिया जा सकता है।

श्री गणेश परशुधारी है जो कि समाज के अन्याय को समाप्त करने हेतु इंगित करता है तथा दूसरे हाथ में रस्सी इस बात का प्रतीक है कि समाज को एक सूत्रता में ही रहना चाहिये।

श्री गणेश को सिन्दूर व दूर्वा अर्पित की जाती है। सिन्दूर एवं मांगलिक एवं बुद्धि नियंता द्रव्य है तथा दुर्वा नम्रता एवं सरलता का घोतक है। दुर्वा का यह आयुर्वेदीय गुण है कि वह शीत प्रधान द्रव्य है अतः सामाजिक उलझनों से बुद्धि में भी उष्णता एवं क्रोधाग्नि का भड़काव होता है, दुर्वा सेवन से यह नियंत्रित होती है। अस्तु श्री गणेश के स्वरूप का मर्म विशुद्ध सामाजिक है तथा यह हमें हमारे सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता प्रदान करते हुये हमारा मार्ग दर्शन करता है।

बृहत्तर भारत में श्री गणेश के नाम और स्वरूप

इसके अतिरिक्त हिन्दू लोगों ने भारत के बाहर भी अपने उपनिवेश बनाये थें, इसका पता इतिहास दे रहा है जहॉ ये लोग धर्मप्रचारक के रूप में या व्यापारी के रूप मे बस गये, वहाँ ये अपने साथ भारत से अपनी सभ्यता भी लेते गये, अपने देवता तथा उनकी भारतीय पद्धति को अपने साथ ले जाना नही भूले। फलतः गणपति की मूर्ति विध्नराज के रूप में ब्रह्यत्तर भारत के समग्र देशों मे आज भी पायी जाती है। इन देशो मे गणपति के नाम भिन्न भिन्न है। गेट्टी ने इन नामों की तालिका अपने ग्रन्थ में दी है। गणपति को दक्षिण में अर्थात तमिल में 'पिल्लैयार' भोट भाषा में सोग्स–दाग' वर्मी में 'महा–पियेन्ने', मंगोलियन में त्वोतरवारून खागान' कम्बोडियन में 'प्राहकेनीज' चीनी भाषा में 'कुआन–शी–तिएन' जापानी में कांङ्गी तेन' नाम दिया गया है।

नेपाल में गणेश हेरम्ब विनायक के नाम से पूजे जाते है। हेरम्ब की बड़ी विशेषता यह है कि उनके पॉच मुख होते है तथा मूषक के स्थान पर सिंह ही उनका बाहन है। इन पॉच मुखों का क्रम भी बड़ा विलक्षण रहता है। कभी चारों दिशाओं मे चार मुख होते है। और ऊपर बीच में एक मुख, कभी तीन ही मुख एक पंक्ति में और एक के ऊपर एक रूप से दो मुख होते है। तिब्बत में प्रत्येक मठ के अधिक्षक देवता के रूप में गणपति की पूजा आज भी प्रचलित है।

चीन में गणेश का प्रवेश या तो चीन तुर्किस्तान या नेपाल–तिब्बत के रास्ते मे हुआ होगा। चीन मे गणेश की मूर्ति दो नाय तथा रूप से विख्यात है– 'विनायक' (बोद्धसम्मत मूर्ति) तथा 'कांङ्गी–तेन' (गणेश की युगल मूर्ति)। कांङ्गी तेन मूर्ति बड़ी विलक्षण है। वह इन पूरवी प्रदेशों की

अपनी खास कल्पना का परिणाम है। चीन देश के तान्त्रिक बौद्धधर्म ने विनायक का ग्रहण बड़ी जल्दी कर लिया तथा अपने देवताओं में इन्हे बड़ा आसन दिया। विनायक बोधिसत्व अवलोकितश्वेर के ही प्रतिरूप माने जाते है। वज्र धातु की कल्पना में विनायक का विशेष प्रभाव है। नवमी शताब्दी के बाद जापान में गजानन जी विराजने लगे। कोबोदाइशी नामक विद्वान ने चीन देशीय बौद्धाचार्यो से दीक्षा लेकर विनायक का नाम जापान मे प्रवेश कराया और स्थानीय प्रसिद्ध शिंगोर सम्प्रदाय ने इन्हें अपना लिया, शिंगोन मत तान्त्रिक मत है। अतः उसने रहस्यमयी कांड्गी–तेन मूर्ति का विशेष प्रचार किया। यह गजानन की युगल मूर्ति है, जिसमें दो मूर्तियों की पीठ एक साथलगी हुई तथा मुहँ दो दिशाओं की ओर है। जापानी बोद्ध इन मूर्तियों को रहस्यमय था शक्ति और शक्तिमान की एकता का प्रतिपादक बतलाते है। सुदूर अमरीका में भी लम्बोदर की मूर्ति मिली है। आकृति वही लम्बा तुन्दिल शरीर, ऊपर हाथी का इधर उधर दोलायमान शुण्डादण्ड। इन मूर्तियों का श्री चम्मनलाल ने हिन्दू अमरीका, नामा अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है। इन मूर्तियों की कल्पना से प्रतीत होता है कि भारतीयों ने कभी अमरीका में भी अपने उपनिवेश बसाये थे।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गणेश मूर्ति स्वरूप में उत्तरी मंगोलिया से दक्षिणी वाली तक तथा भारत से लेकर अमरीका तक कम या अधिक अंश में भिन्न–भिन्न नामों द्वारा पूजे जाते है। भले ही इन सभी क्षेत्रों मे उनके नामों मे विविधता है लेकिन सभी जगह वह बुद्धि के देव और मंगल देव के रूप में पूजे जाते है।

षष्ठ अध्याय

षष्ठ अध्याय

गजानन गणेश मूर्तियों के लक्षण एवं लांछन

जनपद जालौन में गणेश की मूर्तियाँ विशेषतः प्रतिहार कालीन एवं चंदेलकालीन हैं। मूर्ति शिल्प की दृष्टि में गणपति मूर्तियाँ अपने प्रमुख लक्षणों एकदन्त, सूर्पकर्ण, गजानन और लम्बोदर स्वरूप सहित नृत्य, आसन और स्थानक रूप में प्राप्त हुयी हैं। इस क्षेत्र में गणेश की चतुर्भुजी मूर्तियाँ अधिक देखने को मिली हैं। कुछ मूर्तियाँ द्विभुजी और अष्टभुजी भी हैं। इनमें उनके वस्त्र, आभूषण और आयुधों के भिन्न–भिन्न लक्षण पौराणिक विवरणानुसार रूपान्कित किये गये हैं। अतः यहाँ पर जनपद जालौन की इन्हीं गणपति प्रतिमाओं के लक्षण एवं लांछनों का समूचे बुन्देलखण्ड में प्राप्त गणपति प्रतिमाओं से तुलनात्मक अध्ययन किये जाने का प्रयास किया जा रहा है।

उरई में गणपति मूर्तियाँ

उरई नगरी में गणेश की भिन्न–भिन्न मुद्राओं की प्रतिमायें प्राप्त हुईं हैं। यहाँ की अनेक गणेश प्रतिमायें आसनस्थ मुद्रा में हैं जिनमें कमलासीन, मूषकासीन मूर्तियाँ अत्यन्त मोहक हैं। इसके साथ ही यहाँ की द्विभुजी नृत्य गणेश प्रतिमा और अष्टभुजी नृत्य गणेश प्रतिमा के प्राप्त होने से यह पता चलता है कि इस क्षेत्र की मूर्तियों पर गुप्तकालीन कला का प्रभाव पड़ा है क्योंकि नृत्य–गणपति मूर्तियों का निर्माण पूर्व गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। गुप्तकाल में उनका प्रचलन बढ़ने लगा और मध्ययुग में वह बहुत व्यापक हो गया। आज भी भारत के विभिन्न भागों में मध्ययुगीन ऐसी अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। यद्यपि एक क्षेत्र की मूर्तियाँ दूसरे क्षेत्र की मूर्तियों से स्थानीय रचनां शैली के कारण थोड़ी–बहुत भिन्न अवश्य हैं। इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन टैराकोटा की गणेश मूर्ति, प्रभामण्डल पर स्थित श्री गणेश, लोक कला में चतुर्भुजी गणेश, लड्डू गणेश, द्विभुजी गणेश, धावक मुद्रा आदि गणेश के विभिन्न स्वरूप उरई क्षेत्र के मंदिरों में दृस्टव्य हैं। सभी प्रकार की मूर्तियों के लक्षण एवं लांछनों का बुन्देलखण्ड की मूर्तियों से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

अष्टभुजी नृत्य गणेश

मन्सिल माता के मंदिर में द्वार पर विराजे हैं अष्टभुजी नृत्य गणेश। यह मंदिर उरई क्षेत्र के तिलक नगर में स्थित है[1]। शास्त्रों के अनुसार नृत्य–गणपति मूर्ति अष्टभुजी बननी चाहिए। मूर्ति के सात हाथों में पाश, अंकुश, मोदक, कुठार, दंतवलय तथा अंगुलीय हों, और शेष एक हाथ उन्मुक्त लटककर विविध नृत्यमुद्राओं के प्रदर्शन में सहायक हों। मंसिल माता के मंदिर में अष्टभुजी

---

1. जनपद –जालौन में श्रीगणेष के विविध स्वरूप–पष्ठ 17

नृत्य गणेश की प्रतिमा अवश्य विद्यमान है परन्तु उनके हाथों के लक्षणों में इस निर्देश का पूर्ण पालन नहीं हुआ है। वह अपने पहले हाथ में फरसा और दूसरे हाथ में गदा ग्रहण किये हुये हैं। तीसरे, चौथे, पाँचवे, छठवे और सातवें हाथ में ग्रहण किया हुआ पदार्थ स्पष्ट नहीं है। अतः बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अष्टभुजी नृत्यगणेश की प्रतिमा ललितपुर के सीरोन खुर्द, खजुराहो और कालींजर दुर्ग से प्राप्त हुईं हैं। खजुहारों में इस तरह की 5 मूर्तियाँ प्राप्त हुयी हैं। पर ये मूर्तियाँ मंसिल माता की अष्टभुजी मूर्ति से पूर्णतया भिन्न हैं। इनमें सबसे विशालतम मूर्ति में गणेश अतिभंग में खड़े हुये हैं। वे द्वार, कंकण, केयूर, कटिसूत्र, पैजनी तथा कौस्तुभमणि से अलंकृत हैं। मस्तक पर मोती की इकहरी लढ़ी का सुंदर अलंकरण है। शरीर के मध्य ढीला सर्पयज्ञोपवीत पड़ा है। वे सूर्पकर्ण और एकदन्त हैं उनके पहले हाथ में धारण किया हुआ पदार्थ स्पष्ट नहीं है। दूसरे में वे परशु लिये हैं और तीसरा गजहस्त अथवा दण्डहस्त मुद्रा में प्रदर्शित हैं। चौथे, पाँचवे हाथों से एक नाग पकड़ कर सिर के ऊपर बिठाये हुये हैं। छठवे हाथ में दन्त और सातवे में मोदक पात्र है। और आठवाँ कटिहस्त है। उनकी सम्पूर्ण सूँड़ बायीं ओर मुड़कर मोदक पात्र को स्पर्श करने की मुद्रा में है। मूर्ति पैरों से टूट गयी है और पादपीठ अलग रखा है। इस पादपीठ पर एक ओर रखी दो मृदंगों को बजाता हुआ एक पार्श्वचर बैठा हुआ चित्रित है। दूसरी ओर एक खड़े हुये अनुचर की प्रतिमा है जो दोनों हाथों से एक मृदंग बजाने में तल्लीन प्रतीत होता है। इसी ओर देवता का वाहन मूषक नृत्य–मुद्रा में दोनों पैरों के बल खड़ा प्रदर्शित है।

नृत्य–गणपति की दूसरी अष्टभुजी मूर्ति में उनका सिर छोटा–सा जटामुकुट, गले में हार और ग्रैवेयक हाथों में कंगन और अंगद, वक्ष में कौस्तुभमणि, पैरों में पैजनी और कटि में मेखला धारण किये हैं। वे सर्प का नहीं, मोती की लड़ियों का यज्ञोवतीत पहने हैं। और सूर्पकर्ण व एकदन्त हैं। वे पहले हाथ में दन्त, दूसरे में एक वस्त्र, तीसरे में कुण्डलित कमलनाल, चौथे में परशु और पाँचवे में सर्प धारण किये हैं। उनका छठा हाँथ टूट हुआ, सातवाँ कटि के पास नृत्य मुद्रा और आठवाँ कट्यावलम्वित है। उनकी सम्पूर्ण सूँड़ बायीं ओर मुड़ी है परन्तु उनके आगे का हाथ टूटा है। छठे टूटे हाथ में मोदक या मोदक पात्र रहा होगा। और सूँड़ उसी को स्पर्श करने की मुद्रा में निर्मित है। मृदंग, करताल आदि वाद्य यंत्रों को बजाते हुए प्रत्येक पार्श्व में दो–दो सेवकों की छोटी मूर्तियाँ लगी हुयी हैं। प्रभावली के दोनों ओर एक–एक देवी खड़ी हुयी हैं। ये दोनों वीणा धारिणीं गणेश की पत्नी सरस्वती के ही चित्रण हैं। जिनमें से एक का नाम लक्ष्मी व दूसरे का भारती होना चाहिए। यहाँ की तीसरी, चौथी व पाँचवी अष्टभुजी मूर्तियों के लक्षण उपर्युक्त मूर्तियों के सदृश हैं[1]।

1. खजुराहों की देव प्रतिमायें –पृ० 43–44

खजुराहों की ये अष्टभुजी मूर्तियाँ मन्सिल माता उरई के अष्टभुजी मूर्ति से पूर्णतया भिन्न हैं। लेकिन खजुराहो की अष्टभुजी मूर्तियों से साम्य रखने वालीं मूर्तियाँ अन्य स्थानों से भी पायीं गयीं हैं। उड़ीसा की एक ऐसी सुन्दर मूर्ति द्रष्टव्य है। खजुराहो की कुछ मूर्तियों के समान इसमें भी गणेश का भी एक हाथ गज–हस्त अथवा दण्ड–हस्त मुद्रा में प्रदर्शित है और ऊपर की ओर उठे दो हाथों से वे एक नाग पकड़े हैं। अन्य हाथों में वे स्वदन्त, अक्षमाला तथा मोदक–पात्र धारण किए हैं और उनके शेष हाथ टूटे हैं। हलेविद के होयसलेश्वर मन्दिर के बहुत ही अलंकृत अष्टभुजी मूर्ति विशेष दर्शनीय है। इसका भी एक हाथ दण्ड–हस्त और दूसरा विस्मय हस्तमुद्रा में है। अन्य हाथों में प्रतिमा, परशु, पाश, मोदक–पात्र, दन्त, सर्प तथा पद्म धारण किये हुये हैं। करण्ड–मुकुट तथा अन्य अनेक आभूषणों से यह अत्यधिक अलंकृत है। और इसकी सम्पूर्ण सूँड़ खजुराहो की एक प्रतिमा के सदृश दायीं ओर मुड़ी प्रदर्शित है। साथ में अंकित वाद्य यंत्रों को बजाते हुए पार्श्वचर, मोदक खाने में व्यस्त मूषक तथा अंजलि मुद्रा में हाथ जोड़कर बैठे भक्त दर्शनीय हैं। ऐसे अलंकरण की एक भी मूर्ति खजुराहो में नहीं मिलती है। बंगाल की एक अष्टभुजी मूर्ति भी दर्शनीय है।

मन्सिल माता उरई की गणेश मूर्ति काल की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग की मूर्ति, ललितपुर के सीरोन खुर्द की मूर्ति, खजुराहो की मूर्ति से साम्य रखती है क्योंकि इन तीनों क्षेत्रों की मूर्तियों का शिल्पांकन दशवी शताब्दी में हुआ था। अतः मन्सिल माता की गणेश मूर्ति भी दशवी शताब्दी की है। यह प्रतिमा बलुआ पत्थर से बनायी गयी है जिसका आकार 66 x30 से.मी. है[1]। लेकिन लक्षणों की दृष्टि से कालिंजर दुर्ग और सीरोन खुर्द की अष्टभुजी मूर्ति कोंच गढ़ी की अष्टभुजी मूर्ति से अधिक मिलती जुलती है जिसका तुलनात्मक अध्ययन आगे किया गया है। इसके अतिरिक्त 9वीं–10वीं शती की दो नृत्य गणपति की प्रस्तर–प्रतिमाएं अमर पाटन एवं चौंसठ योगिनियों के मंदिर, भेड़ाघाट में भी विद्यमान है। अंतिम दोनों मूर्तियाँ भी खजुराहो से मिली नृत्य गणपति की प्रतिमाओं से काफी साम्य रखती हैं जो चंदेल–काल की अनुपम उदाहरण है।

रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश

बल्दाऊ चौक राजमार्ग उरई के लक्ष्मीनारायण मंदिर में रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश की सुन्दर प्रतिमा विद्यमान है। पद्मासन मुद्रा में चतुर्भुजी गणेश की यह प्रतिमा अद्वितीय है। यह प्रतिमा 17वीं शताब्दी की है। इसका आकार 58 x 53.2 से.मी. है। यह मूर्ति काला पत्थर से बनी हुयी है। रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश अपने बायें तरफ पहले हाथ में फरसा धारण किये हुये हैं और

1. श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 17

दूसरा हाथ वरद मुद्रा में है। वायें पार्श्व के तीसरे हाथ में शंख और चौथे हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये हैं। श्री गणेश की सूँड़ बायीं ओर मुड़ी हुयी है और हाथ से लड्डू ग्रहण करते हुये स्थापित हैं। शास्त्रों के अनुसार ग्रहस्थ जनों को वायीं ओर सूंड़ किये भगवान का पूजन करना चाहिए जबकि तंत्र, सिद्धि विनायक की पूजा की जानी चाहिए। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार भी घरों में पूजा के लिए सूंड़ को वायीं ओर होना चाहिए[1]। अतः इस मूर्ति में शास्त्रोक्त नियमों का पूर्ण पालन हुआ है। इसी के साथ श्री गणेश इसमें अपनी दो पत्नियाँ रिद्धि और सिद्धि के साथ बज्रासन मुद्रा में बैठे हुए हैं। उनके दायें बायें रिद्धि–सिद्धि खड़ी हुयी हैं।

रिद्धि–सिद्धि युक्त एक गणपति मूर्ति राजकीय संग्रहालय झांसी[2] में प्रदर्शित है जिसमें गणेश राजलीलासन मुद्रा में बैठे हैं। इस मूर्ति के हाथों के लक्षण उपर्युक्त मूर्ति से कुछ भिन्नता लिये हुये हैं। इनका पहला हाथ अभय मुद्रा और दूसरा हाथ अंकुश धारण किये हुये है जबकि तीसरे हाथ में मोदक पात्र और चौथे में अपना टूटा दांत लिये हुये हैं। इसमें दो लक्षण लक्ष्मीनारायण मूर्ति के लक्षण के समान हैं लेकिन स्थिति बदली हुई है। उरई की मूर्ति में उनका दूसरा हाथ अभयमुद्रा में है जबकि झांसी संग्रहालय की मूर्ति में उनका पहला ही हाथ अभय मुद्रा में है। झांसी की मूर्ति में तीसरे में मोदक–पात्र है तो उरई की प्रतिमा में चौथे हाथ में केवल लड्डू है। दो लक्षण पूर्णतः भिन्न हैं। राजकीय संग्रहालय झांसी की मूर्ति में उनका गजवदन, एकदन्त और सूर्पकर्ण स्वरूप वर्णित है जो उरई की मूर्ति में भी विद्यमान है। झाँसी वाली मूर्ति में उनके दोनों तरफ बने अलग–अलग खण्डों में उनकी पत्नियाँ रिद्धि और सिद्धि स्थित हैं जबकि उरई में दोनों तरफ खाली स्थान में दोनों तरफ स्वतन्त्र रूप से खड़ी हैं। उरई की मूर्ति आधुनिक है जबकि झांसी वाली मूर्ति 10 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 25 x 37 से.मी. है। यह मूर्ति सीरोन खुर्द से प्राप्त हुई है और बालू पत्थर से निर्मित है।

इसके अतिरिक्त खजुराहो[3] और ललितपुर जनपद के जखौरा[4] क्षेत्र में गणेश मूर्ति उनकी पत्नी सहित प्राप्त हुई है परन्तु इसमें उनकी दोनों पत्नियाँ रिद्धि–सिद्धि न होकर केवल उनकी एक ही पत्नी शक्ति का अंकन है जो उनकी बायीं जंघा पर बैठी हैं[5]।

---

1. अमर उजाला समाचार पत्र से भारतीय ज्योतिविज्ञान परिषद के सदस्य दिनेश शर्मा का लेख।
2. Sculptures in the Jhansi Museum P.- 57
3. खजुराहों की देव प्रतिमायें' पृ0 –47
4. पुरातात्विक सर्वेक्षण रिपोर्ट (1988–89) विकास खण्ड :– जखैरा, जनपद–ललितपुर पृ0 5
5. सभी देवियों को शक्ति स्वरूप कहा गया है यथा –या देवी सर्वभूतेषुशक्ति रूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः देवी सूक्त श्रीमहेवी भागवत्

लोक कला में चतुर्भुजी श्री गणेश–

लोककला में चतुर्भुजी श्री गणेश की यह अद्वितीय प्रतिमा मुहल्ला बल्दाऊ चौक उरई के अड्डा मन्दिर में स्थापित है। यह प्रतिमा बलुआ पत्थर से बनी हुयी है जिसमें श्री गणेश दोनों पैरों को पसारे हुये बैठे हैं। यह मूर्ति 18 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 39 x 28 से.मी. है। उनकी सूंड़ दाहिनी ओर मुड़ी हुई है और हाथ से लड्डू ग्रहण करते हुये दिखलाई गयी है। इस मूर्ति में श्री गणेश 'गजकर्ण' अर्थात् हाथी के कान वाले ही दर्शाये गये हैं। पुराणों में श्री गणेश के गजकर्णत्व तथा शूर्पकर्णत्व का कारण बताते हुये कहा है– 'श्रीगणेश योगीन्द्रमुख से वर्ण्यमान तथा श्रेष्ठ जिज्ञासुओं से श्रूयमाण विषय को हृदयगत सूर्य के समान पाप–पुण्यरूप रज को दूर करके ब्रह्मप्राप्ति सम्पादित कर देते हैं, अतः उन्हें इसी नाम से व्यवहृत किया जाता है। अभी तक के हमारे प्रयास में लोककला में निर्मित मूर्ति बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में देखने में नहीं मिली है।

मूषकासीन चतुर्भुजी गणेश :–

श्री गणेश के वाहन के रूप में सिंह, मयूर और मूषक का विवरण मिलता है। ब्रह्मवैवर्तपुराण और पद्मपुराण में उनका वाहन मूषक बतलाया गया है। उरई की इस मूर्ति में भी श्रीगणेश अपने वाहन मूषक के साथ प्रदर्शित हैं। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में उपलब्ध पाषाण पत्रक पर उत्कीर्ण मूषकासीन चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा अपनी प्राचीनता के कारण विशिष्ट महत्व रखती है। खजुराहो, देवगढ़ व ललितपुर जनपद के धुखारा क्षेत्र में गणेश प्रतिमा सम्बन्धी पाषाण पत्रक अवश्य प्राप्त हुये हैं परन्तु इनमें वह अपने वाहन मूषक के साथ चित्रित नहीं हैं। खजुराहो और देवगढ़ में ये पाषाण–पत्रक पर सप्तमातृकाओं और वीरभद्र के साथ प्रदर्शित हुये हैं। किसी मूर्ति में वह चुपचाप खड़े हैं तो किसी मूर्ति में उनके साथ नृत्य करते हुये प्रदर्शित है। देवगढ़ वाली प्रतिमा में सातों देवियाँ अपने–अपने वाहनों पर अवस्थित हैं। उनके दोनो पार्श्वों में गणेश और शिव वीणा धारण किये हुऐ खड़े हैं। खुजराहों वाली मूर्तियों में सप्तमातृकायें प्राय नृत्य मुद्रा में हैं। देवगढ़ की ये मूर्तियां राजघाटी और नाहरघाटी में प्राप्त हैं[1] तो खुजराहों की मूर्तियां लक्ष्मण मन्दिर, खजुराहों संग्रहालय और दूलादेव मन्दिर के गर्भद्वार पर देखी गई हैं[2]। बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई की यह मूर्ति पूर्णतया भिन्न है। इसमें गणपति विशालकाय हैं जबकि उनका वाहन मूषक अति लघुकाय है। सरसरी तौर पर देखने से यह बात असम्भव एवं हास्यास्पद प्रतीत होती है, पर थोड़ा बुद्धिपूर्वक विचार करें तो यह संकेत मिलता है कि आत्मतत्व न तो भारी है और न

1. त्रिवेदी, एस0डी0 'बुन्देलखण्ड का पुरातत्व' पृ0 –78
2. अवस्थी, रामाश्रय – 'खजुराहों की देवप्रतिमायें' पृ0 53

हल्का। वह अणु से भी अणुतर है एवं महान से भी महत्तर है। उसका सभी शरीर में वास है। जल या अग्नि की भाँति चिन्मय आत्मा जिस शरीर को आश्रय रुप में ग्रहण करता है, वह तद्रूप ही हो जाता है। इसमें आत्मा की सर्वव्यापकता, सूक्ष्मता एवं चिन्मयता में अन्तर नहीं आता। मूषक पर सवार गणपति का रूप आत्मस्वरूप के इस तथ्य की ओर भी मनन करने के लिये संकेत करता है[1]।

ठीक इसी प्रकार से पत्थर से बनाई गई बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई की यह गणेश प्रतिमा मूषक को अपनी सवारी बनाये हुये है। वे एक दाएं हाथ में माला और दूसरे हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये है। वाम तरफ तीसरे हाथ में परशु और चौथे में कमण्डल लिये हुये हैं। उनके सिर पर छोटा सा मुकुट है और उन्हें मोती की माला धारण किये हुये दर्शाया गया है। मूषक पर बैठे हुये गणेश दाहिने ओर मुख घुमाये हुये हैं और सूंड़ द्वारा मोदक को मुख से ग्रहण करते हुये दिखलाया है। मुख को दाएं तरफ मोड़कर मोदक सूंड़ द्वारा खाने से उनका एक नेत्र ही दिखलाया गया है। आठवी–नवीं शताब्दी की एक गणपति मूर्ति पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें भी क़िरीट मुकट धारी गणेश जी का सिर दाहिनीं ओर मुड़ा हुआ है लेकिन इसमें उनकी शुण्ड बायीं ओर मुड़कर बायें हाथ में रखे मोदक को स्पर्श कर रही है। इस मूर्ति के हाथों के लक्षणों में वे परशु, उदरस्थ, सर्प पुस्तक और मोदक लिये हुये हैं जो बुन्देलखण्ड संग्रहालय की मूर्ति के दो लक्षणों के ही समान है। इसमें उनका वाहन भी प्रदर्शित है लेकिन वाह्यरूप न होकर पादपीठ पर दिखलाया गया है[2]। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई की मूर्ति 16 वीं शताब्दी की है और कालपी से प्राप्त हुई है। वर्तमान समय में यह बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में सुरक्षित है। इसका आकार 44 x 31 से.मी. है[3]। खुजराहो में उपलब्ध अन्य देव–वाहनों जैसे नन्दी, गरुड़ आदि की स्वतन्त्र मूर्तियों के समान वहाँ गणेश के वाहन मूषक की भी एक स्वतन्त्र मूर्ति मिली है। इसमें वह एक मोदक–पात्र के ऊपर अपने आगे की दो पैर और मुख रखकर मोदक खाने को उद्यत–सा प्रदर्शित है[4]।

द्विभुजी गणेश मूर्तियाँ–

उरई में द्विभुजी गणेश की सात मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में सुरक्षित हैं। इनमें चार नृत्य मुद्रा में हैं व तीन अन्य स्वरूपों में हैं। पहली मूर्ति जो 9 वीं शताब्दी की है इसकी मुख्य विशेषता यह है कि वह स्वाभाविक मुद्रा में दाहिने हाथ से मोदक ग्रहण करते

1. श्रीवास्तव, श्रीसामचैतन्यजी 'कल्याण' गणेश अंक पृ0 191–192
2. शोध प्रबन्ध 'गणेश पुराण–एक अध्ययन'पृ0 286
3. पुरवार हरीमोहन – जनपद– जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप पृ0 16
4. खजुराहो संग्रहालय, प्रतिमा संख्या –1002

हुये दर्शाया गया है जबकि गणेश को अधिकांशतः मोदक सूंड़ द्वारा ग्रहण करते हुये दर्शाया गया है जबकि गणेश की इस मूर्ति में उन्हें हाथ द्वारा मोदक खाते हुए दिखलाया गया है। खजुराहो में चतुर्भुजी मूर्ति अवश्य प्राप्त हुयी है जिसमें वह अपने दाहिने तरफ के दूसरे हाथ से मोदक मुख में रखते हुए प्रदर्शित हैं[1]। उरई वाली मूर्ति में गणेश शास्त्रानुसार अपना बायां हाथ पेट पर रखे हुये हैं जो कि लम्बोदर प्रदर्शित है। इस मूर्ति में उनका एक कान खण्डित है अतः यह प्रतिमा अत्यन्त प्राचीन प्रतीत होती है। यह मूर्ति माधौगढ़ से प्राप्त हुई है और पत्थर से निर्मित है। इसका आकार 29 x 18 से.मी. है।

द्विभुजी गणेश की एक मूर्ति तांत्रिक गणेश के रूप में प्राप्त हुई है और दूसरी एक मूर्ति में वह धावक मुद्रा में है[2]। तांत्रिक गणेश की मूर्ति कालपी से प्राप्त हुई है और 19 वीं शताब्दी की है। इसका आकार 5 x 3.2 से.मी. है और यह भूरा गौरा पत्थर से निर्मित है। तन्त्र साहित्य में गणपति का जो रूप वर्णित है उसके अनुसार यह मूर्ति कुछ भिन्न है। शारदातिलक में तन्त्र गणेश का रक्तवर्ण त्रिनेत्र विशाल उदर युक्त स्वरूप बताता है। उनके हाथों में क्रमशः दन्त, पाश, अंकुश और मोदक हो और लाल रंग का वस्त्र और सर्प का आभूषण धारण किये हों[3]। उरई वाली मूर्ति में वह लम्बोदर और रक्तवर्ण तो हैं लेकिन इसमें उनके हाथों के लक्षणों का अभाव है। दूसरी मूर्ति जो धावक मुद्रा में है उरई से ही प्राप्त है इसका आकार 13 x 5.5 से.मी. है। यह पीतल धातु से निर्मित है। ये दोनों मूर्तियां बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई के निर्देशक हरीमोहन पुरवार के निजी स्वामित्व में हैं। इस तरह की मूर्ति बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में तो नहीं दिखलाई दीं लेकिन 'प्राणिक हीलिंग' विभाग विवेकानन्द पालीक्लीनिक लखनऊ में कार्यरत डा0 चन्द्रा सुब्रमण्यम के निजी संकलन में तांत्रिक गणेश और धावक गणेश की मूर्ति अवश्य प्राप्त हुई है[4]।

नृत्य गणेश की प्रतिमा जो शास्त्रानुसार अष्टभुजी बननी चाहिए, बुन्देलखण्ड संग्रहालय में द्विभुजी मिली है। इनमें पहली मूर्ति 16 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 23.5 x 12.5 से. मी. है। यह प्रतिमा ओरछा से प्राप्त हुई है। यह पत्थर की बनी हुई प्रतिमा है। यह वर्तमान समय में बुन्देलखण्ड संग्रहालय में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में गणेश अपने दाएं हाथ में फरसा और बाएं हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये हैं। उनकी सूंड़ बायीं ओर मुड़कर घुमावदार हो गयी है। दूसरी

---

1. अवस्थी, खजुराहों की देव प्रतिमायें पृ0 –39
2. भीतरगांव के एक अंकन में गणपति अपने हाथ में मोदक–पात्र को लेकर धावक मुद्रा में अंकित हैं'
   शान्तिलाल नागर, 'कल्ट ऑफ विनायक' पृ0 107
3. शारदातिलक, संस्कृत सीरीज तथा तांत्रिक टेक्स्ट' 13, 35 से 107 तक
4. हिन्दुस्तान – 5.9.2005

द्विभुजी नृत्यप्रतिमा 12 वीं शताब्दी की है। यह भी पत्थर से निर्मित है। इस मूर्ति का आकार उपर्युक्त मूर्ति के समान है। इसमें उनके दोनों हाथ नृत्य मुद्रा में हैं। तीसरी द्विभुजी नृत्य प्रतिमा उपर्युक्त दोनों मूर्तियों से अधिक प्राचीन है। गणेश की यह प्रतिमा बालू पत्थर से बनी हुई है और 6 वीं शताब्दी की है। इसमें वह अपने एकदन्त, शूर्पकर्ण और लम्बोदर रूप में रूपायित हैं और उनकी सूंड़ बायीं ओर मुड़ी हुई है। यह प्रतिमा त्रिभंग मुद्रा में है। इसका आकार 11 x 7.5 से.मी. है। यह प्रतिमा अकबुर इटौरा से प्राप्त हुई है और इस समय बुन्देलखण्ड संग्रहालय में सुरक्षित है। छठीं शताब्दी की द्विभुजी गणपति मूर्ति देवगढ़ से भी प्राप्त हुई है परन्तु इस मूर्ति में श्रीगणेश सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य करते प्रदर्शित हैं। यहाँ की नृत्य गणपति मूर्तियों की नृत्य मुद्राओं में देव की भुजाओं और लांछनों में विविधता है[1]।

दो भुजी नृत्य गणपति की एक प्रतिमा खजुराहो संग्रहालय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है, यह मूर्ति भी सप्त–मातृकाओं तथा वीरभद्र के साथ प्रदर्शित है। स्वतंत्र रूप से कोई मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। खजुराहों की यह मूर्ति लक्ष्मण मन्दिर से प्राप्त हुई है। इसी मन्दिर के उत्तर–पश्चिम में बने गौण मन्दिर के द्वार–उत्तरंग पर यह मूर्ति स्थापित है। इस मूर्ति के हाथों के लक्षण बुन्देलखण्ड संग्रहालय की मूर्ति से भिन्न है। इसमें उनका दायां हाथ दन्त–युक्त और बायाँ हाथ कट्यवलम्बित है।

इसके अतिरिक्त ललितपुर जनपद के पटौरा–कला और सिरसी से भी गणेश की द्विभुजी मूर्ति मिली है। नृत्यत् द्विभुजी मूर्ति का अभाव है। पटौरा गाँव के बाहर स्थित तालाब के सन्निकट बने एक हनुमान मन्दिर में आधुनिक हनुमान की प्रतिमा के पार्श्व में गजवदन गणेश की एक द्विभुजी आधुनिक प्रतिमा प्रतिष्ठित है। सिरसी गाँव के मध्य में एक गढ़ी के मन्दिर के उत्तरी प्रवेश–द्वार के दोनो पार्श्वों में बने आलों में कार्तिकेय और गणेश की लघु–प्रतिमाएँ स्थापित हैं। अन्य क्षेत्रों से भी गणेश की द्विभुजी मूर्तियाँ मिली हैं। महाराष्ट्र प्रान्त के अस्मानाबाद जिले के घेर नामक स्थल के उत्खनन से द्वितीय शताब्दी की एक मिट्टी की मूर्ति प्राप्त हुयी है जो आसनस्थ मुद्रा में है तथा द्विभुजी है। इसके हाथी जैसे कान हैं और सूंड़ बायीं ओर मुड़ी हुयी है। एक अन्य मिट्टी की मूर्ति आन्ध्रप्रदेश के कुर्नूल जिले के वीरपुरम उत्खनन क्षेत्र से प्राप्त हुयी है। तृतीय शताब्दी की यह मिट्टी की मूर्ति गजमुखी है। यद्यपि इसका कुछ भाग खण्डित हो चुका है फिर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रतिमा बैठी मुद्रा में होगी। इसमें सूंड़ ऊपर उठी हुयी व बायीं ओर मुड़ी हुयी नाग यज्ञोपवीत धारण किये हुये है। लम्बोदर यक्ष के सदृश शारीरिक

1. बुन्देलखण्ड का पुरातत्व पृ0 50

संरचना वाली निश्चयतः यह गणेश जी की आकृति है।

संकिसा से भी खड़े त्रिभुजी गणेश जी की तीन प्राचीनतम मूर्तियां[1] प्राप्त हुयी हैं, जो मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित हैं। संकिसा से मिले गणेश जी त्रिभुज, बायें हाथ में मोदक पात्र, जिस पर गणेश की सूंड़ घूमी हुयी है। अन्य दो प्रतिमायें त्रिभुज, लम्बोदर सर्प यज्ञोपवीत धारण किये हुये तथा मोदक पात्र को स्पर्श करती शूण्ड वाली हैं।

चतुर्भुजी गणेश मूर्ति–

बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में चतुर्भुजी गणेश की दो प्राचीन आसनस्थ मूर्तियां प्राप्त हुयी हैं। यहां की पहली चतुर्भुजी मूर्ति जो हुलकी माता मन्दिर से प्राप्त हुयी है। 11 वीं शताब्दी की है। इसमें श्री गणेश पद्मासन में बैठे हुये हैं। इसमें देवता अपने दायें हाथ में मोदक ग्रहण किये हुये हैं और उनकी सूंड़ भी दायीं ओर मुड़कर इसी मोदक को ग्रहण करती हुयी दिखलाई गई है। दूसरे हाथ में फरसा, और बायीं तरफ तीसरे हाथ में गदा तथा चौथे हाथ में शंख धारण किये हुये हैं। इस प्रतिमा में उनके साथ मूषक को भी चित्रित किया गया है। गणेश की यह प्रतिमा बालू पत्थर से निर्मित है। यह प्रतिमा 15 x 10 से.मी. की है। दूसरी मूर्ति कोंच से प्राप्त हुई है जो 12 वीं शताब्दी की है इसमें श्रीगणेश बैठे हुये हैं। इस मूर्ति में गणेश का एक पैर खण्डित है। यह प्रतिमा अलंकरणयुक्त है और इसका आकार 10 x 7 से.मी. है इसमें देवता की सूंड़ बायीं ओर मुड़ी है और खण्डित है।

गुप्तकाल में श्रीगणेश का चतुर्भुजी रूप अधिक लोकप्रिय हो गया था। गुप्तकाल की गणेश प्रतिमाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इस समय की मूर्तियां प्रस्तर या मिट्टी के माध्यम से बनायी गयी हैं। इन मूर्तियों में गणेश का मस्तिष्क प्राकृतिक हाथी का है, उसे मुकुट या अन्य अलंकार नहीं पहनाये गये हैं। इस काल की सभी मूर्तियों में उनकी शुण्ड बायीं ओर ही मुड़ी हुई है और उसी ओर के हाथ में मोदक पात्र है[2]। बुन्देलखण्ड संग्रहालय की उपर्युक्त मूर्तियां जो चन्देल समय की हैं, गुप्तकालीन कला शैली से अछूती नहीं रही हैं। जबकि हुलकी माता मन्दिर से प्राप्त मूर्ति में उनकी शुण्ड बायीं ओर न मुड़कर दायीं ओर मुड़ी हुई है। दूसरी मूर्ति में इस नियम का पालन हुआ है। गुप्तकाल में उनके हाथों के लक्षणों में मोदक पात्र के अतिरिक्त दूसरी वस्तुओं का अनिवार्य स्थान नहीं बन पाया था। इसी कारण उपर्युक्त मूर्ति में उनकी इस

1. शोध प्रबन्ध – 'गणेश पुराण–एक अध्ययन' पृ0 282
   प्रति0 संख्या – 758,792,964
2. नगर शान्तिलाल 'कल्ट ऑफ विनायक' पृ0 107

विशेषता का पूर्ण पालन हुआ है। बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में भी यही विशिष्टता देखने को मिली है। देवगढ़ से प्राप्त मूर्ति में मोदक पात्र के अतिरिक्त परशु, दन्त और सम्भवतः मूली अंकित है[1]।

राजकीय संग्रहालय, झांसी[2] में संग्रहीत एक चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्ति में वह बायें तरफ के पहले हाथ में मोदक पात्र ग्रहण किये हुये हैं शेष तीनों हाथ खण्डित हैं इसमें भी उनकी शुण्ड सीधी जाकर बायीं ओर मुड़ी हुयी है और मोदक–पात्र पर प्रदर्शित है। इस मूर्ति में गणेश कंगन, बाजूबंध और हार आदि आभूषणों से अलंकृत है और सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हुये हैं। कोंच से प्राप्त मूर्ति की तरह इसका भी दाहिना पैर खण्डित है। राजलीलासन मुद्रा में श्रीगणेश ऊँचे आसन पर बैठे हुये हैं। यह मूर्ति ललितपुर जनपद के सीरोन खुर्द से प्राप्त हुयी है। इसका आकार 90 x 76 से.मी. है और यह मूर्ति हुलकी माता मन्दिर की मूर्ति के समान बालू पत्थर से निर्मित है। 10 वीं शताब्दी की यह मूर्ति अलंकृत होने के कारण चन्देलकालीन प्रतीत होती है। चन्देलकालीन चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्तियां सर्वाधिक खजुराहों में प्राप्त हुयी हैं। अधिकांश सभी मूर्तियों में वे मोदक पात्र पहले या चौथे हाथ में लिये हुये हैं अन्य हाथों के लक्षण का विवरण आगे दिया गया है। इन मूर्तियों में भी उनकी शुण्ड बायीं ओर मुड़कर मोदक पात्र पर प्रदर्शित है।

चांदपुर और दुधई से भी श्रीगणेश की चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो रानी महल संग्रहालय, झांसी में सुरक्षित हैं। चांदपुर वाली ऐसी चार मूर्तियाँ है[3] जो मोदक–पात्र के जगह केवल मोदक ग्रहण किये हुये है। श्रीगणेश मोदक को बायीं तरफ़ के पहले हाथ में लिये हुये है। अन्य लक्षणों में क्रमशः अक्षमाला, परशु, कमल–नाल और पूर्ण विकसित कमल है। एक मूर्ति में वे अपने बायें तरफ के दूसरे हाथ में अंकुश धारण किये हुये है। ये मूर्तियां विविध प्रकार के अलंकरणो और मुकुट आदि से अलंकृत हैं और सर्प का यज्ञोपवीत भी धारण किये हुये हैं। वाहन मूषक भी सुशेभित है। इन सभी मूर्तियों में वे ललितासन में बैठे हुये हैं। दुधई[4] वाली मूर्ति में वह सुखासन में है। इसमें भी वह मोदक बायीं तरफ के पहले हाथ में लिये हुये हैं। अन्य हाथों में क्रमशः त्रिशूल, अस्पष्ट आयुध और अंकुश है। यह भी अलंकरण प्रधान है।

ललितपुर–जनपद के दैलवारा, पनारी, मसौरा खुर्द, मुहारा, साकरवार, और सिरसी में भी गणेश की चतुर्भुजी आसनस्थ गणेश मूर्तियाँ देखने को मिली हैं। दैलवारा गाँव के दक्षिण दिशा में एक ध्वस्त गढ़ी पर एक आधुनिक मन्दिर निर्मित है। इसी मन्दिर के भीतर 12 वीं शताब्दी ई0

---

1. जोशी नीलकण्ड 'प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान ' पृ0 170
2. Sculptares in the Jhansi Museum, p.- 58
3. प्रतिमा संख्या 12,3,5,11 'चंदेलकीन कला और संस्कृति – पृ0 51
4. प्रतिमा संख्या – 476 'चंदेलकीन कला और संस्कृति

की चतुर्भुजी गणपति प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति का आकार 0.52 x 40 से.मी. है। इसमें श्रीगणेश अपने दाहिने तरफ के दूसरे हाथ में मोदक–पात्र ग्रहण किये हुये है। इस मूर्ति में उनके मोदक–पात्र की स्थिति झांसी, खुजराहों और चांदपुर, दुधई की मूर्ति से भिन्न है लेकिन बुन्देलखण्ड संग्रहालय की हुलकी माता मन्दिर से प्राप्त मूर्ति से साम्य रखती है। दैलवारा वाली मूर्ति के अन्य लक्षणों में स्वदन्त व अन्य दो हाथों में प्रदर्शित आयुध प्रतिमा के क्षतिग्रस्त होने के कारण अस्पष्ट हैं। पनारी वाली मूर्ति आधुनिक हनुमान मन्दिर के प्रवेशद्वार के पार्श्व में रखी है यह चतुर्भुजी गणेश प्रतिमा 12 वी शताब्दी ई0 की है। गजानन गणपति अपने चारों हाथों में स्वदन्त, परशु, सर्प एवं मोदकपात्र धारण किये हुये लम्बोदर स्वरूप में रूपायित किये गये हैं। इस मूर्ति के आयुधों की स्थिति खजुराहो की मुतियों से अधिक मिलती जुलती है।

मसौरा–खुर्द गाँव में स्थित विशाल बरगद के नीचे चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा रखी हुई है इस प्रतिमा का आकार 1.25 मी0 X 50 मी0 है। इस मूर्ति के हाथों के लक्षण पनारी वाली मूर्ति के सदृश है। अन्तर बस इतना है कि वह इस मूर्ति में पहने हाथ में परशु और दूसरे में स्वदन्त लिये हुये हैं। वे मुकुट, ग्रैवेयक, कंकण, नूपुर अधोवस्त्र से सुसज्जित हैं।

मुहारा गाँव में स्थित देवस्थान पर हनुमान की एक आधुनिक प्रतिमा स्थपित है। इसके पार्श्व में मध्यकालीन प्रतिमाओं के भग्नांशो के मध्य में स्थित गणेश की लगभग 12 वीं शताब्दी ई0 की दो प्रतिमाएँ उल्लेखनीय है। इनमें से एक मूर्ति तो खण्डित है, पर दूसरी मूर्ति जो कि रथिका–बिम्ब में निरूपित है, इसमें चतुर्भुजी गणेश मूर्ति ललितासन में बैठी हुयी दर्शायी गई हैं। हाथों के लक्षणों में क्रमशः वरद मुद्रा, मोदक पात्र, परशु और सर्प धारण किये हुये रूपायित है। इस मूर्ति के लक्षण भी खजुराहों के सदृश है।

साकरवार में चतुर्भुजी गणेश मूर्ति दुर्गा देवी के मन्दिर में स्थापित है। इसमें श्रीगणेश ललितासन में बैठे हुये हैं। यह लगभग 12 वीं शताब्दी ई0 की मूर्ति है। इसमें लम्बोदर, सूर्पकर्ण एवं गजवदन विनायक मुकुट, कण्ठहार, उदरबन्ध और सर्प–यज्ञोपवीत से सज्जित हैं। उनका निचला दायाँ हाथ अभयमुद्रा में तथा ऊपरी दाहिना हाथ परशुयुक्त दर्शाया गया है। अपने बायें हाथों में वे क्रमशः सर्प तथा मोदक–पात्र धारण किये हुए निरूपित हैं। अलंकृत होने के कारण यह मूर्ति चन्देलकालीन होने के साथ चन्देल शैली में निर्मित है, क्योंकि गुप्तकाल की मूर्तियां अलंकृत नहीं रहती थी और प्रतिहारों ने गुप्तो के वंशज होने के कारण उसी शैली का अनुकरण किया।

सिरसी गाँव के मध्य में लगभग 5 एकड़ क्षेत्रफल मे चहारदीवारी से घिरी हुई गढ़ी है। इसी गढ़ी के मुख्य प्रवेश द्वारा में द्विभुजसूर्य की स्थापना प्रतिमा स्थित है। इसी मूर्ति के पार्श्व में

चतुर्भुजी गणेश ललितासन में विराजमान है। यह मूर्ति भी लगभग 12वीं शताब्दी की है। इसका आकार 0,88मी0X45मी0है। इस मूर्ति में वह सूर्पकर्ण, एकदन्त, लम्बोदर तथा गजानन स्वरूप में अपने लक्षणों के अनुरूप ही रूपायित है। इस मूर्ति के हाथों के लक्षणों में कुछ भिन्न विशेषतायें पायी जाती है। वे अपने दायें तरफ के दोनों ही हाथों में परशु पकड़े हुए है और बायां निचला हाथ मोदक–पात्र युक्त और ऊपरी बायें हाथ में स्वदन्त लिये हुऐ दर्शाये गये हैं।

पंचमातृकाओं सहित श्री गणेश प्रतिमाः–

उरई के बड़ी माता मन्दिर में पंच मातृकाओं सहित श्रीगणेश प्रदर्शित हैं। मन्दिर के गर्भगृह के द्वार पर वाम पार्श्व में पंच मातृकाओं सहित श्री गणेश स्थापित है। यह लाल पत्थर द्वारा निर्मित है। इसका समय लगभग दशवीं शताब्दी का है। खजुराहों, देवगढ़ और राजकीय संग्रहालय, झांसी में भी मातृकाओं सहित गणेश प्रतिमाएं मिली हैं। ये अधिकांशतः सप्त–मातृकाओं एवं वीरभद्र और नवग्रहों के साथ प्रदर्शित हैं। रथिकाओं में स्थित ये प्रतिमायें मन्दिरों के प्रवेश द्वार, गर्भगृह द्वार और द्वार उत्तरंगों में उत्कीर्ण है। मूर्तिकला में श्रीगणेश को शिव के अनुचरों के रूप में, नवग्रह के बाद सप्तमातृकाओं के साथ दर्शाया जाना इस बात की पुष्टि करता है कि प्रारंभ में गणेश को मंदिर मूर्तिकला में उच्च स्थान नहीं प्राप्त था । गणेश की मूर्ति के गर्भगृह में स्थापित होने तक का पूरा विकास– क्रम मंदिरों के स्थापत्य में दिखायी देता है। प्रारंभ में गणेश मंदिरों के मुख्य द्वार पर, मण्डप, महामण्डप ,अर्द्धमण्डप, रथिका पर तत्पश्चात् मंदिरों के सहस्तम्भों में पार्षद देवों के साथ दर्शायें गये। बाद में गणेश मुख्य गर्भग्रह पार्षद देवताओं के साथ मंदिर में स्थापित हुयें। यह उनके विकास– क्रम का दूसरा चरण था, जिसका काल 5वीं–10वीं शताब्दी तक माना गया है[1] । यही विकास–क्रम जनपद– जालौन के उरई क्षेत्र, खजुराहों व अन्य स्थानों के मन्दिरों में स्थित मातृकाओं सहित गणेश की मूर्तियों में दिखलाई देता है। उरई में गणेश पंचमातृकाओं सहित परिलक्षित हुये हैं। जबकि अन्य स्थानों में वे सप्तमातृकाओं सहित दिखलाये गये हैं। वाराह पुराण में इन देवियों की उत्पत्ति की कथा वर्णित है जिसके अनुसार अन्धकासुर नामक दैत्य के संहार हेतु सात देवियों माहेश्वरी, वैष्णवी, ब्राह्मी, कौमारी, ऐन्द्राणी, दण्डधारिणी और वाराही ने रूद्र, विष्णु, इन्द्र आदि देवों के तेज से शरीर धारण किया था[2]। तन्त्र साहित्य शारदातिलक में इन्हीं मातृकाओं के सोलह नामों का उल्लेख है– व्यापिनी, तापिनी, पाविनी, क्लेदिनी, धारिणी, मालिनी, हंसिनी, शंखिनी तथा ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और

---

1. शोध प्रबन्ध – 'गणेश पुराण–एक अध्ययन'
2. शक्ति स्वरूपा दुर्गा भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि देवों के तेज से प्रकट हुई थीं। देखिए – श्री दुर्गासप्तशती, द्वितीय अध्याय, श्लोक 1–13 (श्री मार्कण्डेयपुराण, सावर्णिक मन्वन्तर देवी महात्म्य)

महालक्ष्मी आदि। अतः स्पष्ट है कि उनके पंच नाम भी अवश्य निर्दिष्ट होगें।

कोंच में गणपतिः—

कोंच क्षेत्र में गणपति की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध है। वहाँ के मन्दिरों में गणेश के भिन्न–भिन्न रूपों की प्रतिमाओं के प्राप्त होने से यह पता चलता है कि वहाँ गणेश के विविध रूपों की पूजा होती थी। वैसे तो वहाँ पर नृत्य–मूर्तियों का प्रायः अभाव ही रहा है, किन्तु गढ़ी के गणेश मन्दिर की अष्टभुजी नृत्य मूर्ति जो कि मराठाकालीन है, बहुत ही अनूठी प्रतिमा है। इसके अतिरिक्त वहाँ पर गणेश की आसन मूर्तियाँ अधिक प्राप्त हुई हैं। स्थानक मूर्तियों का प्रायः अभाव ही रहा है। यहाँ की मूर्तियाँ संगमरमर पत्थर, बालू, पत्थर, पीतल तथा मिट्टी की विभिन्न प्रकार की मूर्ति स्वरूपों में मिलती है। इन सभी प्रकार की मूर्तियों के लक्षण लांछनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं।

चतुर्भुजी मूर्तियां—

कोंच के महाकालेश्वर मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की दो मूर्तियां द्रष्टव्य हैं। यह मन्दिर ऊँची जगती पर स्थित है। मुख्य मन्दिर जगतीपीठ से 1½ गहरा है। इसी के भीतरी भाग में दाहिनीं तरफ शान्त मुद्रा में पद्मासीन गणेश पूर्व की ओर मुख किये हुये बैठे हुए हैं। चतुर्भुजी श्री विघ्नविनाशक गणेश के बाएं हाथ में परशु व दूसरे में मोदक है। दाहिने हाथ में बरछी और जपमाला लिये हुये हैं। गणेश की प्रतिमा के बांयी ओर किनारे पर दुर्गा की प्रतिमा विद्यमान है। गर्भगृह के बीचोबीच शिवलिंग स्थापित है। गणेश की यह मूर्ति बालू पत्थर से निर्मित है और इसका आकार 78 x 5.1 से.मी. है। यह प्रतिमा लगभग 16वीं 17वीं शताब्दी की है।

दूसरी मूर्ति मुख्य मन्दिर से बाहर निकलते ही प्रवेश द्वार पर दाहिनी ओर एक आले में स्थित है। पत्थर से निर्मित इस गणेश प्रतिमा की लम्बाई 41 इंच और चौडाई 32 इंच है। श्री गणपति अपने दाहिने हाथ में परशु और मोदक लिये हुये हैं तथा बायीं तरफ एक हाथ में शंख व दूसरे जंघे पर रखे हुये हैं। इस प्रतिमा में श्रीगणेश पद्मासन मुद्रा में बैठे हुये हैं। उनकी सूंड दाहिने तरफ नीचे की ओर घुमावदार प्रदर्शित है। खजुराहों में ऐसी नौ मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। इन सब में गणेश लीलासन में बैठे प्रदर्शित है। उनके चारों हाथों का चित्रण किसी एक शास्त्र के विवरण के अनुसार नही हुआ है, किन्तु सामान्यतः उनमें शास्त्र–निर्दिष्ट लांछन ही हैं, जैसे दंत, कमल, परशु, मोदक अथवा मोदक पात्र। कभी–कभी एक हाथ अभय मुद्रा में चित्रित भी मिलता है।

रामाश्रय अवस्थी के अनुसार खजुराहों की इन मूर्तियों के चारो हाथों के लक्षण एवं

लांछन इस प्रकार है[1]–

प्र0सं0	पहलाहाथ	दूसरा हाथ	तीसरा हाथ	चौथा हाथ
9	परशु	कमल	खण्डित	एक बड़ा मोदक
25	कमल	खण्डित	खण्डित	खण्डित
26	अभय मुद्रा	दन्त	कमल	मोदक–पात्र
27	दन्त	परशु	कमल	मोदक–पात्र
31	अभय मुद्रा	परशु	स्पष्ट नहीं	मोदक–पात्र
32	एक मोदक	दन्त	कमल	खण्डित
35	अभय मुद्रा कमल	परशु	एक	मोदक
36	खण्डित दन्त	कमल	मोदक–पात्र	
37	खण्डित दन्त	कमल	बड़ा फल अथवा मोदक	

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि लगभग सब प्रतिमाओं के चौथे हाथ में एक मोदक अथवा मोदक–पात्र है, किन्तु एक प्रतिमा में चौथे के स्थान पर पहले हाथ में मोदक देखा जा सकता है। महाकालेश्वर मन्दिर के चतुर्भुजी गणेश के हाथों के चित्रण में प्रायः इन्हीं नियमों का पालन हुआ है, जिन नियमों का पालन खजुराहों की गणेश मूर्तियों में देखने को मिलता है। गुप्तकाल की चतुर्भुजी मूर्तियों का जो मुख्य एक लक्षण मोदक–पात्र था वह कोंच की चतुर्भुजी मूर्तियों में नही दर्शाया गया है। मोदक–पात्र की जगह वे केवल मोदक लिये हुये है।

एक अन्य चतुर्भुजी मूर्ति 200 वर्ष पुराने भूतेश्वर मन्दिर में विराजमान है। यह मन्दिर कोंच नगरी के प्रसिद्ध स्थान चन्दकुआं के निकट स्थित है। इस मन्दिर के गर्भगृह में श्रीगणेश पद्मासन मुद्रा में उत्तर दिशा की ओर मुख किये हुये बैठे हैं। श्रीगणेश की प्रतिमा के दोनो तरफ अन्य देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित हैं और गर्भगृह के बीचोबीच शिवलिंग स्थापित है। श्री गणेश की प्रतिमा की लम्बाई 46 इंच और चौड़ाई 42 इंच है। इस मूर्ति में भी श्रीगणेश अपने बाएं तरफ पहले हाथ में परशु और दूसरे हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये हैं। दाहिने तरफ तीसरे हाथ में कमल और चौथे हाथ से आशीष देते हुये प्रदर्शित हैं। इसमें श्रीगणेश की सूंड सीधी प्रदर्शित है और उसमें नीचे की ओर एक मोड़ है। इस प्रकार इस प्रतिमा में सूंड द्वारा मोदक स्पर्श करने का आभाव है। खुजराहों की एक चतुर्भुजी मूर्ति के लक्षण भूतेश्वर मन्दिर की मूर्ति से मिलते जुलते हैं अन्तर केवल इतना है कि खजुराहो की स्थानक है जबकि ये मूर्ति आसनस्थ है। इस मूर्ति के गणेश द्विभंग में खड़े हैं इसमें भी कमल, परशु और मोदक उनके हाथों के लक्षण है अन्य एक हाथ

1. खजुराहें की देव प्रतिमायें पृ0 40

खण्डित है। इस मूर्ति में भी श्रीगणेश की शुण्ड भी सीधी लटकी है और उसमें नीचे एक मोड़ है। इस प्रकार बायीं ओर मुडकर मोदक को स्पर्श करने की मुद्रा का यहाँ भी अभाव है। दायीं ओर का प्रदर्शित एक दाँत अब टूट गया है[1]। जबकि खुजराहों की एक अन्य स्थानक मूर्ति में गणेश की शुण्ड बायीं ओर मुड़कर लड्डू के ऊपर है। उनके दायीं ओर का एक दाँत भी सुरक्षित है[2]।

इसके अतिरिक्त खजुराहों में जितनी भी गणेश की आसनस्थ चतुर्भुजी मूर्ति प्राप्त हुई हैं उनमें वे अधिकांशतः मोदक–पात्र लिये हुयें है कुछ ही मूर्तियों में मोदक है।

संगमरमर द्वारा निर्मित चतुर्भुजी गणेश की एक प्रतिमा कोंच के बड़ी माता मन्दिर में विद्यमान है। मंदिर के प्रवेश द्वार के बांयी तरफ एक कक्ष बना हुआ है जिसमें श्री गणेश की आसनस्थ चतुर्भुजी विशाल प्रतिमा प्रदर्शित है। इस मूर्ति की मुख्य विशेषता यह है कि यह कमल पर विराजमान है और उनके पैरो के समीप चूहा लड्डू लिये हुये प्रदर्शित है। शिवपुराण में श्रीगणेश के लालवर्ण और कमल पर आसीन स्वरूप का उल्लेख मिलता है। उनका शरीर विशाल, आभूषणों से सुसज्जित, चतुर्भुज है। उन्होंने हाथों में पाश, अंकुश, दन्त और मोदक धारण कर रखा है[3]। बड़ी माता मन्दिर वाली मूर्ति में श्रीगणेश अपने दाहिने तरफ एक हाथ में परशु और दूसरे हाथ में मोंतियों की लड़ी वाली माला ग्रहण किये हुये हैं। बायीं तरफ तीसरे हाथ में गदा और चौथे में मोदक ग्रहण हुये हैं। इस मूर्ति के लक्षणों में शास्त्रानुसार वर्णित पाश और अंकुश नही है। दुधई और चांदपुर वाली चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्तियों में अंकुश उनके हाथों का एक लक्षण है लेकिन पाश का यहां भी अभाव है। ललितपुर–जनपद के अर्न्तगत आने वाले क्षेत्रों की मूर्तियों में भी वह अंकुश धारण किये हुये हैं।

बड़ी माता मन्दिर में ही गणेश की एक अन्य प्रतिमा पद्मासन मुद्रा में प्रदर्शित है। गणेश की यह प्रतिमा उसी कक्ष में विद्यमान है जहाँ संगमरमर की बनी हुई चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा स्थापित है। पद्मासीन गणेश की यह प्रतिमा कमलासीन गणेश की प्रतिमा के वाम तरफ एक छोटे से आले में स्थापित है। यह प्रतिमा पत्थर की बनी हुई है। इस प्रतिमा में श्री गणेश अपने दाहिने तरफ पहले हाथ में परशु और दूसरे हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये हैं और वाई तरफ के तीसरे हाथ में कमल की बौड़ी और चौथा हाथ पैर पर रखे हुए है। इस प्रतिमा की लम्बाई 44 इंच और चौड़ाई 30 इंच है। वे शूर्पकर्ण, लम्बोदर और एकदन्त है। खजुराहों, चांदपुर, दुधई, झांसी, और ललितपुर क्षेत्र की आसनस्थ मूर्तियां कोंच की मूर्तियों की तुलना में अलंकृत पायी गई हैं जो सभी

---

1. खजुराहों की देव प्रतिमाएं पृ0 39 खजुराहों संग्रहालय में प्राप्त, प्रतिमा संख्या 1120
2. वही, लक्ष्मण मन्दिर से प्राप्त
3. शिव पुराण, कैलाश संहिता, अध्याय श्लोक 14 से 16

चंदेलकालीन हैं कोंच की मूर्तियों में अलंकरण का अभाव इस ओर इंगित करता है कि यहां की चतुर्भुजी मूर्तियों पर गुप्तकाल का प्रभाव था।

अष्टभुजी नृत्य गणेशः–

कोंच की गढ़ी पर श्रीगणेश का लद्यु मन्दिर स्थापित है इस मन्दिर में नृत्य गणपति की अष्टभुजी सुन्दर लद्यु प्रतिमा विराजमान है। गणेश की यह नृत्य प्रतिमा मराठाकालीन है इसे मराठा शासक बाजीराव पेशवा ने 17 वीं शताब्दी में बनवाया था। यह प्रतिमा मिट्टी में दब गई थी जिसे वर्तमान समय में स्थानीय लोगों द्वारा खुदाई करके निकाला गया। इस प्रतिमा का आकार 50x 35 से0 मी0 है। श्रीगणेश के दाहिने तरफ हाथ में परशु और वाम तरफ गदा धारण किये हुये दर्शाया गया है उनके शेष हाथ नृत्यमुद्रा में प्रदर्शित हैं और थिरकन में लालित्य हैं। नृत्य करते हुये श्री गणपति की शुण्ड बायीं ओर मुड़कर घुमावदार हो गई है। श्रीगणपति शूर्पकर्ण और एकदन्त हैं। वे फूलों से गुथी हुई माला ग्रहण किये हुये हैं। श्री गणेश देव के वाईं तरफ शंकर जी की पिण्डी और नादिया की प्रतिमा स्थापित है और दाहिनें तरफ माता पार्वती विराजमान है।

वस्तुतः चंदेल नरेशों ने 10 वीं शताब्दी में नृत्य गणेश की प्रतिमाओं का अधिक निर्माण कराया था और समूचे जालौन–जनपद में नृत्यमयं गणेश की इस तरह की अभी तक कोई प्रतिमा सामने नहीं आई है अतः कोंच गढ़ी पर प्रस्तर खंड पर उकेरी गई ऐतिहासिक अनूठी गणेश प्रतिमा को चंदेल–शासकों की देन बतलाया गया है। यह मूर्ति पूरी तरह चंदेलकालीन वास्तुशिल्प से मेल खाती है। कालिंजर दुर्ग के उत्खनन में प्राप्त गणेश प्रतिमा का शिल्पांकन प्रायः गढ़ी की गणेश प्रतिमा से मिलता है। किले में चल रही मरम्मत में खुदाई के दौरान पहुंच मार्ग के अंतिम बड़े दरवाजे के पास यह मूर्ति मिली है, जो तीन फुट ऊंची प्रतिमा दसवीं शताब्दी की चंदेलकालीन बताई जा रही है। इसे नृत्य गणेश के नाम से पुकारा जाता है। मान्यता है कि गणेश जब कभी अति आनंदित होते थे तो ऐसी ही मुद्रा में नृत्य करने लगते थे। पत्थर पर उकेरी गई यह मूर्ति अष्टभुजी है और इस मूर्ति द्वारा धारण किये गये आयुध कोंच गढ़ी की अष्टभुजी मूर्ति से पूर्णतया मिलते जुलते है। कोंच गढ़ी के समान यह मूर्ति भी सिर से पैर तक आभूषणों से अलंकृत है। अन्तर इतना है कि इसमें वह सर्प की माला गले में धारण किये हुये है जबकि कोंच की मूर्ति में वह फूलों से गुथी माला पहने हुये है। कालिंजर वाली मूर्ति के दो हाथ और एक पैर का पंजा खण्डित अवस्था में है लेकिन उनकी नृत्यरत मुद्रा पूर्णतया गढ़ी की मूर्ति के समान ही प्रदर्शित है। कालिंजर की इस मूर्ति को पुरातत्व विभाग ने फिलहाल राजा अमान सिंह के संग्रहालय में सुरक्षित करवा दिया है। यहां आ रहे पर्यटक और श्रद्दालु मूर्ति को विशेष दिलचस्पी से देखकर उसकी सुन्दरता

की सराहना कर रहे है[1]।

उपर्युक्त विवरणानुसार ही डा0 गुप्त कोंच गढ़ी की अष्टभुजी मूर्ति और चंदेलकालीन संस्कृति में अटूट सम्बन्ध बतलाते है। इसी के साथ वह इस मन्दिर का जीर्णोद्धार सन् 1952 ई0 में होना बताते है[2]। उनका यह भी कहना है कि गणेश जी की यह प्राचीन प्रतिमा अब तक उपलब्ध मूर्तियों में रचना की दृष्टि से विलक्षण और अद्वितीय है यदि इस ऐतिहासिक स्थल का सुंदरीकरण करा दिया जाए तो यह स्थल पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन सकता है।

नृत्य गणपति की अष्टभुजी मूर्तियाँ बुन्देलखण्ड के अन्य स्थानों में भी पाई गई है। खुजराहों में अष्टभुजी नृत्य गणेश की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध है जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है। यहां की अधिकांश मूर्तियों में श्रीगणपति की भुजायें खण्डित है। लेकिन वहाँ की एक अष्टभुजी नृत्य मूर्ति बड़ी ही सुन्दर है और इसमें कोंच गढ़ी की मूर्ति के ही समान उनके आठों हाथ सुरक्षित है। यह मूर्ति लक्ष्मण–मन्दिर में स्थापित है जो यहा के दक्षिण–पश्चिम गौण मन्दिर की दक्षिणी जंघा पर स्थित है[3]। इसमें शौर्य के साथ नृत्य करते गणेश की अतिभंग मुद्रा के चित्रण में शिल्पी को बड़ी सफलता मिली है। सामान्यतः यह अन्य नृत्य मूर्तियों के सदृश है, किन्तु इसमें देवता न तो सर्प–यज्ञोपवीत धारण किए है और न ही उनके साथ किसी पार्श्वचर का चित्रण हुआ है। ठीक इसी प्रकार कोंच की गढ़ी पर स्थापित नृत्य गणपति के साथ भी पार्श्वचर का चित्रण नही हुआ है और न ही वे सर्प–यज्ञोपवीत धारण किए हुये हैं। इसमें वह अपने परिवार के साथ चित्रित हैं। हाथों के चित्रण में भी भिन्नता पाई गई है। खजुराहो के नृत्य गणपति के पहले हाथ में कुठार है। दूसरा व्याख्यान मुद्रा में है और तीसरा गजहस्त मुद्रा में प्रदर्शित है। चौथे और पांचवे हाथो में वे नाग पकड़े है इसका मध्य भाग टूट गया है। छठवें में दन्त, सातवें में मोदकपात्र और आठवें में वे नीचे लटकता एक वस्त्र धारण किए है। वाहन मूषक इसी वस्त्र के माध्यम से ऊपर चढ़ने का प्रयास करता प्रदर्शित है। कोंच के अष्टभुजी नृत्य गणेश के साथ उनके वाहन मूषक का प्रदर्शन नहीं किया है।

ललितपुर–जनपद के अन्तर्गत स्थित सीरोन कला गाँव के पश्चिमी भाग में एक चबूतरे के अधोवर्ती भाग में रखी तीन प्रस्तर–फलकों पर विभिन्न मुद्राओं में नृत्य करते अष्टभुजी गणेश की प्रतिमाएँ उल्लेखनीय हैं। इनकी माप क्रमशः 0.50 मी0 X 0.32 मी0, 0.40 मी0 X 0.28 मी0, 0.

1. अमर उजाला, कालिंजर (बांदा) अप्रैल 2000
2. अमर उजाला, कानपुर 23 अगस्त 2001 मेरी वार्ता श्री जगदीश प्रसाद गुप्त वैद्य से।
3. खजुराहो की देव प्रतिमायें, पृ0 52

27 मी0 X 0.22 मी0 है। यहीं पर चन्द्रशाला की संरचना से युक्त रथिका बिम्ब में निरूपित एक अष्टभुज गणेश अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं जिनकी नृत्य मुद्रा में रूपांकित दो भुजाओं से अतिरिक्त एक भुजा स्वदन्तयुक्त है। अन्य भुजाएँ खण्डित है। नर्तन करते गणेश के पैरो की थिरकन उत्कृष्ट नृत्य शैली का उदाहरण प्रस्तुत करती है और कोंच गढ़ी की गणपति मूर्ति की थिरकन से मिलती–जुलती है। सीरोन कला की मूर्ति 12 वीं शताब्दी की है।

श्रीगणेश की नृत्य की विभिन्न मुद्राओं वाली अष्टभुजी मूर्ति चांदपुर–दुधई के चंदेलकालीन शिल्प में भी देखने को मिलती है। चांदपुर में इस तरह की दो[1] और दुधई से दो[2] मूर्ति मिली है। वर्तमान में यह मूर्तियां रानी महल संग्रहालय, झांसी में सुरक्षित है। यहां की अष्टभुजी मूर्ति की मुख्य विशेषता यह है कि आभूषणों के अलंकरणों के नाम पर साधारण आभूषणों का प्रयोग हुआ है और सभी सर्प का यज्ञोपवीत है जिसका अभाव कोंच गढ़ी की मूर्ति में पाया गया है। हाथों के लक्षणों में कटिहस्त मुद्रा सभी मूर्तियों में पायी गई है चांदपुर वाली दोंनो मूर्तियों में दाहिने तरफ का पहला हाथ कटिहस्त है जबकि दुधई वाली मूर्ति में बाएं तरफ का पहला हाथ कटिहस्त है। प्रतिमा के हाथों में पुस्तक, मोदक, परशु, अंकुश, त्रिशूल, खडग् आदि आयुध हैं। नृत्यमुद्रा के लिये उठा हाथ प्रायः सभी मूर्तियों में कुहनी के समानान्तर उठकर नीचे बायें वक्ष से सटा हुआ है। इन मूर्तियों की एक विशेषता यह भी रही है कि गणेश के अगल–बगल में वाद्ययन्त्र मृदंग और वीणा युक्त स्त्रियां और नृत्याकृतियां अंकित है। इसी के साथ शीर्ष के ऊपर दो विद्याधरों और मकर मुख एवं गगनचारी की आकृतियों से युक्त कलात्मक प्रभा मण्डल के कारण मुख्य प्रतिमा का आर्कषण और अधिक बढ़ जाता है। इस विशेषता का कोंच की गढ़ी प्रतिमा में अभाव रहा है लेकिन नृत्य मुद्राओं का आकर्षण इन्हीं मूर्तियों की भाँति है।

इसके अतिरिक्त अजयगढ़ दुर्ग के द्वार पर गणेश की शैलोत्कीर्ण अष्टभुजी लेख युक्त मूर्ति प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण है जो कि चंदेलवंश के इतिहास पर प्रकाश डालती है। कलात्मक वैभव की दृष्टि से अजयगढ़ के कलात्मक वैभव को खजुराहों की विख्यात कला के समकक्ष रखा जा सकता है[3]।

उपर्युक्त वर्णित सभी अष्टभुजी मूर्तियों के विवरण से यही स्पष्ट होता है कि इन मूर्तियों के कुछ लक्षण एवं लांछन कोंच की गढ़ी की अष्टभुजी मूर्ति में मिलते भी हैं, कुछ भिन्न भी हैं।

---

1. प्रतिमा संख्या – 9,6, रानी महल संग्रहालय
2. प्रतिमा संख्या –16,364 वही
3. सुरम्य बुन्देलखण्ड पृ0 77

लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि इस मूर्ति में चंदेलकालीन कला शैली का पूर्ण प्रभाव है क्योंकि चंदेल काल जहां मूर्तिकला की दृष्टि से श्रेष्ठकाल समझा जाता था, वहां संगीत व नृत्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण काल रहा है। इसकी पुष्टि चन्देलकालीन संगीत व नृत्य की प्रतिमाओं के दृश्यांकन के साथ–साथ कालिंजर का विक्रम सम्वत् 1186 (सन् 1129 ई0) का वह महत्वपूर्ण स्तम्भ शिलालेख भी है, जिसमें महानचनी पद्मावती का उल्लेख हुआ है। यह पद्मावती कालिंजर के सुविख्यात नीलकंठ–मंदिर में नृत्य के लिए नियुक्त थी[1]।

कालिंजर के नीलकण्ठ मंदिर के इस शिलालेख में महानचनी पद्मावती के उल्लेख से स्पष्ट है कि वह अपने समय की चंदेल राजधानी कालिंजर की प्रधान नृत्यांगना थी। इस प्रकार निःसन्देह खजुराहों, चांदपुर–दुधई (ललितपुर) के श्रेष्ठ मंदिरों में भी महानर्त किया तथा भव्य नर्तकियां रही होगीं। बाजीराव पेशवा ''प्रथम'' की प्रेयसी ''मस्तानी'' के ही याद में कोंच में गणेश उत्संव मनाया जाता था जिसके बारे में इतिहासकारों का मानना है कि मस्तानी नृत्य कला और संगीत कला में भी पूर्ण दक्ष थी अतः उसकी कला और उसके अनिंद्य सौन्दर्य को जब बाजीराव पेशवा ने देखा तो वह उसकी कलात्मक प्रतिभा और रूप लावण्य पर एक भँवरा जैसा दीवाना हो गया[2]। इसी बाजीराव पेशवा द्वारा कोंच की गढ़ी पर अष्टभुजी नृत्य प्रतिमा भी स्थापित करायी गयी थी। अतः इन्कार नहीं किया जा सकता है कि कोंच की गढ़ी की अष्टभुजी गणेश मूर्ति चंदेलकालीन कला और संस्कृति से प्रभावित थी।

इसी प्रकार नृत्य गणपति की बंगाल से प्राप्त एक प्रभावशाली प्रतिमा में अष्टभुजी गणपति को नृत्य मुद्रा में अति कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है[3]। एक 12 वीं–13 वीं शताब्दी की अष्टभुजी गणेश प्रतिमा आजमपुर संग्रहालय में संरक्षित है[4]। इस प्रतिमा में करण्ड–मुकुट तथा अन्य आभूषणों से अलंकृत अष्टभुजी गणपति को नृत्य मुद्रा में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उनके हाथों में परशु, पाश, मोदक–पात्र, दन्त, सर्प, पद्म स्थित हैं। इस प्रतिमा में अंजलिवद्ध मुद्रा में बैठे भक्तों तथा वाद्य यन्त्रों को बजाते हुए अनुचरों को भी प्रदर्शित किया गया है। नीचे मोदक खाने में व्यस्त मूषक भी अंकित हैं।

कालपी में गणपति मूर्तियाँः–

कालपी की मध्यकालीन गणेश प्रतिमाएं विविध रूपों में प्राप्त हुयी हैं। एकदन्त, वक्रतुण्ड और लम्बोदर आदि स्वरूपों को रूपायित करने वाली अनेक प्रतिमाएं यहां के मंदिरों में प्रदर्शित हैं।

1. वर्मा, महेन्द्र, चन्देलशिल्प में संगीत और नृत्य पृ0 29
2. 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' पृ0 211
3. गणेश–पुराण–एक अध्ययन–पृ0 286
4. नगर, शान्तिलाल 'कल्ट ऑफ विनायक' पृ0 105

इसके अतिरिक्त यहां उनके चित्रण अन्य रूपों में भी मिलते हैं जैसे नाग छत्रधारी श्रीगणेश इत्यादि। यहां पर गणेश की आसन मूर्तियां अधिक प्राप्त हुयी हैं। स्थानक व आलिंगन मूर्तियों का प्रायः अभाव ही रहा है। इन मूर्तियों का प्रधान लक्षण चतुर्भुजी ही रहा है जो यहां के विहारी जी के मन्दिर पाहूलाल देवालय और गणेश मंदिर में दर्शनीय हैं। इन प्रतिमाओं के सामान्य विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार है।

विहारी जी मन्दिर की चतुर्भुजी मूर्तियां–

कालपी के किलाघाट से चतुर्भुजी गणेश की तीन प्रतिमाएं प्राप्त हुयी हैं जो कि विहारी जी के मन्दिर में विद्यमान हैं। पहली मूर्ति श्री गणेश की बलुआ पत्थर द्वारा निर्मित है और इसका आकार 39 X 32 से.मी. है। गणेश की यह चतुभुजी प्रतिमा 15 वीं शताब्दी की है । इस प्रतिमा में श्रीगणेश त्रिभंग में खड़े हुये हैं। अपने चारों हाथों के लक्षणों में एक हाथ गदा से युक्त है अन्य स्पष्ट नहीं दिखालाई पड़ते है।

दूसरी मूर्ति में श्रीगणेश का वक्रतुण्ड रूप प्रदर्शित है। इसमें उनकी शुण्ड सीधी जाकर सिरे पर घुमावदार हो गई है। मुद्गल– पुराण के अनुसार भगवान गणेश के अनेकों अवतार हैं, जिनमें आठ अवतार प्रमुख है। पहला अवतार भगवान वक्रतुण्ड का है। भगवान श्रीगणेश का 'वक्रातुण्डावतार ; ब्रह्मरूप से सम्पूर्ण शरीरों को धारण करने वाला मत्सरासुर का वध करने वाला तथा सिंहवाहन पर चलने वाला है। ऐसे ही वक्रतुण्डी श्रीगणेश की चतुर्भुजी प्रतिमा विहारी जी मन्दिर में प्रदर्शित है। इसमें श्रीगणेश दाहिने तरफ अपने पहले हाथ में परशु व वाम हाथ में शंख और चौथे हाथ में लड्डू ग्रहण किये हुये हैं। दूसरे हाथ में ग्रहण की हुई वस्तु स्पष्ट नही है। यह प्रतिमा भी 15 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 47 X 35 से0 मी0 है। यह प्रतिमा पत्थर द्वारा निर्मित है। इस मूर्ति में श्रीगणेश पद्मासन में बैठे हुये हैं।

भगवान श्रीगणेश का लम्बोदर नामक अवतार सत्स्वरूप तथा शक्ति ब्रह्म का धारक है। लम्बोदर श्रीगणेश का यही रूप बिहारी जी के मन्दिर में प्रदर्शित है। यह प्रतिमा 16 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 32 X 28 से0 मी0 है। वे शूर्पकर्ण व एकदन्त है तथा यह प्रतिमा पत्थर की बनी हुई हैं। इस प्रतिमा में चतुर्भुजी गणेश बालस्वरूप में प्रदर्शित है। श्रीगणेश देवके लम्बोदर रूप का वाहन मूषक है जो कि इस प्रतिमा में प्रदर्शित नही है।

चतुर्भुजी गणेश मूर्तियां राजकीय संग्रहालय, झांसी, झांसी दुर्ग, चांदपुर–दुधई, दैलवारी, पनारी मसौरा खुर्द, मुहारा, साकरवार, सीरोनकला, सिरसी और खजुराहों में अधिक मात्रा में पायी गई हैं लेकिन विहारी जी मन्दिर की खड़ी मुद्रा वाली चतुर्भुजी मूर्ति के समान तीन मूर्तियां खजुराहों

में उपलब्ध है। इन मूर्तियों में जो एक विशेषता विहारी जी मन्दिर की खड़ी मूर्ति से मिलती है वह यह है कि इसमें उनकी शुण्ड सीधी लटकी है और उसमे नीचे को एक मोड़ है[1]। मसौरा खुर्द में श्रीगणेश के वक्रतुण्ड और लम्बोदर स्वरूप की प्रतिमा दर्शनीय हैं। ये मूर्तियां विहारी जी मन्दिर की मूर्ति के तुलना में अधिक अलंकृत है।

पातालेश्वर मन्दिर की चतुर्भुजी मूर्ति–

किलाघाट कालपी के पातालेश्वर मन्दिर में चतुर्भुजी गणेश की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। इसमें श्रीगणेश राजलीलासन मुद्रा में कमल–दल पर बैठे हुये हैं। राजकीय संग्रहालय झांसी[2] में भी श्रीगणेश की चतुर्भुजी कमलस्थ प्रतिमा प्रदर्शित है लेकिन इस मूर्ति में आसनस्थ नहीं बल्कि वे खड़े हुये है। 10 वीं शताब्दी की यह प्रतिमा बालू पत्थर से निर्मित है जबकि पातालेश्वर मंदिर की मूर्ति संगमरमर पत्थर द्वारा निर्मित आधुनिक काल की है। इसमें वे शूर्पकर्ण है और उनकी शुण्ड नीचे से थोड़ी मुड़ी हुई हैं। अपने वाम हाथ में परशु और दूसरा हाथ पैर पर रखे हुये हैं। दाहिने तरफ तीसरे हाथ और चौथे हाथ में कमण्डल ग्रहण किये हुये हैं। राजकीय संग्रहालय वाली मूर्ति का ऊर्ध्ववर्ती भाग खण्डित है। राजकीय संग्रहालय, झांसी[3] में संग्रहीत एक मूर्ति में चतुर्भुजी श्रीगणेश राजलीलासन मुद्रा में भी प्रदर्शित हैं। लेकिन यह कमल दल पर न होकर एक ऊंचे आसन पर बैठे हैं। यह मूर्ति कंकन और वाजूबन्ध आदि आभूषणों से अलंकृत है। इस मूर्ति की भुजायें खण्डित है केवल बायें तरफ का पहला हाथ ही प्रदर्शित है जिसमें वह मोदक–पात्र लिये हुये हैं और उनकी शुण्ड मोदक–पात्र पर ही प्रदर्शित है। यह विशेषता पातालेश्वर मन्दिर की मूर्तियों में नही पाई जाती है।

पाहूलाल देवालय की चतुर्भुजी मूर्ति–

चतुर्भुजी गणेश की दो प्रतिमा मुहल्ला अदल सरायं कालपी मूर्तियाँपाहूलाल देवालय में स्थित हैं। पहली में चतुर्भुजी विनायक आराम की मुद्रा में बैठे हैं। यह प्रतिमा 19 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 57 X 35 से0 मी है। दाहिने तरफ वाले दूसरे हाथ में फरसा और पहला हाथ पैर पर रखे हुये हैं और बाएं तरफ पहले हाथ में लड्डू और दूसरे हाथ में अस्पष्ट आयुध लिये हुयें है। लाल पत्थर से निर्मित इस प्रतिमा में देव शूर्पकर्ण है औरमस्तक पर मुकुट धारण किये हुये है।

दूसरी चतुर्भजी मूर्ति भी 19 वीं शताब्दी की है। इसका आकार 35 X 26 से 0 मी0 है।

---

1. खजुराहो संग्रहालय – संख्या – 1120
2- Sculpturses in the Jhansi Museum. p.-58
3- Sculpturses in the Jhansi Museum. p.-58

यह संगमरमर पत्थर द्वारा निर्मित है। इसमें श्रीगणेश की शुण्ड दाहिनी ओर मुड़ी है। श्रीगणेश के दाई तरफ वाली प्रतिमाओं के बारे में ऐसी मान्यता है कि ऐसे गणपति बहुत ही जल्दी कुपित हो जाते है। इसलिए आमतौर पर भक्तगण बाई तरफ मुड़ी सूड़ वाली गणेश प्रतिमा की ही प्रतिस्थापना और पूजा–अर्चना किया करते थे। इसी कारण बुन्देलखण्ड के सभी क्षेत्रों में श्रीगणेश की सूड़ अधिकांशतः बायी ओर मोदक पात्र की ओर मुड़ी हुई अथवा मोदक ग्रहण करती हुई प्रदर्शित होती है। दाहिनी ओर मुड़ी सूड़ वाली प्रतिमा महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के सिद्धि–विनायक मंदिर में प्रतिष्ठित है जो चतुर्भुजी है वे अपने हाथों में क्रमशः कमल, अंकुश, मोतियों की माला और मोदक का पात्र लिये हुये हैं। यहां उनकी पत्नी रिद्धि और सिद्धि भी प्रदर्शित हैं जिनका अभाव पाहूलाल देवालय में पाया गया है। गणेश मन्दिर कालपी में दाहिने सूंड वाले गणेश देव की मूर्तियां स्थापित है।

गणेश मन्दिर की दाहिनी सूंड वाले चतुर्भुजी गणेश–

गणेश मन्दिर में इस तरह की तीन मूर्तियाँ है। पहली मूर्ति जो दोनो मूर्तियों की अपेक्षा प्राचीन है नाग छत्रधारी श्री गणेश की है। बताया जाता है कि छत्रपति शिवाजी के गुरू समर्थ गुरू रामदास के गुरू ने शक संवत 1569 में अपने कालपी आगमन के समय अपने हाथों से लाल बलुआ पत्थर पर दाहिनी ओर सूड़ चाले गणेश जी को गढ़कर उनकी स्थापना की थी[1]। 12 इंच ऊंची तथा 8 इंच चौड़ी यह मूर्ति गणेश जी की शान्त मुद्रा मूर्ति है जिसके ऊपर तीन नागफनों से युक्त छत्र सुशोभित है। सर्वथा सुरक्षित यह अखण्डित प्रतिमा भारतीय शिल्प–सौन्दर्य का एक मनोहारी उदाहरण प्रस्तुत करती है। यह मूर्ति इस मन्दिर के आँगन में प्रतिष्ठित है। कालपी मे नागफन पर पुरूष गणेश की त्रिभंग मुद्रा में वंशी बजातें हुयें भी पायी गई है[2]। ललितपुर–जनपद के पनारी और मसौरा खुर्द आदि स्थानो की चतुर्भुजी मूर्तियों के हाथों का एक लक्षण सर्प अवश्य रहा है लेकिन किसी भी स्थान पर नागफनों का छत्र धारण किये हुये गणेश की प्रतिमा परिलक्षित नही हुई है। लेकिन खजुराहों की एक चतुर्भुजी नृत्य गणेश[3] की मूर्ति में कुछ इस तरह की विशेषता देखने को मिली है। इसमें श्रीगणेश अपने दूसरे और तीसरे हाथों से एक नाग पकड़ कर उन्होनें अपने सिर के ऊपर उसका घटाटोप–सा बना लिया है। इस मूर्ति में उनकी शुण्ड भी दाई ओर मुड़ी हुई है। अन्तर बस इतना है कि इसमें वह मोदक पात्र के ऊपर है जब कि कालपी वाली मूर्ति में मोदक –पात्र का अभाव है। खजुराहों की एक अष्टभुजी मूर्ति[4] में भी वे अपने चौथे और पाँचवे हाथ

1. पुरवार हरीमोहन 'गौरवशाली कालपी' पृ0 26
2. नईम कुरैशी 'बुन्देली विरासत' पृ0 72, झांसी 1991
3. खजुराहों संग्रहालय – प्रतिमा संख्या –1108
4. वही, प्रतिमा संख्या –1134

से एक नाग पकड़ कर उसे अपने सिर के ऊपर उठाए हुये है। लेकिन इसमें उनकी शुण्ड शास्त्रानुसार बायीं ओर ही मुड़ी हुई है।

गणेश मन्दिर की दूसरी मूर्ति संगमरमर पत्थर द्वारा निर्मित चतुर्भुजी मूर्ति है। इसमें श्रीगणेश देव पद्मासन में बैठे हुये हैं वे शूर्पकर्ण है और शुण्ड भी दाहिनी तरफ मुड़ी हुई है। वे लम्बोदर हैं। मस्तक पर मुकुट धारण किये हुये हैं। यह मूर्ति 16 इंच ऊँची व 12 इंच चौड़ी है। श्रीगणेश अपने दाहिने तरफ के पहले हाथ में परशु और दूसरे हाथ में लड्डू लिये हुये है। बाएं तरफ के पहला हाथ वरद मुद्रा में और दूसरे हाथ में कमल की बौड़ी लिये हुये है। इस मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा पेशवा बाजीराव प्रथम द्वारा संवत 1749 में मन्दिर जीर्णोद्धार के समय की गयी थी[1]।

यहाँ की तीसरी मूर्ति भी श्वेत संगमरमर पत्थर द्वारा निर्मित है। इसमें श्रीगणेश राजलीलासन मुद्रा में बैठे हुये है। इस चतुर्भुजी मूर्ति में शुण्ड दाहिनी ओर वक्राकार की स्थिति में अंकित है। इस मूर्ति के हाथों के लक्षण उपर्युक्त के ही समान है। इस मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा महारानी लक्ष्मीबाई द्वारा की गयी थी। द्वितीय तथा तृतीय दोनों गणेश मूर्तियां एक ही सिंहासन पर गर्भग्रह में प्रतिष्ठित है[2]।

उपर्युक्त ये दोंनो आसनस्थ चतुर्भुजी मूर्तियां भी खजुराहो की चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्तियों से मिलती–जुलती हैं। इन सभी मूतियों में श्रीगणेश राजलीलासन मुद्रा में है लेकिन गणेश मन्दिर की दूसरी मूर्ति में वह पद्मासन है और तीसरी मूर्ति राजलीलासन वाली है। वैसे तो खजुराहो की इन मूर्तियों में उनकी शुण्ड बायी ओर मुड़ी हुई है लेकिन एक प्रतिमा जो कि विश्वनाथ मन्दिर[3] से प्राप्त है उसमें श्रीगणेश के दाएं हाथ में मोदक है इसी कारण शुण्ड दायीं ओर मुड़कर उसी मोदक के ऊपर प्रदर्शित है। गणेश मन्दिर में मोदक के ऊपर न होकर वक्राकार है। गणेश मन्दिर मुहल्ला गणेशगंज, कालपी में स्थित है। सम्भवतः गणेश के नाम पर है। इस मुहल्ले का नाम गणेशगंज पड़ा।

पंच मातृकाओं सहित श्री गणेशः–

पंच मातृकाओं सहित श्री गणेश की यह प्रतिमा हिन्दी भवन कालपी में प्रदर्शित है। यह प्रतिमा लगभग 18 वीं शताब्दी हैं और प्रतिमा 18 से. मी. लम्बी है। पीतल धातु से निर्मित इस प्रतिमा में श्रीगणेश के साथ पंच मातृकाओं का चित्रांकन दर्शाया गया है। इस तरह की मूर्तियां

1. गौरवशाली कालपी – पृ0 27
2. गौरवशाली कालपी – पृ0 27
3. खजुराहो की देव प्रतिमायें – पृ0 52

खजुराहो, देवगढ़ और झांसी के संग्रहालयों में भी प्राप्त हैं। इन सभी में श्रीगणेश सप्त–मातृकाओं के साथ प्रदर्शित हैं जिनका विवरण पूर्व में दिया जा चुका है।

जालौन में गणपति मूर्तियाँ :–

जालौन जनपद के मन्दिरों में भी गणपति के विविध रूपों के दर्शन हमें प्राप्त होते हैं जिनमें वे मुख्यतः मूषक वाहन के साथ, रिद्धि–सिद्धि युक्त और चतुर्भुजी आसनस्थ रूप में निरूपित है। इन मूर्तियों के लक्षण एवं लांछनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

मूषकासीन श्रीगणपति–

मुहल्ला काशीनाथ में स्थित मूषक पर सवार श्री गणपति की प्रतिमा बहुत ही सुन्दर है। यह चतुर्भुजी है और काला पत्थर द्वारा निर्मित है। इसमें वह गजानन और लम्बोदर रूप में रूपायित है। दाहिने तरफ और बाएं तरफ के पहले हाथ में लड्डू लिये हुये है जबकि दूसरे हाथों में क्रमशः कमल की बौड़ी और अस्पष्ट आयुध लिये हुये है। उनकी शुण्ड मुड़ी हुई है और वे शूर्पकर्ण है। मस्तक पर मुकुट धारण किये हुये है इस प्रतिमा का आकार 47 X 31 से. मी. है। गणेशपुराण में वर्णन मिलता है कि द्वापरयुग में वे गजानन के रूप में जाने जाते हैं जिनका स्वरूप चतुर्भुज रक्तवर्ण व वाहन मूषक होता है। लेकिन इस प्रतिमा में वह रक्तवर्ण न होकर धूम्रवर्ण प्रदर्शित है। खजुराहो में श्रीगणपति के वाहन मूषक की स्वतन्त्र मूर्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में गणपति की मूर्तियों के पादपीठ पर या आस–पास मूषक की आकृति अंकित रहती है।

रिद्धि–सिद्धि सहित चतुर्भुजी गणेश :–

जालौन में रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश की दो प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। पहली मूर्ति मुहल्ला काशीनाथ, जालौन में पायी गई है जो श्री गोपालराव वाकणकर के निजी स्वामित्व में सुरक्षित है। इस प्रतिमा में श्रीगणेश का रिद्धि–सिद्धि युक्त चतुर्भुजी रूप प्रदर्शित है। श्रीगणेश पद्मासन में बैठे हुये हैं। उनके दोनों तरफ उनकी पत्नियाँ रिद्धि–सिद्धि खड़ी हुई हैं। यह प्रतिमा पीतल एवं तांबा से मिश्रित होकर बनी है। मत्स्यपुराण में ताम्र धातुओं से प्रतिमा निर्माण का विधान किया गया है[1]। और वृहत्संहिता में यह वर्णन मिलता है कि ताम्र धातुओं से निर्मित प्रतिमा से प्रजावृद्धि होती है[2]। जैसा कि उनकी दोंनो पत्नियों रिद्धि और सिद्धि के नाम से स्पष्ट है कि वे धन और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली है। इस प्रतिमा का आकार 20 X 12 से.मी.. है। श्रीगणेश रिद्धि–सिद्धि सहित चौकी

1. मत्स्य पुराण 1.258–263
2. वृहत्संहिता, 60,51 से 58 तक

पर विराजमान हैं और उनके शीष के ऊपर नाग का छत्र बना हुआ है। श्रीगणेश की यह प्रतिमा 17 वीं शताब्दी की है।

जालौन में रिद्धि–सिद्धि सहित चतुर्भुजी गणेश की अन्य प्रतिमा मुहल्ला गणेश गंज में स्थित गणेश मन्दिर में प्रदर्शित है। यह प्रतिमा संगमरमर पत्थर द्वारा बनाई गई है। इसमें भी श्री गणेश पद्मासन मुद्रा में बैठे हुये हैं। श्रीगणेश देव अपने दाएं और बाएं तरफ के ऊर्ध्ववर्ती हाथों में पद्म लिऐ हुये हैं और अधोवर्ती हाथों में दाहिना जंघे पर हैं और बाएं में मोदक लिये हुये हैं। बाम तरफ उनके कंधे पर नागराज विराजमान है और मस्तक पर मुकुट रिद्धि और सिद्धि उनकी दोनों पत्नियां देव के दोनों तरफ खड़ी हुई हैं। यह प्रतिमा 17 वीं शताब्दी की है।

रिद्धि–सिद्धि युक्त गणेश की प्रतिमायें अन्य स्थानों पर भी पाई गई हैं। इनके ग्रंथों में गणेश की दो पत्नियों का उल्लेख है– रिद्धि और सिद्धि तथा बुद्धि और सिद्धि किन्तु कुछ अन्य ग्रंथों में उनके पार्श्व में केवल एक पत्नी के होने का ही निर्देश है। इसी कारण धुबेला संग्रहालय, लखनऊ संग्रहालय और अन्य अनेक स्थानों पर श्री गणेश अपनी एक ही दम्पत्ति के साथ प्रदर्शित हैं। शक्ति गणेश के नाम से धुबेला संग्रहालय की प्रतिमा में चतुर्भुजी गणेश के बाएं अंक में शक्ति विराजमान है। गणेश का निचला बायां हाथ शक्ति का कुचस्पर्श कर रहा है और ऊपरी बायाँ हाथ उनके पीछे सहारा दे रहा है। उनके निचले दाएं हाथ में उनका अपना ही खण्डित दांत है और ऊपरी दाएं हाथ में पद्म है शक्ति का दाहिना हाथ गणेश के कंधे पर है और बाएं हाथ में दर्पण है। इसी प्रकार खजुराहो, चांदपुर–दुधई, जखौरा और राजकीय संग्रहालय झांसी तथा रानी महल संग्रहालय में संग्रहीत मूर्तियों में श्रीगणेश के साथ उनकी एक पत्नी विघ्नेश्वरी या शक्ति का ही अंकन दिखलाई पड़ता है। केवल एक मूर्ति राजकीय संग्रहालय, झांसी की रिद्धि–सिद्धि युक्त है। इसके हाथों के लक्षण जालौन की मूर्ति से पूर्णतः भिन्न हैं। उनके हाथों के लक्षण अंकुश, अभय, दन्त और मोदक–पात्र के साथ प्रदर्शित है।

चतुर्भुजी आसनस्थ मूर्ति–

जालौन में चतुर्भुजी गणेश की आसनस्थ तीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां जालौन के मुहल्ला गोविन्देश्वर मन्दिर में प्रदर्शित हैं। पहली मूर्ति पत्थर से निर्मित दीवार पर जड़ी हुई है। इसका आकार 111 X 74 से.मी. है। यह 29 वीं शताब्दी की प्रतिमा है। वे शूर्पकर्ण है और मस्तक पर मुकुट धारण किये हुये है उनका पेट आगे की ओर निकला हुआ है इस प्रकार वह लम्बोदर हैं। इस प्रतिमा में श्रीगणेश कमल पुष्प के ऊपर बने एक ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। श्रीगणेश दाहिने हाथ में साफा, तलवार और बाएं हाथ में अस्पष्ट पदार्थ और परशु धारण किये हुये हैं।

इसके अतिरिक्त गोविन्देश्वर मन्दिर में श्री गणेश की अन्य दो चतुर्भुजी प्रतिमाएं भी विराजमान हैं, जो कि 17 वीं शताब्दी की हैं। इनमें से एक चतुर्भुजी प्रतिमा का आकार 35 X 40 से.मी. है। यह पत्थर द्वारा निर्मित है। श्रीगणेश अपने दाहिने तरफ पहले हाथ में नाग देव और दूसरे हाथ में परशु पकड़े हुये हैं। बाएं तरफ पहले हाथ में कमण्डल और दूसरे में कमल की बौड़ी लिये हुये प्रदर्शित हैं। श्रीगणेश देव पद्मासन में बैठे हुये हैं। उनकी सम्पूर्ण शुण्ड दाहिनी तरफ मुड़ी हुई है। इसमें श्रीगणेश मुकुट और माला धारण किये हुये हैं। गोविन्देश्वर मन्दिर की दूसरी प्रतिमा का आकार 29 मी0 X 22 से.मी. है। यह प्रतिमा बलुआ पत्थर द्वारा निर्मित है। इस प्रतिमा में उनकी शुण्ड नीचे जाकर दाईं और मुड़ी हुई है। इसमें भी वह माला धारण किए हुए हैं। इस तरह की चतुर्भुजी मूर्तियां खजुराहो, झांसी, चांदपुर, दुधई, ललितपुर आदि सभी स्थानों पर देखी गईं हैं।

अन्य मूर्तियां एवं उनके मूर्ति स्वरूप के कुछ अन्य सामान्य लक्षण :–

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त जनपद–जालौन के अंतर्गत आने वाले अनेक छोटे–छोटे स्थानों पर श्रीगणेश के स्वरूप के दिग्दर्शन प्राप्त हुये हैं। इन स्थानों में स्थापित कुछ प्रतिमायें आधुनिक हैं जबकि कुछ प्रतिमायें प्राचीन हैं। माधौगढ़ के रामेश्वरम् मन्दिर में श्री गणेश की लगभग 10 वीं शताब्दी की प्रतिमा प्रदर्शित है। इस प्रतिमा की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें श्रीगणेश का शीर्ष प्रभामण्डल से युक्त दर्शाया गया है। ग्राम दिरावटी के शिव मन्दिर में भी गणेश की पत्थर से निर्मित प्रतिमा दर्शनीय है। इस गणपति मूर्ति को हनुमान की मूर्ति के साथ शिवलिंग के साथ ही स्थापित किया गया है। इसमें श्रीगणेश शान्त मुद्रा में बैठे हुये हैं। दिरावटी कोंच–उरई मार्ग पर स्थित है।

इसके अतिरिक्त भेंड़ के गणेश मन्दिर में श्रीगणेश की सुन्दर प्रतिमा स्थापित है। इस मन्दिर के विषय में कहा जाता है कि अंग्रेजी शासन के समय रावपूरन सिंह शासक के शासनकाल में यह श्रीगणेश का मन्दिर जीर्ण–शीर्ण हालत में था। इन्हीं से इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया जिसके फलस्वरूप उन्हें सन्तान की प्राप्ति हुयी थी। भेंड़ गांव कोंच–जालौन मार्ग के मध्य में स्थित है[1]।

ग्राम चमरसेना के गणेश मन्दिर में भी दाहिनी ओर सूंड़ किए हुए पत्थर पर चित्रित, सुन्दर, लुभावनी मंगलदायक गणेश की मूर्ति विराजमान है। यह मन्दिर तालाब के किनारे बाँध पर बना हुआ है[2]। यह गांव कोंच–उरई मार्ग के मध्य में पड़ता है। इस प्रकार जनपद जालौन में

1. सारस्वत – बुन्देलखण्ड मेला उत्सव विशेषांक – 2003–4
2. विनीत देवी 'गणेश पुराण–एक अध्ययन' (शोध–प्रबन्ध) पृ0 310

रामपुरा, नदीगाँव और ताहरपुरा आदि में भी गणेश प्रतिमाएं स्थापित हैं। जो इस जनपद के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व को दर्शाते हैं।

कोंच, उरई और कालपी में अब तक जितनी भी गणेश प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है इसके अतिरिक्त भी कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। कोंच नगर में श्रीगणेश की अनेक छोटी–छोटी मूर्तियां मन्दिरों में स्थापित हैं इनमें अधिकांश पीतल धातु द्वारा निर्मित हैं जिनमें एक कोपीनधारी चतुर्भुजी गणेश की प्रतिमा मुहल्ला गाँधीनगर में रामलला मन्दिर में प्रदर्शित है। यह प्रतिमाह 17 वीं शताब्दी की है और इसका आकार 16.5 X 9 से.मी. है। इसके अतिरिक्त कुछ पत्थर की बनी हुयी खण्डित गणेश मूर्तियां कोंच मन्दिरों के प्रांगण में तथा अर्द्धमण्डप और महामण्डप में यत्र–तत्र विखरी पड़ी हुयी हैं। ये खण्डित मूर्तियां बड़ी माता मन्दिर, भारत माता मन्दिर और सिंहवाहिनी मन्दिर के प्रांगण में देखने को मिलती हैं। भारत माता मन्दिर की संकलित मूर्तियां गढ़ी की खुदाई में प्राप्त हुईं थीं जिनमें से एक मूर्ति में हाथी का अंकन और सप्तमातृका पट भी विद्यमान है। बड़ी माता मन्दिर के द्वार पर स्वतंत्र रूप से गणेश की एक ऐसी प्रतिमा पड़ी हुई है जिनमें श्रीगणेश की पीठ पुज रही है। इस गणपति प्रतिमा की पीठ वानरमुखी हनुमान बनकर पुज रही है जो सिन्दूर, फूल माला से आच्छादित हैं[1]।

कालपी के मखाड़ी कुईया के हनुमान मन्दिर में श्रीगणेश मूर्ति है। यह मन्दिर टरनन गंज में कदौरा फाटक के आगे स्थित है। वस्तुतः राजस्थान से व्यापार के उद्देश्य से आये मारवाड़ियों द्वारा जनलाभार्थ यहां पर एक कुआ खुदवाया गया था। इसी से इसका नाम मारवाड़ी कुईया पड़ा। इसी मन्दिर के गर्भगृह में उत्तरी दीवाल पर बालू पत्थर से निर्मित एक मूर्ति है। यह मूर्ति बड़ी सुन्दर है। गणेश जी आराम मुद्रा में बैठे हुये हैं। इसमें श्रीगणेश की शुण्ड पूर्णतः दायीं ओर मुड़ी है और वह शूर्पकर्ण हैं। मस्तक पर मुकुट और गले में मोतियों की माला है। इस मन्दिर में प्रधानतया श्री हनुमान जी की प्रतिमा स्थापित है। हनुमान मन्दिर में स्थापित गणेश प्रतिमायें पटौरा–कला, पनरी, मुहारा और सीरोन खुर्द में भी पायी गयी हैं। सीरोन खुर्द के आधुनिक हनुमान मन्दिर की गणेश मूर्ति भी दीवार में सीमेन्ट के साथ जड़ी हुयी हैं। यह मूर्ति चतुर्भुजी नृत्य गणेश की है। उरई के हुलकी माता मन्दिर में प्रवेश द्वार के दाहिनी तरफ कांच की नक्काशी से बना कक्ष है जिसमें श्रीगणेश की संगमरमर की बनी आधुनिक प्रतिमा प्रतिष्ठापित है।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में धातु से निर्मित कई अन्य छोटी–छोटी गणेश की मूर्तियां

1. 'सारस्वत' सरस्वती विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज, कोंच (अपर्णाखर्द का लेख)

उपलब्ध हैं जिनमें से एक मूर्ति श्रीगणेश को लेखन मुद्रा में दर्शाया गया है। इसमें इनकी सूंड़ बायीं ओर मुड़ी हुयी है और प्रतिमा का आकार 17.8 x 12 x 12 से.मी. है। लेखन मुद्रा में गणेश का शुण्डादण्ड बायीं ओर मुड़ना स्वाभाविक ही है तभी दाहिनी ओर से वे लेखन कार्य कर सकते हैं।

बुन्देलखण्ड संग्रहालय की एक मूर्ति ''गणेश पंचायतन'' शैली की है जिसमें केन्द्र पर शिवलिंग स्थापित है। उसके सामने नागराज, माँ पार्वती एवं उनका वृषभ अंकित है। दूसरी ओर खड़ी मुद्रा में गणेशद्वय का अंकन है। जबकि सामान्यतया मूर्ति वैभव में एक गणेश की मूर्ति और दूसरी कार्तिकेय की होती है। यह मूर्ति अपने आप में अति विशिष्ट है। मूर्ति लगभग एक सौ पचास वर्ष प्राचीन है। यह पीतल की है और इसका आकार 4.5 X 4 से.मी. है।

इसी क्रम में एक पीतल के पत्रक पर गणेश का अंकन है, जो अपने वाहन मूषक के ऊपर नृत्य मुद्रा में अवस्थित है। यह पत्रक भी लगभग एक सौ पचास वर्ष प्राचीन है। ताण्डव नृत्य की मुद्रा में गणेशजी का अंकन वैशिष्टपूर्ण है। इस पत्रक का आकार लगभग 4.8 X 4.8 से.मी. है। द्विभुजी छाताधारी गणेश की प्रतिमा अद्वितीय है। इस मूर्ति में श्रीगणेश छाता धारण किए हुए हैं। यह प्रतिमा गिलट की बनी हुयी है। इसका आकार 17 X 6 से.मी. है।

इसके अतिरिक्त पीतल धातु से निर्मित मूर्तियों राजलीलासन युक्त चतुर्भुजी गणेश, कमलासीन चतुर्भुजी गणेश बालस्वरूप लड्डू गणेश, कलश पर उत्कीर्ण चतुर्भुजी गणेश, डिब्बी पर अंकित पद्मासन मुद्रा में श्रीगणेश और लोककला शैली में निर्मित चतुर्भुजी गणेश मूर्तियों के अंकन महत्वपूर्ण हैं। इस संग्रहालय टैराकोटा की भी एक गणपति प्रतिमा है जो गुप्तकालीन है। यह प्रतिमा आकार में सूक्ष्म किन्तु देखने में बहुत ही आकर्षक है। इसका आकार 4.8 X 3 से.मी. है। यहीं जयपुर से प्राप्त मूंगा पाउडर और हरा जैड पत्थर की मूर्तियां भी दृष्टव्य हैं।

इसी प्रकार अन्य अनेक क्षेत्रों में भी श्रीगणेश के विविध स्वरूपों की अनेकों विशेषताएं दर्शनीय है। विशेषकर बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्राप्त जितने भी गणपति विग्रहों को जालौन जनपद की गणपति विग्रहों से सुमेलित किया गया है उन सबके अतिरिक्त भी विभिन्न विशेषताएं इस क्षेत्र में देखने को मिली। खजुराहो से नृत्य गणपति की द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दसभुजी, द्वादशभुजी और षोड्शभुजी प्रतिमाएं भी प्राप्त हुयी हैं। इन प्रतिमाओं में हार, कौस्तुभमणि, कंगन, मेखला, पैजनी आदि से अलंकृत, गजमुख, शूर्पकर्ण, एकदन्ती, सर्पयज्ञोपवीतधारी गणपति का नृत्य करते हुए, विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित किया गया है। कुछ प्रतिमाओं में वे वीरभद्र और सप्तमातृकाओं के साथ नृत्य मुद्रा में प्रदर्शित हैं।

बानपुर में गणेश की बाईस भुजाओं वाली मनोहारी नृत्य प्रतिमा के दर्शन होते हैं। यह

नृत्यरत प्रतिमा एक चट्टान में उत्कीर्णित लगभग 8 फुट ऊंची है। इसमें वह दाहिना हाथ दाहिनी ओर के दांत पर एवं एक हाथ पांव पर रखे हुये हैं। उनकी गज शुण्ड बायीं ओर मुड़कर पुनः सिरें पर मुड़ी हुयी हैं। इसमें उनकी दोनों पत्नियां सिद्धि और बुद्धि दायीं–बायीं ओर को प्रदर्शित हैं[1]। मुदगल पुराण में बाम भाग में सिद्धि और दक्षिण भाग में बुद्धि की संस्थिति बताई जाती है[2]। बानपुर की यह बाईस भुजी सिद्धि–बुद्धि सहित विनायक प्रतिमा आज भी सबकी मनोकामना पूरी करती है परन्तु कुछ पुरातत्वविद् एवं शोधकर्ताओं ने इस गणेश मूर्ति को 18 भुजी तो किसी ने 24 भुजी बतलाया है[3]। इन शोधकर्ताओं में श्री कैलाश मडबैया, श्री हरि विष्णु अवस्थी जैसे प्रतिभावानों के प्रयास श्लाघनीय है कि जिन्होंने मूर्ति की बाईस भुजाएं देखकर लिखी हैं। श्रीगणेश के बाईस भुजा धारण करने का आख्यान भी रोचक रूप से शास्त्रानुमोदित जनश्रुतियों में प्राप्त होता है। गणेशपुराण में वर्णन मिलता है कि वाणासुर की भक्ति से प्रसन्न होकर गणेश ने अपने साधक की साधना को फल प्रदान करने हेतु कृतयुगादि क्रम से क्रमशः 10+6+4+2 = कुल बाईस भुजायें धारण कीं। गणेश अपने धर्म भ्राता वाण को चतुर्युगीन बाहु वैलक्षण्य रूप में अद्वितीय दर्शन देते हैं।

सीरोन (ललितपुर जनपद) के ध्वंसावशेषों में एक षड्भुजी नृत्य–गणपति की बारहवीं सदी की एक प्रतिमा दर्शनीय है। इस प्रतिमा में दाहिनी ओर के दो हाथ खण्डित हैं। शेष ऊपरी भुजा तथा बायीं ओर की ऊपरी भुजा दोनों से गणपति को वस्त्र पकड़े हुए बताया गया है। बायीं ओर की शेष दो भुजाओं में से एक में मोदक युक्त पात्र प्रदर्शित है, जबकि दूसरी भुजा कट्यावलम्बित मुद्रा में है। सीरोन खुर्द (ललितपुर) से प्राप्त एवं राजकीय संग्रहालय, झाँसी में संग्रहीत नृत्त–गणपति की चौदह भुजी मूर्ति अपनी विशालता, भव्यता तथा अलंकरण की दृष्टि से बड़ी हृदयाकर्षक है। दसवीं शताब्दी की निर्मित इस प्रतिमा के दायीं ओर के तीन हाथों में विभिन्न प्रकार के लांछन हैं। शेष ग्यारह हाथ भग्नावस्था में हैं।

गणेश मूर्ति स्वरूप के कुछ सामान्य लक्षण :–

साहित्य में श्रीगणेश के भुजाओं, आयुधों, वस्त्रों, आभूषणों, वाहनों तथा परिवार व पार्षदों का वर्णन मिलता है। ये सभी उनके प्रतिमाशास्त्रीय स्वरूप के विश्लेषण हेतु अनिवार्य हैं क्योंकि भुजायें व आयुध शक्ति के, वस्त्र मूल गुण के, अलंकार महत्व के तथा पार्षद देवमण्डल में उस देवता के स्तर के द्योतक होते हैं। श्रीगणेश की ये सभी विशेषतायें जनपद–जालौन सहित

1. सारस्वत – बुन्देलखण्ड मेला उत्सव विशेषांक – 2003–4, पृ0 102
2. मुदगल पुराण, अष्टम खण्ड, गणेश स्त्रोत –36
3. सारस्वत – बुन्देलखण्ड मेला उत्सव विशेषांक – 2003–4, पृ0 102, 103

समस्त बुन्देलखण्ड में भी पायी गयी हैं जिनमें से कुछ सामान्य विशेषतायें इस प्रकार हैं :–

भुजाएं एवं आयुध :–

जालौन की गणेश मूर्तियों में दो भुजाओं से लेकर आठ भुजाएं तक हैं। जबकि खजुराहों, चांदपुर–दुधई (रानी संग्रहालय में संग्रहीत), राजकीय संग्रहालय झांसी में दो भुजाओं से लेकर सोलह भुजाएं तक हैं। झांसी और चांदपुर–दुधई में दो भुजाओं का सर्वथा अभाव रहा है लेकिन चतुर्भुजी, षष्ठभुजी, अष्टभुजी मूर्तियों का बाहुल्य है। झांसी संग्रहालय की चतुर्दशभुजी और खजुराहों व चांदपुर–दुधई में षोड्सभुजी की गणपति प्रतिमायें विशिष्ट हैं। इनमें वे निम्नलिखित लांछनों में से कुछ धारण किए हैं, स्वदन्त, परशु, मोदक (अथवा कभी–कभी इक्षुखण्ड), मोदक–पात्र, नाग, अंकुश, फल, वस्त्र और पुष्प (कमल, कमलनाल अथवा अन्य कोई पुष्प) और कभी–कभी उनकी कुछ भुजाएं निम्नलिखित मुद्राओं में भी निर्मित हैं, वरद, अभय, गज–हस्त अथवा दण्ड हस्त, कटि–हस्त, तर्जनी हस्त आदि। अन्य स्थानों की गणेश मूर्तियों के विपरीत खजुराहो में पाश और अक्षमाला के चित्रण नहीं हुये हैं। चांदपुर–दुधई और ललितपुर जनपद के आस–पास के क्षेत्रों की प्रतिमाओं में अक्षमाला का चित्रण देखने को मिला है। यहां कुछ अन्य लक्षण खड्ग, कपित्थ, त्रिशूल और पुस्तक भी उनके हाथों में देखी गई है। गणेश पुराण में उनके चारों हाथों में खेट, धनुष और शक्ति के साथ खड़ग होने का भी उल्लेख मिलता है[1]। इसी प्रकार वाराहपुराण में कपित्थ[2] और लिंगपुराण में त्रिशूल[3] का वर्णन गणेश की प्रतिमा निर्माण के सम्बन्ध में मिलता है। अतः स्पष्ट है कि इन मूर्तियों के हाथों में अधिकांशतः वही लांछन हैं, जो शास्त्रों में गणेश–प्रतिमाओं के लिए निर्धारित हुए हैं, किन्तु उनके हाथों की संख्या और उनमें लांछनों के क्रमानुसार चित्रण में बुन्देली–शिल्पियों ने बहुत कुछ स्वच्छन्दता भी बरती है।

अलंकरण :–

जालौन की गणपति प्रतिमाओं का मस्तक मुकुट से अलंकृत है लेकिन अन्य आभूषणों का प्रायः अभाव है। खजुराहों की गणेश–मूर्तियों के मस्तक इकहरी अथवा दोहरी मौक्तिक लड़ियों से युक्त है। उस पर कोई मुकुट नहीं है, फिर भी कुछ मूर्तियों के मस्तक पर छोटा–सा जटा मुकुट अथवा करण्ड–मुकुट सुशोभित है। इस प्रकार की मूर्ति लक्ष्मण मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर और खजुराहों संग्रहालय में प्राप्त है। साधारणतः उनके द्वारा धारण किया गया यज्ञोपवीत सर्प का होता है, किन्तु कुछ मूर्तियां बिना सर्प यज्ञोपवीत धारण किए मिलती हैं। इस प्रकार की मूर्ति लक्ष्मण

1. " खड़गखेखधनुः शक्तिशोभिचारू चतुर्भुजम्। गणेश पुराण, 1,12,35
2. 'करस्थकदली चूतपनसेक्षुक–पित्थकम्।, वाराह पुराण, क्रियाक्रमयोति, 15.37
3. 'इमाननाश्रितं परं त्रिशूलपाश धारिणम्। लिगपुराण, पूर्वार्ध, 105.9

मन्दिर खजुराहों संग्रहालय और मातंगेश्वर मन्दिर में स्थित हैं। जालौन की मूर्तियों में श्रीगणेश का सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हुये नहीं दर्शाये गये हैं लेकिन सर्प उनके हाथों का लक्षण अवश्य है। इस तरह की मूर्ति यहां केवल गोविन्देश्वर मन्दिर और गणेश मन्दिर जालौन में प्रदर्शित है। अलंकरण के नाम पर यहां की कोंच गढ़ी और मन्सिल माता, उरई की अष्टभुजी नृत्य–मूर्ति ही विशेष है, लेकिन इसमें भी अलंकरण साधारण है। वे फूलों की माला व हाथ और पैरों में कंकन और पैंजनी पहने हुये हैं। चांदपुर–दुधई वाली मूर्तियों में उनके सिर पर मुकुट भी है और सर्प का यज्ञोपवीत भी। इसके अतिरिक्त मुक्त माल, हीरक हार, चम्मक हारादि, अंगद कंकन, नूपुर, मेखला आदि आभूषणों से भी अलंकृत हैं। कुछ मूर्तियों में अलंकरण साधारण हैं। राजकीय संग्रहालय, झांसी की मूर्तियों में मस्तक पर मुकुट कर्णाभूषण, हार, बाजूबन्ध, कंकन, मेखला, उरूमाला, नागयज्ञोपवीत, पायल व मस्तक पर मोतियों की लड़ी सुशोभित है। यही अलंकरण ललितपुर जनपद के क्षेत्रों में भी देखे गये हैं। राजकीय संग्रहालय, झांसी और ललितपुर–जनपद की मूर्तियों में वे एक अन्य लक्षण अधोवस्त्र से भी सुसज्जित हैं। इस प्रकार का अलंकरण झांसी की षष्ठभुजी मूर्ति जो सीरोन खुर्द से प्राप्त हुई है और मसौरा खुर्द की मूर्ति में भी पाया गया है। गणेश पुराण में एक स्थल पर उनके अलंकृत सम्पूर्ण स्वरूप का वर्णन मिलता है[1]। इसमें लिखा है कि मोतियों और रत्नों से उनका मुकुट जटित है। सम्पूर्ण शरीर लाल चन्दन से चर्चित है। उनके मस्तक पर सिन्दूर शोभित है। गले में मोतियों की माला है। वक्षस्थल पर सर्प–यज्ञोपवीत है। बाहु में बहुमूल्य रत्नजटित बाजूबंद है। अंगुलियों में मरकतमणि जटित अंगूठी है। स्कन्ध से उदर की नाभि तक चारों ओर से सर्पों द्वारा वेष्टित है। रत्नजटित करधनी है। स्वर्ण–सूत्र –लसिता लाल वस्त्र हैं। भाल पर चन्द्रमा है, दांत सुन्दर हैं।

अतः स्पष्ट है कि बुन्देली शिल्प में प्रयुक्त गणपति अलंकरण शास्त्रानुसार ही वर्णित है।

परिवार एवं पार्षद :–

जालौन–जनपद सहित समस्त बुन्देलखण्ड में गणेश की अधिकांश मूर्तियां उनके

---

1. मुकुटेन विराजतं मुक्ता रत्न युजा शुभम्।
रक्त चंदन लिप्तांगं सिंदूरारूण मस्तकम्।।
मुक्ता दाम लसत् कंठं सर्पयज्ञोपवीततिनम्।
अनर्ध्यरत्न घटित बाहु भूषण भूशितम्।।
स्फुरन् मरकत भ्राजदंगुलीक शोभितम्।
महामिवेष्टित बृहन्नाभि शोभिमहोदरम्।।
विचित्र रत्न खचित कटि सूत्र विराजितम्।
सुवर्ण सूत्र विलसद्रक्तवस्त्र समावृतम्।।
भालचन्द्रं लसद्दंत शोभाराजत करं परम्।
एवं ध्यायति तस्मिंस्तु पुनरेव न भोवचः।।
गणेश पुराण, 1.14.21 से 25

समस्त परिवार पिता शिव, माता पार्वती, भाई कार्तिकेय और शिव–वाहन नन्दी के साथ चित्रित हैं। कुछ मूर्तियों में उनकी पत्नी रिद्धि–सिद्धि भी अंकित हैं। बुन्देलखण्ड में खजुराहों, चांदपुर–दुधई, झांसी की नृत्यरत मूर्तियों में उनके पार्षदों का अंकन हुआ है लेकिन जालौन–जनपद की मूर्तियों में सर्वथा ही पार्षदों का अभाव है। अतः गणेश मूर्ति के साथ उनके परिवार और पार्षदों के अंकन का विकास मन्दिर–वास्तुशास्त्र के इतिहास–क्रम द्वारा समझा जा सकता है। गणेश जी का प्रथम अंकन मन्दिर के मुख्य द्वार या महाद्वार पर हुआ । बाद में अनका अंकन अग्रमंडप के सामने अवस्थित मण्डप के स्तम्भों में मूर्तियों के साथ किया गया है। गणेश जी धीरे–धीरे पार्श्व देवता के रूप में विकसित हुये। शिव मन्दिर के पार्श्व देवताओं में पार्वती, महिषासुरमर्दिनी, कार्तिकेय व गणेश जी थे। इस तरह के मन्दिर खुजराहों में अधिक है जिनमें कि वह अपनी माता–पिता के साथ अंकित है। इनमें खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर, जगदम्बी मन्दिर और चित्रगुप्त मन्दिर प्रमुख हैं जिनमें इस तरह की मूर्ति मन्दिर के अन्तराल में उत्तरी दीवार व दक्षिणी दीवार में बनी रथिका, महामण्डप व गर्भग्रह में पश्चिमी ऊर्ध्व भद्र रथिका पर अंकित है। कोंच के भूतेश्वर मन्दिर और गढ़ी के गणेश मन्दिर के गर्भग्रह में भी श्रीगणेश के साथ शिव, नन्दी पार्वती की प्रतिमायें दर्शायी गई है।

सीरोन–खुर्द गाँव के आधुनिक मन्दिर में इस तरह के विग्रह देखे गये हैं। सीरोन खुर्द गाँव के आधुनिक मन्दिर में इस तरह के विग्रह देखे गये हैं। इस मन्दिर के वाह्रय भाग में एक उमा महेश्वर प्रतिमा के दाहिनें और बायें पार्श्वो मे गणों के चित्रांकन के साथ पाठपीठ पर नन्दी के अतिरिक्त गणेश और कार्तिकेय भी प्रदर्शित हैं।

जब से गणेश जी द्वार देवता के रूप में मन्दिर वास्तुकला में अंकित हुये उस समय उनके साथ द्वार पर कुबेर, भैरव ,व पार्वती दर्शाये जाने लगे, दिक्पालों के साथ भी गणेश जी का अंकन हुआ है। दुधई चांदपुर से प्राप्त एक मूर्ति में श्रीगणेश अष्टदिक्पालो के साथ चित्रित है जो झांसी के रानी महल में सुरक्षित है। लेकिन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में भैरव और कुबेर के साथ अंकित गणपति मूर्ति देखने में नही आई है। शैव मन्दिरों में बाह्रय भित्ति में वेदिबन्ध के ऊपर निर्मित सप्तमातृकाओं के साथ गणेश जी का अंकन शैव सिद्धान्त की धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप बताया गया है। यहीं सप्तमातृकायें खजुराहों, देवगढ़ चांदपुर दुधई की कुछ गणपति प्रतिमाओं के साथ नृत्यमुद्रा में है। यही कुछ मूतियो में मृदंग, बासुरी , करताल, वीणा, मजीरा आदि वाद्ययन्त्रों को बजाते हुये पार्श्वचरों का अंकन हुआ है। कुछ मूर्तियो में अंजकल–मुद्रा में हाथ जोडे हुये एक दो भक्त, परिचारिकायें और कुछ की प्रभावलियों में विद्याधरों के एक दो युगल भी अंकित है। इसके अतिरिक्त मकर मुख एवं गगनचारी की आकृतियां,शार्दल, वृषभ, नृत्य मुद्रा में अंकित स्त्री पुरुष की आकृतियों के कारण मुख्य प्रतिमा का आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है। खजुराहों मे इस तरह

की मूर्ति लक्ष्मण मन्दिर के प्रधान अधिष्ठान रथिका में और खजुराहों संग्रहालय में है जिनकी संख्या क्रमशः 1120, 1118, 1122, 1126, 1129 है। इनमें से एक मूर्ति विश्वनाथ मंदिर में भी प्रतिष्ठित है। चाँदपुर दुधई की मूर्तियां रानी संग्रहालय, झांसी में सुरक्षित है। यहां इस प्रकार के मूर्ति लक्षण प्रतिमा संख्या 6, 7, 8, 9, 14 और 364 में देखे गये है। राजकीय संग्रहालय झांसी में इस तरह मूर्ति प्रतिमा संख्या 81.15, 81.45, 81. 95 में प्रदर्शित है। जालौन जनपद की नृत्य मूतियों में इस तरह लक्षण नहीं पाये गये है।

वाहन मूषक :-

कुछ शास्त्रों में गणपति के साथ उनके वाहन मूषका का भी उल्लेख मिलता है। वसुधरा ददौ तस्मै वाहनाय च मूषकम्[1]। जालौन जनपद क्षेत्र की अधिकांश गणेश मूर्तियों के पादपीठों पर मूषक चित्रित मिलता है। यहाँ की कुछ मूर्तियों में मूषक श्रीगणेश के चरणों के पास चुपचाप बैठा है। कुछ में लड्डू खाते हुये प्रदर्शित है। एक मूर्ति में श्रीगणेश अपना बायां पैर चूहे के ऊपर रखे हुये है। बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में प्राप्त एक पाषाण पत्रक पर गणेश मूषक को अपना वाहन बनाये हुऐ हैं। इसी प्रकार जालौन में भी मूषक पर सवारी करते हुए गणपति प्रतिमा प्राप्त हुई है जो काशीनाथ मुहल्ला में श्री गोपाल वाकणकर के निजी संकलन में है। खुजराहों में भी गणेश की पादपीठ पर मूषक चित्रित है लेकिन यहां की कुछ मूर्ति में मूषक केवल एक मोदक नही अपितु अपने सामने रखे हुये मोदक पात्र से मोदक खाने में व्यस्त है। यहाँ तक कि खजुराहों में वाहन मूषक की एक स्वतंत्र मूर्ति मिली है। इसमें वह एक मोदक पात्र के ऊपर अपने आगे के दो पैर और मुख रखकर मोदक खाने को उद्यत-सा प्रदर्शित है। यह मूर्ति खजुराहो संग्रहालय,में है। कुछ मूर्तियों में वह अपने स्वामी के साथ नृत्य करने में तल्लीन प्रदर्शित होता है। चांदपुर दुधई और राजकीय संग्रहालय, झांसी की मूर्तियों में भी उनके पादपीठ पर उनका वाहन मूषक अंकित है।

शास्त्रों में गणेश के वाहन के रूप में सिंह, मयूर व अश्व का भी उल्लेख मिलता है। इस क्षेत्र में गणेश की इस तरह की एक भी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। श्रीगणेश जी की वेश-भूषा, अलंकार, पार्षद तथा आयुध और वाहन आदि सब दिव्य है। इनके चिन्तन मात्र से मनुष्य का हृदय स्वानन्दलोक के अधिपति श्री गणेश जी की सहज भक्ति का अधिकारी होकर समस्त सिद्धियों से सम्पन्न हो जाता हैं इन सभी लक्षणों से युक्त गणपति प्रतिमा निर्माण के लिये अनेक प्रकार के

---

1 ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, गणपति खण्ड, 13.12

द्रव्यों का प्रयोग होता रहा है। गणेश पुराण में गणेश जी की मूर्तियों के सन्दर्भ में कुछ धातुओं व पदार्थों का उल्लेख है जिनमे मुख्य है गडकीय पाषाणों से निर्मित मूर्तियाँ[1] इसके अतिरिक्त कुछ अन्य द्रव्यों जैसे कश्मीरी पाषाण[2] रत्नकांचन[3], स्फटिक[4], मिट्टी[5], सुवर्ण[6] और लकडी[7] की प्रतिमा निर्माण का वर्णन भी प्राप्त होता है। सात प्रकार के द्रव्यो का उल्लेख गणेश प्रतिमा के निर्माण हेतु गणेश पुराण में हैं। समस्त भारत में जहां–जहां भी गणेश प्रतिमायें स्थापित की है, शिल्पियों ने उन्हें शास्त्रानुसार द्रव्यों से ही गढ़ा है। बुन्देलखण्ड में गणेश की अपार मूर्तियां प्राप्त है। ये मूर्तियों विभिन्न प्रकार के पत्थर पीतल, मूंगा, पन्ना, मानिक, मोती, पुखराज, लाजवर्त आदि जवाहरातों तथा मिट्टी की विभिन्न प्रकार की मूर्ति स्वरूप में मिलती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जालौन सहित समस्त बुन्देली शिल्पियों ने जहां एक ओर गणेश मूर्तियों के चित्रण में अधिकांशतः शास्त्र–निर्दिष्ट लक्षणों तथा पूर्व–प्रचलित कला परम्पराओं का पालन किया है, वहीं दूसरी ओर वे अपनी मौलिक कलाभिव्यक्ति द्वारा गणेश–प्रतिमा–निर्माण की कुछ नूतन परम्पराओं और आदर्शों की स्थापना में भी सक्षम हुए हैं।

---

1. 'लसत्कांचनशिखरं चतुर्द्वारं सुशोभनम्।
   प्रतिमां स्थापंयामास् गणडकीयोपलैः कृताम्।। गणेश पुराण, 1,18,22
2. 'ततः कश्मीर पाषाण भवां मूर्ति गजाननीम् गणेश पु0 1.39.2.2.
3. वैनायिकी महामूर्ति रत्नकांचननिर्मिताम्। वही, 21,10–11
4. स्थापयामास शक्रोऽपि स्फटिकी मूर्तिमादरात्। वही, 1,34,37
5. 'मृत्तिकां सुंदरा स्निग्धां क्षुद्रपाषाण वर्जिताम्।
   सुविशुद्धामवल्मीकाम् जल सिक्तां विमर्दयेत्।
   कृत्वा चारूतरां मूर्ति गणेशस्य शुभां स्वयंम्।।
   गणेश पुराण, 1.49–10
6. " तस्योपरि लिखेद्यन्त्र यागमोक्त विधानतः।
   तत्र मूर्ति गणेशस्य सौवर्णो लक्षणन्विताम्।। वही, 1,69,14
7. मन्दारमूलै मूर्ति कष्त्वा यः पूजयेन्नरः। वही, 2.35,19

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्याय

उपसंहार

जालौन–जनपद में गणेश मूर्तियों का अध्ययन करने के पश्चात् इतना तो स्पष्ट है कि जालौन के मन्दिरों में गणेश मूर्तियों को विशिष्ट स्थान प्राप्त है और ये मूर्तियां जालौन क्षेत्र के पौराणिक, धार्मिक व सांस्कृतिक महत्व को दर्शाती है। जालोन में मराठों का गणेश महोत्सव सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक था जिसका निर्वाह आज भी पूर्ण मनोयोग से यहां का जनमानस अपने हृदय में धारण किये हुये हैं। जालौन–जनपद के मन्दिरों में विद्यमान प्रथमपूज्य देव श्रीगणेश की मूर्तियां प्रतिमा विज्ञान की दृष्टि से भी अपना महत्व दर्शाती हैं। यहां विघ्न विनाशक श्रीगणेश की अपार मूर्तियां प्राप्त हैं जिनमें गणेश के विविध स्वरूपों की झांकी हमें देखने को मिलती है। इन गणेश स्वरूपों में जो प्रतिमा–लक्षण देखने को मिले, उनसे यही ज्ञात होता है कि यहां के शिल्पी को शास्त्रों का बहुत ज्ञान था, क्योंकि इन गणपति प्रतिमाओं को बनाने में उन्होंने शास्त्र–निर्दिष्ट परम्पराओं का ही पालन किया हैं अतः इस शोध में शास्त्रों में वर्णित जितने भी रूपों का वर्णन किया गया है उनमें से अधिकांश रूपों के दर्शन हमें यहां के मन्दिरों में प्राप्त हुये हैं जैसे रिद्धि–सिद्धि युक्त नृत्यमुद्रा में गणेश, कमलासीन, मूषकासीन और पद्मासन मुद्रा में श्रीगणेश के विभिन्न रूप विशेष दर्शनीय है। इसके साथ ही यहां की कुछ मूर्तियों में मौलिकता और नवीनता के भी दर्शन होते हैं जिनको यहां के शिल्पियों ने अपनी कल्पना–शक्ति के आधार पर गढ़ा है। इन मूर्तियों में प्रभामण्डल में स्थित श्रीगणेश है, चंवर डुलाती सेविकाओं सहित गणेश और पंचमातृकाओं की मूर्तियां प्रमुख है जो यहां के बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई और महात्मा गांधी हिन्दी संग्रहालय कालपी में सुरक्षित हैं।

जनपद–जालौन की गणपति मूर्तियों को जहां शास्त्रों में निर्दिष्ट सामान्य लक्षणों के आधार पर वर्णित किया है वहीं उनकी प्राचीनता को वैदिक परम्परा से जोड़ने का भी प्रयास किया गया, जो उन्हें अन्य देवों में श्रेष्ठ और शीर्ष स्थान प्रदान कराती है। इसी कारण आगे चलकर पंचदेवों अर्थात वैष्णव, सौर, शाक्त और शैव सम्प्रदाय के उपासकों में श्रीगणेश को सर्वोपरि देव माना गया। गणेश की अग्रपूजक स्वरूप पौराणिक काल से ही भारतीय उपासना पद्धति में प्रचलित रहा है। कालान्तर में गणेश उपासना पद्धति पूर्णतया विकसित स्वरूप में प्राप्त होने लगी जिसमें श्रीगणेश के धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक स्वरूप के विकास के साथ ही मूर्तिपूजन सम्बन्धी विभिन्न क्रियाविधियां शामिल हुई। प्रस्तर, स्फटिक, रत्नकांचन, मृत्तिका, काष्ठ द्वारा निर्मित गणपति मूर्तियां पूजी जाने लगी। विभिन्न प्रकार के व्रत, उपवास तथा कुछ व्रतों के दौरान मूर्ति

स्थापन व व्रत समाप्त होने पर रात्रि जागरण, गाजे–बाजे के साथ नृत्य करते हुये मूर्ति विसर्जन हेतु जाने की परम्परा का भी उल्लेख प्राप्त होने लगा। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत के साधारण लोकजीवन में श्रीगणेश देव का महत्व सर्वोपरि देव के रूप में हो गया। बुन्देलखण्ड के जनपद–जालौन के लोकाचार, व्यवहार एवं रीतिरिवाजों के सर्वेक्षण से इस बात की पुष्टि सहज ही हो जाती है।

जनपद–जालौन में गणपति मूर्तियां यहां के मन्दिरों के गर्भग्रह के द्वार मण्डल, महामण्डल, प्रवेश द्वार, द्वार के चौखटों, आलों और लिन्टरों पर अंकित मिली है। इस तरह के मन्दिरों में लक्ष्मीनारायण मन्दिर, उरई, गणेश मन्दिर, जालौन और कोंच, बड़ीमाता मन्दिर, सिंह वाहिनी मन्दिर, कोंच और कालपी के गणेश मन्दिर प्रमुख है। लक्ष्मीनारायण मन्दिर में रिद्धि –सिद्धि युक्त गणेश लक्ष्मी देवी और नारायण भगवान के गर्भगृह के द्वार पर दाहिने तरफ एक आले में स्वतंत्र रूप से विद्यमान हैं। जनपद–जालोन के सभी गणेश मन्दिरों में गर्भग्रह में स्थापित हैं।

कोंच के बड़ी माता मन्दिर के प्रवेश द्वार पर ही दाहिने तरफ बने एक स्वतन्त्र कक्ष में विराजमान है तो सिंहवाहिनी मंदिर के प्रवेश द्वार के लिन्टर पर चित्रि हैं श्रीगणेश की कुछ मूर्तियां मन्दिरों की जगती पीठ, चबूतरों और वृक्षों के नीचे भी रखी हुई प्राप्त हुई है। इनमें कोंच के भारत माता मन्दिर का संकलन महत्वपूर्ण है। इस मन्दिर के गर्भगृह की पीठ पर एक परिसर में लगभग 50 प्रस्तर मूर्तियां विद्यमान हैं जिनमें गणेश की मूर्ति के साथ ही एक मूर्ति ऐसी भी प्राप्त हुई है जो उनके गजमुखी प्रतीक चिन्ह हाथी के अंकन में है इस मूर्ति में हाथी स्वाभाविक मुद्रा में झूमते हुये प्रदर्शित हैं। यहां गणेश सप्तमातृका पट्ट पर भी प्रदर्शित हैं। श्रीगणेश की सप्तमातृकाओं सहित मूर्तियां खजुराहों और देवगढ़ में प्राप्त हुई हैं। जबकि जालौन–जनपद में बड़ी माता मन्दिर उरई और हिन्दी भवन, कालपी में श्री गणेश पंच मातृकाओं सहित अंकित हैं।

जनपद–जालोन के मन्दिरों में प्राप्त सभी मूर्तियां 17 वीं शताब्दी से लेकर 19 वीं शताब्दी तक की प्रप्त हुई है लेकिन बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में ये मूर्तियां 6 वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक समय तक की संग्रहीत हें जो स्थानीय क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं। ये मूतियां अकबरपुर, इटौरा, मौखरी माधौगढ़ उरई कालपी, कोंच से प्राप्त हुई हैं। जयपुर ओर ओंरछा से भी कुछ मूर्तियां मिली हैं। मूर्तियां गुप्तकालीन और प्रतिहार कालीन कम हैं जबकि चन्देलकालीन ओर मराठाकालीन मूर्तियों की अधिकता देखने को मिलती है। लेकिन खजुराहों, दुधई चांदपुर सीरोनखुर्द ओर कालिंजर की चन्देलकालीन मूर्तियां अधिक अलंकृत हैं जबकि जनपद–जालौन की मूर्तियां का अलंकरण साधारण हैं। चन्देल कालीन मूर्तियों की मुख्य विशेषता यह है कि उन्हें प्रस्तर

पटियों पर उभारकर बनाया जाता है। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में इस तरह की एक मूर्ति प्रदर्शित है जो कि 16वीं शताब्दी की है। इस प्रस्तर फलक पर श्रीगणेश मूषकासीन चतुर्भुजी रूप में अंकित हैं। इसके अतिरिक्त पंच मातृकाओं सहित वाली मूर्तियां भी प्रस्तर फलक पर उत्कीर्ण हैं।

जनपद–जालौन में गणेश की मूर्तियां विशेषतः दो शैलियों में निरूपित हैं– आसनस्थ और नृत्यत। इस क्षेत्र में श्रीगणेश की आसनस्थ मूर्तियां नृत्यत् मूर्तियों की अपेक्षा अधिक देखने को मिली है। आसनस्थ मुद्राओं में भिन्नता पाई गई है। कहीं पर वे कमल पर विराजमान हैं कही मूषक को अपनी सवारी बनाये हुये हैं, तो अन्यत्र वे राजलीलासन व पद्मासन आदि मुद्राओं में हैं। बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई में सुरक्षित पाषाण पत्रक पर उत्कीर्ण मूषकासीन गणेश और किलाघाट कालपी के पातालेश्वर मन्दिर की कमलदल पर राजलीलासन मुद्रा में बैठी हुई प्रतिमायें अद्विितीय है। ये सभी आसनस्थ मूर्तियां चतुर्भुजी प्राप्त हुई हैं। कुछ ही मूर्तियां द्विभुजी हैं जो बैठी हुई मुद्रा में हैं इस प्रकार की मूर्ति में बुन्देलखण्ड संग्रहालय में संग्रहीत माधौगढ़ ओर कालपी से प्राप्त मूर्ति प्रमुख हैं। इन मूर्तियों में वह पद्मासन में बैठे हुये हैं।

यहां पर नृत्य गणेश की छठी शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक की प्रतिमायें प्राप्त हुई है। इटोरा ग्राम से प्राप्त पत्थर की छठवीं शताब्दी की नृत्यगणेश मूर्ति अत्यन्त मन–मोहक है। मन्सिल माता, उरई और कोंच की गढ़ी पर स्थापित 17 वीं शताब्दी की प्रतिमा मराठाकालीन संस्कृति को दर्शाती हैं। लेकिन इन प्रतिमाओं में श्रीगणेश के हाथों की नृत्यमुद्रायें और थिरकन का लालित्य कालिंजर ओर ललितपुर जनपद के सीरोन क्षेत्र की खुदाई में प्राप्त अष्टभुजी नृत्य मूर्तियों से साम्य रखती हैं जो कि चन्देलकालीन हैं। जालौन जनपद के इन दोनों क्षेत्रों से प्राप्त गणपति मूर्तियां अष्टभुजी ही हैं इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन मूर्तियों पर चन्देलकालीन कला का पूर्ण प्रभाव पड़ा। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड संग्रहालय, उरई में नृत्य गणेश की द्विभुजी कई सुन्दर प्रतिमायें सुरक्षित हैं। गणपति की दो भुजाएं नृत्यमुद्रा में वक्ष पर मुड़ी हुई प्रदर्शित रहती हैं तथा उनके नृत्यरत पदों की थिरकन का निरूपण अवश्यक रूप में होता है। जिनमें से अकीक पर प्रकृति द्वारा निर्मित नृत्य मुद्रा की गणेश प्रतिमा बहुत ही लुभावनी हैं।

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि जनपद जालौन में श्रीगणेश की नृत्य मूर्तियां सामान्यतः द्विभुजी और अष्टभुजी रूप में दर्शायी गई हैं जबकि खजुराहों में श्रीगणेश की नृत्य मूर्तियां द्विभुजी, चतुर्भुजी, अष्टभुजी दशभुजी, द्वादशभुजी तथा षोडशभुजी रूपों में प्राप्त हुई हैं। राजकीय संग्रहालय झांसी की चौदह भुजी और बानपुर की बाईस भुजी नृत्य मूर्ति अत्यन्त मनोहर रूप में दर्शनीय हैं।

अखौरा: जनपद ललितपुर की नृत्य मूर्तियां दो रूपों चतुर्भुजी और अष्टभुजी में ही प्रदर्शित हैं। जनपद–जालौन की नृत्य मूर्तियों के पार्श्व में बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों की तुलना में मृदंग, वंशी, आड़ा तथा मंजीरा आदि वाद्य यंत्रों का अभाव रहा है।

उपर्युक्त प्रतिमाओं में श्रीगणेश एकदन्त, लम्बोदर और शूर्पकर्ण ही दिखाए गए हैं। वे गजानन है और उनकी शुण्ड अधिकतर बायी ओर और कभी–कभी दाहिनी ओर मुड़ी रहती हैं। दाहिनी ओर मुडी सूंड वाली मूर्ति कालपी के गणेश मन्दिर, जालौन के गोविन्देश्वर मन्दिर में प्रदर्शित हैं। बायी ओर और कभी–कभी दाहिनी ओर मुड़ी रहती हैं। दाहिनी ओर मुडी सूंड वाली मूर्ति कालपी के गणेश मन्दिर, जालौन के गोविन्देश्वर मन्दिर में प्रदर्शित हैं। बायी ओर मुडी सूंड अधिकांशतः बायी ओर मोदक–पात्र के ओर मुड़ी हुई होती है। जालौन–जनपद में श्रीगणेश के हाथ में मोदक–पात्र के जगह केवल मोदक ही लिये हुये हैं। बहुत ही कम ऐसी प्रतिमाएं हैं जिसमें उनकी शुण्ड सामने लम्बत पड़ी दर्शायी गई है। इस तरह की विशेषता कोंच के भूतेश्वर मन्दिर की आधुनिक गणेश मूर्ति में दिखलाई पडती है। खजुराहों में भी इस तरह की मूर्ति प्राप्त है।

इस क्षेत्र में श्रीगणेश अपनी भुजाओं में मोदक, फरसा, परशु, गदा, बरछी, शंख तलवार नागदेव, वस्त्र माला, जपमाला, कमण्डल और कमल की बौड़ी धारण किये हुये हैं। बुन्देलखण्ड के अन्य क्षेत्रों में प्राप्त कुछ सामान्य लक्षण अंकुश, स्वदन्त पद्म मोदकपात्र आदि जनपद जालौन की मूर्तियों मे नहीं दिखलाई पड़ते हैं।

श्री गणेश की मूर्तियां अलंकरण की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सामान्यतः यहां की मूर्तियों में श्रीगणेश मुकुट मोतियों के हार, वस्त्र तथा कु चुने हुये आभूषणों आदि से अलंकृत हैं। कोंच गढी की अष्टभुजी मूर्ति में श्रीगणेश फूलों की माला, हार, वाजूबन्ध, कंकण, पायल आदि आभूषणों से अलंकृत हैं। लेकिन यहां की मूर्तियों में सर्प के यज्ञोपवीत और उदरबन्ध से सुसज्जित प्रतिमाओं का अभाव है।

जनपद–जालौन की गणपति मूर्तियों में उनका वाहन मूषक भी प्रदर्शित है। जो उनकी पादपीठ पर बैठा प्रदर्शित है। कुछ मूर्तियों में वह उनके वाहन के रूप में भी प्रदर्शित है, इस तरह की मूर्ति बुन्देलखण्ड संग्रहालय उरई और जालौन में गोपाल वाकणकर के निजी स्वामित्व में देखी गई है। खजुराहों में श्रीगणेश का वाहन मूषक कुछ अन्य विशेषताओं के साथ देखा गया है। वह पादपीठ पर मोदक खाने में व्यस्त अथवा नृत्य मूर्तियों में अपने स्वामी के साथ नृत्य में तल्लीन प्रदर्शित हुआ है। खजुराहों में मोदक खाते हुए वाहन मूषक की एक स्वतन्त्र मूर्ति भी मिली है।

वाहन मूषक की तरह की मूर्ति जनपद–जालौन में देखने को नहीं मिली।

गणेश की इन प्रतिमाओं के निर्माण में अधिकतर बलुआ पत्थर, लाल पत्थर, लाल बलुआ पत्थर, संगमरमर पत्थर, काला पत्थर, भूरा गौरा पत्थर, मूंगा पाउडर, हरा जेड पत्थर का प्रयोग हुआ है। गुप्तकाल की एक गणेश प्रतिमा मिट्टी (टैराकोटा) द्वारा निर्मित है। और एक अन्य प्रतिमा पत्थर पर उकेरी गई है। ये दोंनो ही प्रतिमायें बुन्देलखण्ड संग्रहालय की निधि है। इन प्रतिमाओं के अतिरिक्त यहां टाइगर, स्टोन, मोती, पन्ना, माणिक, पुखराज, मूंगा आदि की भी प्रतिमायें हैं। धातुओं से निर्मित प्रतिमायें भी यहां मिली हैं। कलाकारों और मूर्तिकारों ने हथौड़ा ओर छेनी के माध्यम से इन गणेश प्रतिमाओं को पत्थर पर इस प्रकार अंकित किया है कि आज भी ये प्रतिमायें अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़ती हैं और अकस्मात ही हमारे मन को मोह लेती हैं। मूर्तिकारों ने श्रीगणेश के अंग विन्यास चेहरे की बनावट और भाव भंगिना के प्रदर्शन में पूर्णता को प्राप्त किया है। श्रीगणेश अधिकांश प्रतिमाओं में अपने शान्त–स्वरूप में ही प्रदर्शित हैं उनके विकट स्वरूप का प्रायः अभाव ही रहा है। श्रीगणेश के विविध स्वरूपों में उनकी नृत्य मूर्तियां विशेष दर्शनीय हैं क्योंकि श्रीगणेश की नृत्य–मुद्रा में सौन्दर्यता के पूर्ण दर्शन प्राप्त होते हैं। जनपद–जालौन की मराठाकालीन गणपति नृत्य–मुद्रा में शिल्पकार सुन्दर अलंकरण, शरीर का मनोहारी गठन, अलौकिक शान्ति पैरों की नृत्य मुद्राओं में तथा अनेक हाथों के गतिशील विन्यास द्वारा नृत्य की आवर्तित गति के चित्रण में अत्यधिक सफल हुआ है। इस प्रकार मूर्तिकाल की दृष्टि से गणेश प्रतिमायें अत्यन्त प्रभावोत्पादक, बौद्धिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक एवं कल्याण की भावना से परिपूर्ण हैं।

जनपद–जालौन के मन्दिरों में गणेश प्रतिमाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और गणेश प्रतिमाओं के विविध रूप यहां रूपायित हुए हैं। अधिकांशतया इन प्रतिमाओं के द्वारा धारण किए गए लांछनों का निदर्शन परम्परागत व शास्त्र सम्मत है। जो शास्त्र गणेश की मूर्तिकला और पूजा के विकास तथा प्रसार पर विशिष्ट प्रकाश डालते हैं उनमें से प्रमुख है – वृहतसंहिता, गणेश पुराण, मुद्गल पुराण, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, विश्वकर्मा शिल्प, रूपमण्डन, अशुमद–भेदागम, सुप्रभेदागम, विश्वकर्मशास्त्र, पूर्वकरणागम शिल्परत्न, मानसोल्लास, पद्मपुराण, ब्रह्मपुराण, भविष्यपुराण, वाराहपुराण, नारद पुराण, गरूण पुराण आदि शुभ लक्षणों से युक्त गणेश मूर्तियां कल्याणकारी मानी जाती थीं। अतः गणेश–मूर्ति पूजा के साथ ही उनके परिवार, पार्षद, अनुचरों उनकी शक्तियों, पत्नियों रिद्धि–सिद्धि और कहीं–कहीं कार्तिकेय व स्कन्द का अंकन भी मूर्तिकला में प्राप्त होने लगता है। बुन्देलखण्ड का मध्यकालीन राजनीतिक युग सांस्कृतिक और ध

ार्मिक सहिष्णुता का युग था, इसी कारण पंचदेवोंपासना भी प्रचलित थी। इतिहासकार राधाकृष्ण बुन्देली के अनुसार बुन्देलखण्ड में गुप्तकाल से लेकर चंदेलकाल तक शैव सम्प्रदाय का प्रभाव था। अतः इसी कारण जनपद जालौन में शिव के अनेक मन्दिर हैं। कार्तिकेय ओर गणेश शिव पार्वती के पुत्र हैं इसी कारण शिव मन्दिर में उनकी मूर्तियां होना स्वाभाविक ही है लेकिन जनपद–जालौन में कार्तिकेय की मूर्ति का अंकन नहीं दिखाई दिया। शिव मन्दिरों में गणेश की उपस्थिति वाले कोंच के महाकालेश्वर भूतेश्वर, कालपी के पातालेश्वर मन्दिर, ढोढेश्वर मन्दिर प्रमुख है।

पंचदेवोपासना में तो नहीं लेकिन विभिन्न देवी देवताओं के मध्य गणेश की मूर्ति कालपी के ढोढेश्वर मन्दिर में प्राप्त हुई है। इस मन्दिर के गर्भग्रह तथा सुराही के मध्य गर्भगृह के अष्ट पहलुओं पर शिव पार्वती, ब्रह्माजी, सीताराम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, हनुमान जी, राधा कृष्ण, श्रीगणेश आदि की मूर्तियां बनी हैं। इसी मन्दिर के गर्भगृह के उत्तरी दीवाल पर सिंहवाहिनी, पूर्वी दीवाल पर चतुर्भुजी विष्णु तथा पश्चिमी दीवाल पर श्रीगणेश की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार कोंच के महाकालेश्वर मन्दिर में शिव नन्दी, गणेश की मूर्तियों के साथ सूर्य भगवान का भी आकर्षण विग्रह है जो पंचदेवों में से एक देव है। स्मार्तलिंग में पंचदेवों में शिव, शक्ति, सूर्य गणपति एवं कार्तिकेय का सांकेतिक रूप से अंकन होता है। इन पाषाणिक मूर्तियों का अंकन उत्तर भारत में कालिंजर, खजुराहों, महोबा, वाराणसी, मिर्जापुर, हरिद्वार आदि स्थानों से भी मिले हैं। जनपद–जालौन में गणपति मूर्तियों के साथ उनके पार्षदों का अंकन भी नहीं दिखलाई दिया। लेकिन वह अपनी शक्तियों पंचमातृकाओं और पत्नी रिद्धि–सिद्धि के साथ अवश्य प्रदर्शित हैं। इस तरह की मूर्तियां उरई कालपी और जालौन में देखी, गई हैं।

पुराणों में गणेश के मंदिरों का स्थापत्य शास्त्र के सन्दर्भ में उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। श्रीगणेश नाम की इतनी महिमा है कि उन्हीं के नाम के जनपद–जालौन में कुछ महत्वपूर्ण स्थलों के नाम अवश्य प्राप्त हुये हैं जिनमें से कालपी नगर के बीचों–बीच गणेश गंज मुहल्ला है मुगलकाल एवं चीनी यात्रियों के दस्तावेजों में इसकी उपस्थिति है। इस मुहल्ले में भगवान गणेश का मन्दिर बना हुआ है जिसका जीर्णोद्धार बालाजी बाजीराव पेशवा ने करवाया था। यह मन्दिर 60x60 फुट के क्षेत्र में स्थापित है। यह पश्चिमाभिमुख मन्दिर 21x21 के चबूतरे पर 19x19 फुट में मन्दिर का गर्भग्रह स्थापित है। इस गर्भग्रह की ऊँचाई 8 फुट है। जिसके ऊपर 7 फुट ऊंची गोल डाट की छत है और इस छत के ऊपर शुक नाशिकायुक्त विशाल ऊर्ध्वाकार चतुष्कोणीय विमान अंकित है जिसकी ऊंचाई 20 फुट है। इस विमान की चारों भुजाओं पर विमान आधार से 10 फुट की ऊचाई पर शुक नासिका स्थान पर एक अन्य विमान की आकृति के दोंनो ओर एक एक अन्य

विमानाकृति अंकित है। इस मन्दिर में गणेश जी की तीन मूर्तियां हैं। जालौन में भी गणेश के नाम का एक मुहल्ला है और इसमें भी एक गणेश मन्दिर स्थित है। कोंच की गढ़ी पर भी श्रीगणेश का लघु मन्दिर स्थापित है यह मराठाकालीन है। इस प्राचीन गणेश मन्दिर का जीणोद्धार तथा प्रदक्षिणा पथ रेलिंग व फर्श का निर्माण सन् 2000 ई0 में हुआ था। इसी जनपद के ग्रामीण क्षेत्र भेंड में भी गणेश का मन्दिर है। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड के अन्य स्थल भी गणेश नाम की महत्ता से अछूते नहीं रहे। बरवासागर और चित्रकूट में गणेश बाग निर्मित हैं। बरवासागर का गणेश बाग चन्देलकालीन है और इस बाग की प्राकृतिक सुषमा के कारण ही यह स्थान 'बुन्देलखण्ड का कश्मीर' भी कहलाता है। चित्रकूट का गणेश बाग मराठाकालीन विरासत है। लगभग 1824 में मराठा शासक विनायक राव पेशवा ने अपनी रानी के सुख–सुविधा व नोरंजन के साधन जुटाने के लिये गणेश बाग का निर्माण कराया था। इस बाग में बने मंदिरों में खजुराहों के नाम से जाना जाता है। कालिंजर जो कि शिव आराधना का प्रमुख केन्द्र था ओर शिव, गणेश ओर कार्तिकेय ही यहां के महत्वपूर्ण देवता थे। अतः कालिंजर किले में सीढियों द्वारा दुर्ग पहुंच मार्ग में पड़ने वाले सात दरवाजों में दूसरे नंबर का दरबाजा ही गणेश द्वार कहलाता है। बुन्देलखण्ड के ही कुछ अन्य क्षेत्रों में उनके विनायक और गणपति नाम के भी महत्वपूर्ण स्थल है। मध्यप्रदेश के जिला सतना में रामवन तीर्थ स्थल के विशाल द्वार के सामने विनायक चौक है, इस चौक में बने अर्द्धगोलाकार स्तम्भ पर रामचरित मानस के मंगलाचरण का श्लोक और सरस्वती और गणेश की मूर्तियां अंकित है। इसी प्रकार सागर जिले में मराठा शासक द्वारा निर्मित कंजिया उत्तर में विनायका नामक किला दृष्टव्य है। शिवपुरी का औप निवेशिक स्थापत्य का उत्कृष्ट उदाहरण माधव बिलास महल अपने गणपति नामक मण्डल के लिये भी देश–विदेशों में चर्चित है।

जनपद–जालौन में श्रीगणेश के जितने भी विग्रह प्राप्त हुये, वे सभी अत्यन्त भाव प्रधान व सामाजिकता से ओत–प्रोत है। ये गणेश स्वरूप समाज में रह रहे लोगों को समाज के कर्तव्यों का दिशा बोध भी करता है। श्रीगणेश का वामन गज, शूर्पकर्ण, लम्बोदर और एकदन्त आदि स्वरूप जो हमें ज्ञान बोध करता है। कि सामाजिक कार्यों में संलग्न लोगों में अहम नहीं होना चाहिए तथा समाज में अपने को बड़ा बनाकर नहीं अपितु छोटा बनकर ही प्रस्तुत करना चाहिये और अपने कान सदेव चौकन्ने रखना चाहिये। श्रीगणेश परशु धारी हैं जो कि समाज के अन्याय से हमारी रक्षा करने और दूसरे हाथ में रस्सी समाज को एक सूत्र में बांधने का प्रतीक है। इस प्रकार अस्तु श्रीगणेश के स्वरूप का मर्म विशुद्ध सामाजिक है तथा यह हमारे सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता प्रदान करते हुये हमारा मार्ग दर्शन करता है।

गणेश के स्वरूप के सामाजिक महत्व का ही परिणाम था यहां का गणेशोत्सव। यह उत्सव यहां लगभग दो सौ वर्षों से मनाया जा रहा है। जनपद–जालौन के कोंच और ग्राम भेंड के गणेशोत्सव ने यहां की संस्कृति को जीवित रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कोंच का गणेशोत्सव मराठा काल, मुगलकाल और अंग्रेजों के काल में पूरे चरमोत्कर्ष पर रहां सुभाष नगर में रहने वाले पंडित मायाराम त्रिपाठी के यहां सबसे पहले गणेशोत्सव प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख मिलता हैं कोंच में गणेश चतुर्थी को गणेश–प्रतिमा की स्थापना वैदिक विधि विधान से की जाती हैं नगर में जहां अनेक स्थानों पर सार्वजनिक रूप से गणेश जी की कई विशाल मूर्तियां स्थापित की जाती हैं वहीं घरों में भी गणेश प्रतिमा अनेक लोग स्थापित करते हैं। परम्परा के अनुसार भादों शुक्ल नवमी को छोटे गणेश और भादों शुक्ल दसवी की शाम को बड़े गणेश के नाम से मूर्ति विसर्जन स्थानीय सागर तालाब में किया जाता है।

नवमी ओर दशमी की दोपहार से ही लवली चौराहा से सागर तालाब तक गणेश विसर्जन को आये भक्तों का मेला लग जाता था। गणपत गणेश की जय के नारों से शाम को नगर गुंजायमान रहता था। वहीं रात में हरमोनिया तबला के संगीत, घुंघरूओं की झंकार और सुरीले स्वरों पर नृत्यांगनाएं नृत्य करती थीं। दसवीं की रात को सागर तालाब के किनारे स्थित छदामी लाल गुप्त की गद्दी पर जबाबी नृत्य की ऐसी शमां बंधती थी कि देखने वाले वाह–वाह करने के साथ ही अपने जेबें खाली कर देते थे। बाद में नगर में कई स्थानों पर यह परम्परा प्रारम्भ हो गई। बजरिया में छुन्ना नगरिया की दुकान में गणेश प्रतिमा स्थापित होती थी तो सामने के रामलीला मैदान में नृत्य का कार्यक्रम होता था। इसी प्रकार सेंवड़ा कुआं, चोराहा पर महादेव चौधरी, तिलकनगर में बुल बुल की गद्दी, बजाज कमेटी की रामलीला मैदान सर्राफा बाजार में सर्राफा कमेटी चन्द कुआं पर महेश चन्द्र अग्रवाल की गद्दी पर गणेश मूर्ति स्थापना और वैश्या नृत्य के कार्यक्रम चलते थे। सम्पूर्ण नगर में फैले नृत्य के स्थानों से पूरे नगर में रात्रिकालीन उत्सव का माहौल रहता था।

पुराने लोग बताते हैं कि कोंच की परम्परा के अनुसार यहां के गणेशोत्सव में मुस्लिम बन्धु भी पूरी तरह सम्मिलित रहते थे। चन्दकुआं पर जहां चन्दुबहना के यहां गणेश प्रतिमा स्थापित होती थी वही बजरिया में बाबू खां टेलर मास्टर पूरे रास रंग के साथ गणेशोत्सव आयोजित करते थे। दर्शकों में ओर कलाकार वर्ग में भी मुस्लिम समुदाय की संख्या अच्छी खासी होती थी। कला का गणेश दरबार में सात दिनों तक प्रदर्शन करने के लिए उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की अनेक वेश्याये आती थी। इनमें नगर की सोना ओर मलका चर्चित थी तो उरई की कल्लो जौहरा, मुरैना

की कमला सहित डबरा, दतिया समथर, पुखरायां यहां तक की लखनऊ ओर ग्वालियर की प्रसिद्ध वेश्यायें इस मेले में अपनी शिरकत प्रतिवर्ष करती थीं। इसी तरह का गणेशोत्सव जनपद के अन्य स्थानों जालौन उरई और भेंड़ आदि में भी आयोजित होता था। भले ही यहां का गणेशोत्सव बीते दो दशक से औपचारिकता बनकर ही रह गया हो, लेकिन निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि यहां के मन्दिरों में गणेश की मूर्ति जहां लोगों द्वारा धार्मिक आस्था से पूजी जाती थी, वहीं यहां के गणेशोत्सव में स्थापित की जाने वाली गणपति मूर्ति यहां के लोगों में सामाजिक एकता का भाव पैदा करती हैं।

यह तो सर्वविदित हे कि किसी भी देवता को पूजने से पहले श्रीगणेश को सर्वाग्रपूज्य माना गया हे इसी परम्परा पालन शिल्पियों ने जनपद–जालोन के मन्दिरों में भी किया है। यहां पर श्रीगणेश के स्वतंत्र मंदिर भले ही अधिक न हों, परन्तु प्रायः प्रत्येक आस्तिक हिन्दु घर में दुकान मे, व्यवसाय केन्द्र में श्रीगणेश की प्रतिमा चित्रपट या अन्य कोई प्रतीक अवश्य विद्यमान रहता है। यहां के लोग अपना कोई भी काम गणेश देवाराधना से ही प्रारम्भ करते हैं, जो उनकी धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति करने के साथ ही निर्विघ्न कार्य सिद्धि की मनोदशा की संबल प्रदान करके लक्ष्य पूर्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि जनपद–जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूपों की जो प्रतिमायें प्राप्त हुयी हैं, उनसे जनपद–जालौन के मन्दिरों के मूर्तिशिल्प की सम्पन्नता तथा भव्यता का सहज अनुमान लगाया जा सकता हैं साथ ही जनपद–जालौन के मन्दिरों में प्रतिष्ठिापित गणेश प्रतिमायें यहां के सांस्कृतिक गौरव व यहां के लोगों की आस्था को प्रदर्शित करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक ग्रन्थ

अजितागम	–	आनन्दाश्रम, संस्कृत सीरीज पूना
आदिपुराण	–	वाराणसी, 1951
अपराजित पृच्छा	–	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
अमरकोश	–	बनारस, 1950
अंशुभेदागम	–	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना
अष्टाध्यायी	–	चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
ऋग्वेद	–	(सं0एम0एन0) दत्ता, कलकत्ता, 1906
उत्तराकामिकागम	–	टी0 एन0 गोपीनाथ
गणपति अथर्वशीर्ष (उपनिषद्)	–	वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई 1913
गणेश पुराण	–	बरेली प्रकाशन
गणेश पुराणम्	–	नाग प्रकाशन दिल्ली
गणेश पूर्वतापिनी उपनिषद्	–	गीताप्रेस गोरखपुर
गरूण पुराण	–	बम्बई, 1906
गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद्	–	गीताप्रेस, गोरखपुर
छन्दोग्योपनिषद्	–	गीता प्रेस, गोरखपुर
दुर्गासप्तशती	–	गोरखपुर सम्बत् 2040
देवता मूर्ति प्रकरण	–	डा0 निर्मला यादव
नित्य कर्म एवं देव पूजा पद्धति	–	गोरखपुर, 2059
नारद पुराण एक सांस्कृतिक अध्ययन	–	डा0 हेमवती शर्मा बांकेबिहारी, प्रकाशन, आगरा

पद्म पुराण — एम. सी. आप्टे आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना

भविष्य पुराण — बरेली, 1976

मत्स्यपुराण — गीताप्रेस गोरखपुर

महाभारत — गोरखपुर 1933

मुद्गल पुराण — चौखम्भा संस्कृत सीरीज वाराणसी

मनुस्मृति — पूजा संस्करण 1973

ब्रह्मवैवर्त्त पुराण — गीता प्रेस गोरखपुर

रघुवंश — वाराणसी, 1961

श्री रामचरितमानस — गोरखपुर, सम्वत् 2038

रामायण — वाराणसी, विक्रम सम्वत् 2008

रूपमण्डन — बलराम श्रीवास्तव, कलकत्ता

वाराह पुराण — बी. एच. शास्त्री, कलकत्ता 1893

वायुपुराण — बरेली 1967

विष्णु धर्मोत्तर पुराण — बेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई 1912

वृहत्संहिता — एच. कर्म बिब्लियोथिका इण्डिका, कलकत्ता 1864

शारदातिलक — संस्कृत सिरीज तथा तांत्रिक टेक्स्ट

शिल्परत्न — श्री कुमार प्रणीत, उत्तर भाग, शिवपुराण पंचानन, तर्करत्न, बंगवासी प्रेस, कलकत्ता

स्कन्दपुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, बाम्बे

स्तोत्र रत्नावली — गोरखपुर, सम्वत 2038

सुप्रभेदागम — टी0 ए0 गोपीनाथ

श्रीगणेश पंचरत्न — शंकराचार्य

श्रीमद्भागवत गीता — गीता प्रेस, गोरखपुर

सहायक ग्रन्थ (हिन्दी)

अवस्थी, रामाश्रय — खजुराहो की देव प्रतिमायें आगरा, 1967

कुरैशी, नईम — बुन्देली विरासत, ग्वालियर, 1999

गुप्त, अयोध्या प्रसाद — भारतीय कला के विविघ आयाम, उरई

बुन्देलखन्ड का लोकजीवन, उरई

सुरम्य बुन्देलखण्ड, उरई

गुप्त, जगदीश, — प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली 1967

गोयल, श्रीराम — गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ 1984

चौधरी, आर0के0 — प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास

तिवारी, गोरेलाल — बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, प्रयाग सं0 1990

दास, ब्रजरत्न — बुन्देलखण्ड का इतिहास

द्विवेदी, गौरी शंकर — बुन्देलखण्ड का वैभव (प्रथम, द्वितिय, तृतीय भाग)

पाण्डेय, अयोध्याप्रसाद — चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास, प्रयाग 1983

पाण्डेय, राजेन्द्र — भारत का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ 1983

पाण्डेय, रुद्रकिशोर — कालिंजर की शैव प्रतिमायें

पुरवार, हरीमोहन — जनपद–जालौन में श्रीगणेश के विविध स्वरूप उरई, सम्वत् 2053

गौरवशाली कालपी, उरई 2003

प्रकाश, बुद्ध — भारतीय धर्म एवं संस्कृति

मिश्र, उमेश — भारतीय दर्शन, द्वितीय संस्करण, द्वितीय परिच्छेद

मिश्र, रमानाथ — भारतीय मूर्तिकला

मुखर्जी, राधाकुमुद — भारतीय कला एवं संस्कृति

राय, कृष्णदास — भारत की चित्रकला, इलाहाबाद, 1974

लूनिया, वी0एन0 — प्राचीन भारतीय संस्कृति, आगरा 2000

वर्मा, महेन्द्र — बुन्देलखण्ड का इतिहास, मेरठ विक्रम सं0 2056

— चन्देलकालीन कला और संस्कृति (चांदपुर–दुधई के परिप्रेक्ष्य में)

— चन्देलशिल्प में संगीत और नृत्य

वाशम, ए0एल0 — अद्भुत भारत

शुक्ल, रामसजीवन — कोंच के मन्दिर, सरोवर एवं स्मारक, कोंच, 2006

श्रीवास्तव, मधु — बुन्देलखण्ड की लोक चित्रकला

त्रिपाठी, मोतीलाल — बुन्देलखण्ड दर्शन, झाँसी, 1988

त्रिवेदी, एस0डी0 — बुन्देलखण्ड का पुरातत्व, झांसी 1984

अंग्रेजी ग्रन्थ

Agrawal, V.S. - A Catalogue of the Brahmanical Images in Mathura Art.

Alice Getty - Ganesh Oxford - 1936

Arvamuthan T.G. - Ganesh, Madras, 1951

Ganguly,	-	M. Handbook to the Sculptures in the Museum of the Bangiya Sahitya Parishad, Calcutta 1922
Mitra, S.K.	-	The Early Rulers of Khajuraho, Calcutta, 1958
Nigam , M.L.	-	Cultural History of Bundelkhand, Delhi 1983
Nath, R.	-	The Khajuraho, New Delhi, 1980
Roa T.A.G.	-	Elements of Hindu Iconography Vol.-1 Vol. 2 Madras, 1914
Ray, H.C.	-	The Dynastic History of Northern India Vol. II, Calcutta, 1936
Shah K.K.	-	Ancient Bundelkhand, Delhi, 1987
Shukla, Ramesh Chandra	-	Rural India Kalpi Special
Trivedi, S.D.	-	Sculptures in the Jhansi Museum
Vatsa, M.S.	-	The Gupta temple at Deograh, Memoir No- 70

शोध ग्रन्थ

निरंजन, विनीता देवी	–	गणेश पुराण–एक अध्ययनं, कोंच 2006
पुरवार, हरीमोहन	–	जनपद–जालौन के मध्यकालीन प्रमुख भवनों का ऐतिहासिक मूल्यांकन, उरई 1996

GAGETTEERS

Bundelkhand	Gagetteer	Allhabad	1874
Banda	Gagetteer	Allhabad	
Datia	Gagetteer	Lucknow	1909

Hamirpur	Gagetteer	Allahabad	1907
Jhansi	Gagetteer	Allhabad	1909
Jalaun	Gagetteer	Allhabad	1909

JOURNALS

Bharat Itihas Samsodhaka, Mandal quarterly

Indian Antiquary

Journal of Royal Asiatic Society of Bengal

Nagari Pracharni Patrika

Hindi Sahitya Sammelan Patrika

पत्रिकायें

कल्याण – गोरखपुर–वेद कथाङ्क, गणेश अंक

क्रोंचरश्मि – मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच की वार्षिक पत्रिका

जिला विकास पुस्तिका – सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ० प्र० जनपद– जालौन वर्ष 2001–2002

रामलीला स्मारिका (गणपति विशेषांक) – पथरचट्टी रामलीला कमेटी प्रयाग, 1995

सारस्वत, (बुन्देलखण्ड मेला उत्सव विशेषांक, 2003–2004, जालौन जनपद विशेषांक 2000–2001) – सरस्वती विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज, उरई

समाचार पत्र

अमर उजाला, कानपुर – दिनांक 22.8.2006,22.12.2006

आज, कानपुर – दिनांक 25.9.2006

दैनिक जागरण, कानपुर – दिनांक 11.9.2006, 23.4.2007,10.5.2007, 16.5.2007, 28.8.2007,10.10.2007

राष्ट्रीय सहारा, कानपुर — दिनांक 11.9.2007

समय की तलाश — दिनांक 16.8.2001

हिन्दुस्तान, लखनऊ — दिनांक 5.9.2005

साक्षात्कार

अग्रवाल, रीना — दिनांक 6.10.2006, कालपी

अयोध्या प्रसाद "कुमुद" — दिनांक 15.12. 2007, उरई

चन्द्रा, सुब्रमण्यम — दिनांक 5.9.2005 लखनऊ

जगदीश गुप्ता — दिनांक 22.12.2007, कोंच

पुरवार, पद्मकान्त — दिनांक 6.10.2006, कालपी

पुरवार, हरीमोहन — दिनांक 12.9.2006, उरई

श्रीवास्तव, रोहित — दिनांक 11.9.2006, उरई